श्री परमात्मने नमः

।। सद्गुरु संजीवनी ।।

लेखक : साधुवेश में एक पथिक

नवोदित शिशु–
'नील' के शुभ आगमन पर
प्रकाशित

''सदगुरु संजीवनी''

संकलन एवं सम्पादक
डा० अर्चना गुप्ता (रानी)
असिस्टेण्ट प्रोफेसर
डी. ए. वी. कालेज, कानपुर
मो. नं. **8840300698**
9451283513

कला पक्ष
क्रियेटिव प्वांइट
मो. नं. **9839028276, 7985472243**
premcreativepoint@gmail.com

आविर्भाव

देवस्थली भारत भूमि समय समय पर अनेक सन्त महात्माओं को जन्म देती रही है जिनके प्रकाश पुंज से दुःखों से आक्रान्त जनमानस का अज्ञान तिमिर मिटा है। ऐसी ही महान आत्माएं भारत भूमि की आधारशिला रही हैं जिन्होंने भारतवासियों में परमतत्व/चेतना का आभास कराया है। बीसवीं शताब्दी में दिव्य विभूति के रूप में वीतरागी सन्त परम पूज्य **'श्री पथिक जी महाराज'** का अवतरण हुआ।

गंगा–यमुना से घिरी सगुणावतारों की पावन भूमि, उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले के वकेवर ग्राम में आपका जन्म 15 जनवरी, 1909 को पवित्र ब्राह्मण परिवार में हुआ। पिता श्री श्याम लाल त्रिवेदी का शरीर छूटने के बाद आपका पालन पोषण तथा प्रारम्भिक शिक्षा माता श्री के संरक्षण में ननिहाल साढ़ (जिला कानपुर नगर) में हुई। आप ग्राम के बाहर भूधरा खोद कर तप करने लगे। कुछ समय के बाद ही आपने सुदीर्घ जीवी परमहंस अवधूत **योगिराज नागा बाबा** का शिष्यत्व ग्रहण कर गृह त्याग दिया। युवावस्था में तो आप घोर तप में लीन रहे। सीतापुर शहर से लगभग 45 किमी0 दूर कस्योरा ग्राम का घनघोर जंगल जिसमें पूज्यश्री ने अपने ही हाथों से भूमि खोदकर गुफा बना ली और ऊपर फूस की मड़ैया बनाई थी उसी में वास था। पास में ही एक छोटी सी सरामन नाम की नदी और उसी तट पर एक पड़ा हुआ पत्थर जिस पर कोपीन पहने पिण्डोर मिट्टी गीली करके उसकी मोटी सी परत बना कर सिर पर रख कर बैसाख व ज्येष्ठ की चिलचिलाती धूप में एकटक सूर्य की ओर सुबह से सायं तक अपलक निहारते रहते थे। कितनी घोर तपस्या थी, जिसे याद करके आज भी हृद्वय सिहर उठता है। केवल एक मुठ्ठी गेहूँ और एक मुठ्ठी चना पानी में भिगो कर 24 घंटे में एक ही बार लेते थे। फिर बहुत आग्रह करने पर गाय का दूध लेने लगे थे। नेष्टिक ब्रह्मचारी रहकर सत्य की खोज में ही आपने अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया। सदाचार की प्रेरणा देना और आध्यात्मिक जागरण लाना ही आपके जीवन का उद्देश्य रहा। मधुर कण्ठ एवं प्राजंल लेखनी से परमार्थिक काव्य और आध्यात्मिक साहित्य के सृजन एवं गायन द्वारा दिग्भ्रमित जनमानस को कल्याण का मार्ग दिखाते रहे। आपके द्वारा जिस ज्ञान गंगा का प्रवाह हुआ वह अक्षुण्ण है। आपका जीवन इतना पवित्र रहा कि आपके सानिध्य में भक्त जन शान्ति और आनन्द का अनुभव करते रहे। आपमें निर्मल शिशुओं सी

प्रसन्नता, निसंगता, निर्लिप्तता निरन्तर विद्यमान रही। आपने अपने जीवन काल में कोई मठ–मन्दिर न बनवा कर स्वतन्त्र विचरण करते हुये 'पथिक' नाम चरितार्थ किया। परोपकार, परायण, दानवीरता ऐसी कि कभी कभी कोपीन व कमण्डल ही आपके पास शेष रह जाता था। सेवा, त्याग व प्रेम ही आपका मूल मन्त्र रहा। सद्विवेक, सद्व्यवहार और सत्प्रेम ही आपके जीवन दर्शन के त्रिरत्न रहे। आपकी सम्पूर्ण क्रियाएं, बैठना, बोलना एवं शरीर को आहार देना आदि भक्तों की प्रसन्नता के लिये ही होती थी। विनाशी जीवन की आसक्ति को छोड़कर अविनाशी जीवन की खोज की प्रेरणा देते आप थके नहीं। 10 जून, 1997 को हरिद्वार में आपने अपना पार्थिक शरीर त्याग दिया। वे योगी की भांति अकिंचन, अचाह और अप्रयत्न होकर संसार में रहे। पूज्यश्री महाराज जी ने अपने जीवन काल में लगभग 60 से अधिक पुस्तकें लिखी जिन्हें पढ़कर बड़े–बड़े विद्वान चकित रह जाते हैं क्योंकि इस तरह का ज्ञान प्रभु से हुए आत्म साक्षात्कार के बिना सम्भव ही नहीं है। इन पुस्तकों में आध्यात्मिक ज्ञान का इतना अद्भुत भण्डार है कि बड़े–बड़े धार्मिक ग्रन्थों को लम्बे समय तक पढ़ने के बाद जो तथ्य सार ज्ञान प्रकाश में आता है वह इन छोटी–छोटी पुस्तकों के 15 – 20 मिनट पढ़ने से प्राप्त होता है। लेकिन हम श्रद्धालुओं के लिये उनके ज्ञान की सीमा का आंकलन करना सूर्य के सामने दीप दिखाने के समान है। वास्तव में जीवनमुक्त, निर्लिप्त, निर्मल तपोनिष्ठ, करूणावत्सल एवं विराट चिन्मय व्यक्तित्व की विवेचना मण्मय मानव की शक्ति के बाहर है। यदि पुस्तक में कहीं कुछ विसंगतियां अथवा त्रुटियां हो गयी हों तो उसके लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

आज उनका पार्थिव पंच भौतिक शरीर हम नहीं देख पा रहे हैं परन्तु वह उनको हमेशा देख रहे हैं जिनके ह्रद्वय में निरन्तर अखण्ड आस्था का दीप प्रज्जवलित है। उनका दिया हुआ ज्ञान आज भी उनके द्वारा रचित पुस्तकों के रूप में लाखों श्रद्धालु प्रेमियों का पथ प्रदर्शन कर रहा है तथा जटिल से जटिल परिस्थितियों में भी ''जीवन जीने की कला'' सिखा रहा है।

पूज्य श्री गुरूदेव का मूलदर्शन यही रहा है कि जीवन में न कोई सुखदाता है न कोई दुखदाता। जो संसार से मिला है वह निश्चित रूप से छूटेगा। उसके लिये हमे तैयार रहना है। प्रभु का हर विधान मंगलमय है, इसे स्वीकार करना प्रत्येक विवेकवान व्यक्ति के लिये आवश्यक है।

क्योंकि **'हम जो चाहते हैं सो होता नहीं, जो होता है सो भाता नहीं और जो भाता है सो रहता नहीं'**—यही व्यक्ति की विवशता है। वास्तव में जो व्यक्ति का किया हुआ नहीं है, अपितु विधान से स्वतः हो रहा है, वह किसी के लिये अहितकारी नहीं है। विधान से स्वतः क्या हो रहा है? प्रत्येक उत्पत्ति का विनाश हो रहा है, प्रत्येक संयोग वियोग में बदल रहा है और प्रत्येक जन्म मृत्यु में बदल रहा है। सृष्टि में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। इस परिवर्तन का कर्ता कोई व्यक्ति नहीं है, अपितु सब कुछ किसी विधान से स्वतः हो रहा है, सृष्टि में अनवरत् गति है, स्थायित्व नहीं है। इस वैधानिक तत्व के प्रति सजग होते ही सृष्टि से अतीत के जीवन की खोज तथा सतत् परिर्वतनशील दृश्यों की लुभावनी कलाकृति के कुशल कलाकार में आस्था आरम्भ हो जाती है।

पूर्व में पूज्य गुरूदेव के **'अनमोल पत्र'** एवं **'प्रसाद'** के नाम से प्रकाशित दोनों पुस्तकों को संकलित कर इस पुस्तक का संस्करण **'सद्गुरू संजीवनी'** के नाम से प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि आध्यात्मिक प्रेमी मानव समाज इन पत्रों के अध्ययन एवं मनन से काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममता, अहंकार पर नियंत्रण कर अपने जीवन को सरल एवं निरभिमानी बना सके तथा जटिल से जटिल परिस्थितियों में भी बिना विचलित हुए धैर्य पूर्वक प्रतिकूलता से पार आ सकें तथा मानव जीवन के वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अग्रसर हो सकें।

ध्यान मूलं गुर्रोमूर्ति पूजा मूलं गुर्रोपद्म।
मंत्र मूलम् गुर्रोवाक्यं, मोक्षमूलं गुर्रोकृपा।।

अर्चना (रानी)

।। पुरोवाक् ।।

परमार्थ पथ के सत्संग प्रेमी साधक

गुरू शिष्य परम्परा आध्यात्मिक प्रज्ञा को नई पीढ़ियों तक पहुॅचाने का सोपान है। 'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार (अज्ञान) और 'रू' शब्द का अर्थ है प्रकाश (ज्ञान)। अज्ञान को नष्ट करने वाला जो ब्रह्म रूप प्रकाश है वह 'गुरू' है। हमारे पूज्य महाराज श्री वीतरागी एवं परमयोगी सन्त के रूप में उनकी भूमिका समाज के सुधार हेतु मार्गदर्शक एवं पथ प्रदर्शक के रूप में रही है। उन्होंने अपने शिष्यों एवं जन मानस के समग्र सुधार के लिए अनवरत प्रयास किए। व्यवहारिकता के किसी कोने को उन्होंने अस्पर्श (अछूता) नहीं छोड़ा। इसीलिए भारतीय संस्कृति में गुरू का स्थान ईश्वर से ऊपर माना गया है:

गुरूब्रह्मा गुरूर्विष्णू गुरूर्देवो महेश्वरः

गुरू साक्षात् परंब्रह्म तस्मैं श्री गुरूवे नमः।

विलक्षण प्रतिभा के प्रतिरूप हमारे गुरूवर का अपने शिष्यों के प्रति सम्बन्धों का आधार निःस्वार्थभाव एवं निर्लिप्तता के साथ गुरूज्ञान प्रसाद में मौलिकता, नैतिक वल, सबके प्रति स्नेहिल, प्रेम–करूणा और नित्य निरन्तर आनन्द का भाव रहा। जिसका चरमोत्कर्ष रहा आध्यात्मिक शाश्वत आनन्द की प्राप्ति। वास्तव में गुरू सदैव मशाल लिए अपने शिष्य को प्रकाश प्रदान करने के लिए तैयार रहते हैं।

जिस प्रकार संजीवनी किसी जीव को जीवन देती है उसी प्रकार पूज्य गुरूदेव के लिखे पत्रों का यह संग्रह **'संजीवनी'** के रूप में हमें जीने की कला, विषम परिस्थितियों में धैर्य धारण करने की शक्ति, ममता, मोह एवं अहंकार से निवृत्ति के उपाय के साथ ही, यह सदगुरू प्रेमियों को प्रेमाम्रत का आभास कराएगी। प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा उनकी भाषा शैली की प्रौढ़ता, दार्शनिकता, अपने भक्तों के प्रति अन्तरंग निकटता एवं परम हितैषी प्रवृत्ति का परिचय गुरू अनुरागी पाठकों को मिलेगा। अहंकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अनेक विकारों पर पूज्य श्री महाराज जी के दिशा–निर्देश अत्यन्त ही प्रभावी होंगे, क्योंकि कमोवेश हम सभी श्रद्धालुओं की यही स्थिति है। हम उन विकारों को छोड़ना तो चाहते हैं पर अभ्यास उन विकारों का हो गया है। अब सत्त् अभ्यास से ही इन विकारों से निवृत्ति हो सकेगी। अतः जीवनोपयोगी दर्शन हेतु अत्यन्त लाभकारी

एवं प्रेरणास्पद एवं पथ प्रदर्शक साहित्य के रूप में **'सद्‌गुरू संजीवनी'** बहुउपयोगी सावित होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस अहेतु की कृपा में अप्रत्यक्ष एवं अप्रतिम योगदान हेतु मैं परम श्रृद्वेय बाबू जी (भगवान दास जी) अम्मा जी एवं पिता जी (राधे श्याम जी) का सादर नमन एवं वन्दन करती हूँ, जिनके माध्यम से ही मुझे पूज्य गुरूदेव का सानिध्य एवं अविस्मरणीय स्नेह प्राप्त हुआ। मैं परम आदरणीय मालती दीदी की हृदय से ऋणी हॅू जिनका स्नेह एवं आशीष सदैव मुझे प्राप्त होता रहा है। श्रद्धेय डॉ0 सूरी, वियोगी बाबा तथा गुरू अनुरागी अपने सभी बन्धुओं के प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ।

'सद्‌गुरू संजीवनी' हेतु मैं अपने पति ई0 श्री राकेश जी का अत्यन्त आभार व्यक्त करती हॅू जिन्होने अपने व्यस्त जीवन से समय देकर अटूट लगन एवं अनवरत प्रयासों से इसे पुस्तक रूप में संकलित कर प्रकाशन का कार्य किया। इस दैवीय पुनीत कार्य में नीति, सन्दीप एवं विशाल पथिक की भी पूज्य गुरूवर के प्रति आस्था, श्रद्धा व प्रेम के रूप में सहभागिता रही है। वास्तव में सदगुरू की प्रेरणा और सूक्ष्म रूप में रही उनकी उपस्थिति से ही वे इस प्रकाशन के हेतु बने हैं।

वन्दउॅ गुरू पद पदुम परागा,
सुरूचि सुवास सरस अनुरागा।

अर्चना (रानी)

ऊँ श्री गुरूवे नमः

विनाशी देह में अविनाशी चेतन स्वरूप आत्मा को नामरूप में सस्नेह स्मरण।

समर्पित जीवन का पथ प्रदर्शन अदृश्य सर्वज्ञशक्ति किया करती है। गुरू वाक्यों का मनन करो–

1. जो खोया ही नहीं उसे पाओगे कैसे ?
2. जो स्वयं ही हो उसे जानोगे कैसे ?
3. जो अपने को नहीं जानता वह परमात्मा को कैसे जानेगा ?
4. सर्वत्र समग्र सत्ता में जो है, वही परमात्मा है।
5. स्वयं से भागो या स्वयं में जागो।
6. स्वरूप शुद्ध ज्ञान मात्र है, मै निरन्तर हूँ।
7. ज्ञान जहाँ विषय रिक्त है वहीं स्वप्रतिष्ठित होता है।
8. चेतना जहाँ निर्विषय है, निर्विचार है, निर्विकल्प है, वहीं जो अनुभूति है वही स्वयं का साक्षात्कार है।
9. आत्मा को वही खोज पाते हैं जो सब खोज छोड़ देते हैं। वही जान पाते हैं जो सब जानने से शून्य होते हैं।
10. वहाँ देखो जहाँ चेतना सदा से है।
11. वासना, विचार, तृष्णा आदि खोया बहुत, पर पाया कुछ भी नहीं, पहले से सर्वस्व विद्यमान था।
12. विचारों की भीड़ में अपने को तथा विचार शक्ति को साधक खो देता है।
13. विचार के बादल हटते ही सत्य सूर्य के दर्शन होते हैं।
14. सत्य को पाने की प्रथम शर्त अभय होना है।
15. मनुष्य का गढ़ा हुआ भगवान भय की भावनाओं से निर्मित है।
16. प्रेम और प्रज्ञा में ही परमात्मा है।
17. मैं नहीं हूँ जो जान लेते हैं, वह परमात्मा को जान लेते हैं।
18. जहाँ कुछ पाने की आकांक्षा है, वहाँ न त्याग है, न तप है।
19. ज्ञान शिक्षा से नहीं स्वयं से प्राप्त होता है।
20. ज्ञान में अहंकार समाप्त होता है।
21. सीखे हुये ज्ञान से अहंकार बढ़ता है।
22. जो नित्य सर्वत्र बाहर भीतर है उसके प्रति जागरूक रहने से मन विसर्जित हो जाता है।

23. स्वयं से जो दूर है, अपरिचित है, वह सत् के निकट एवं सत से परिचित नहीं हो सकता है।
24. स्वयं और स्वयं का सत्य ही दूर नहीं है। शब्द स्वयं को नहीं जानने देते।
25. जो तुम्हें कोई नहीं दे सकता, उसे मौन होकर, शब्द छोड़कर पा सकते हो।
26. केवल प्रेम से प्रार्थना सत्य होती है।
27. केवल ज्ञान से सत्य जाना जा सकता है।

पथिक

*****

सर्वमय परमात्मा को नमस्कार।

परमात्मा ही आत्मा के रूप में तुम्हारे हृद्वय में है उनकी कृपा, अनुभूति से तुम्हारा परमहित होगा। पुण्य बढ़ाओ, पुण्य से पाप नष्ट करने पर भजन हो पाता है। परमात्मा के विधान से ऐसा कुछ नहीं होता जो न होना चाहिये। चेतना जड़त्व के गर्त में जकड़ी है, वही पूर्ण होने के लिये गतिमान है। चिद अणु जड़त्व को चीरता हुआ अपनी प्रकृति की शक्ति को लेकर विकसित हो रहा है। यही उसका अपने आप में चिदविलास है। ज्ञानालोक में पहुँचने पर ही इसका बोध होता है। तुम दूसरों को न देखना–

जो मन भावे सो करै, भलो बुरो संसार
नारायण तू बैठ के अपनो भवन वुहार

जो नित्य है, वही सत्य है। तुम्ही दिव्य शक्ति हो। मन को दृढ़ता से पकड़ लो, यही नियंत्रण है। सुख दुख मन की वृत्ति है। देह भाव छोड़ो। अहं के आकारों से मुक्त होकर आत्म भाव से रहो, रमण महर्षि ने यही कहा है। देह दर्शन की इच्छा, कामना भले अहंकार को करने दो, ऐसे अहंकारी जन कामना की पूर्ति में सुख दुख मानते हैं। अहंकार की उपासना मन के भोगी करते हैं। अपने में भगवान को जानो, यही गुरू निर्णय है। मन की न मानो, ज्ञान की मानो, यही गुरू आज्ञा है।

गुणाभिमानी देखता दम्म, कपट पाखण्ड।
तभी प्रकट होता सदा ईर्ष्या, क्रोध, प्रचंड।।
विलहि विलोकत सर्प जिमि, रंग भवन के बीच
सज्जन पर सद्गुण लखै, दोष लखै ते नीच।।

यदि प्रेम पूर्वक देखो, तो सारा संसार अभिनय है। सभी अभिनय कर रहे हैं। गुरूजन यही उपदेश देते हैं कि प्रत्येक सम्बन्धों के साथ पार्ट अदा करो। ऐसा अभिनय करो कि देखने वाले सत्य ही माने। महात्मा तो संसार में जो व्यवहार करते हैं अभिनय ही करते हैं। उनका हंसना, रोना, पकड़ना, छोड़ना, हास्य, विनोद सब अभिनय ही होता है।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी ज्ञान स्वरूप आत्मा को सद्भावनानुसार स्मरण।

एक सन्त ने कहा है कि भूतकाल की प्रवृत्तियों को सत्य और स्थायी मान कर कोई व्यक्ति अपने को निर्दोष नहीं बना सकता। अपने कर्तव्य पर, अनन्त की कृपा पर और अपने देहातीत स्वरूप पर विश्वास करने पर राग की निवृति, परम प्रेम की प्राप्ति और अमरत्व का बोध सुलभ होता है।

दो व्यक्तियों में यदि द्वेष–घृणा का भाव होता है तो दोनों व्यक्तियों में शान्ति की जगह अशान्ति ही बढ़ सकती है। लेकिन जहाँ विचार का बल है वहाँ नम्रता, सरलता, प्रेम के द्वारा द्वेष मिटाया जा सकता है।

उपाय यही है, कि परस्पर भूल की क्षमा मांग लें और क्षमा कर दें, विरोध में बहुत शक्ति नष्ट होती है। क्षमा कर देने या मांग लेने में पुण्य पथ खुल जाता है, पाप का आक्रमण नहीं होता।

अभिमान छोड़कर गरीबी स्वीकार करना हितप्रद है। गुण के अभिमान में दोष दर्शन होता है। अपने साथ जो भी गुण हैं वह भगवान के हैं और दोष भगवान से विमुख रहने वाले अहंकार के हैं। समस्त सद्गुणों के साथ शीतलता है और ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि विकारों के साथ सन्ताप है। बुरा होकर ही कोई बुराई कर पाता है। प्रथम भला होकर ही दूसरों के साथ भलाई कर पाता है।

पथिक

*****

ऊँ सच्चिदात्म स्वरूप ब्राहम्णे नमः !

यदि तुम भक्ति, मुक्ति, शान्ति चाहती हो तो मेरी यह सम्मति है कि कोई सन्त महात्मा तुम्हें भक्ति, मुक्ति, शान्ति न दे सकेगा। क्योंकि तुम

स्वतंत्र होकर स्वयं ही संत महात्मा हो सकती हो। इसके लिये कहीं जाने की जरूरत नहीं है। अपने सत्‌चित, ज्ञान स्वरूप में बुद्धि स्थिर रखने का अभ्यास बढ़ाना है। तुम निरन्तर शुद्ध हो, मुक्त हो, शान्त हो, सुखमय हो, अपने स्वरूप को भूलकर अन्य को देखने लगना, यही बुद्धी की चंचलता है।

सभी सन्त कहते आये हैं कि दूसरों के दोष न देखो, क्योंकि तुम्हारे तन–मन में इतने विकार, इतने दोष हैं कि उन्हें देखते हुये तुम्हें फुरसत न मिलेगी। अपना घर साफ करो, दूसरों के घर में क्यों झांकते फिरते हो। प्रत्येक व्यक्ति का तन मन बहुत अशुद्ध हो सकता है। परन्तु चेतन आत्मा ज्ञान स्वरूप, परम पवित्र है। तुम व्यक्ति में सत्य ज्ञान रूवरूप की उपासिका बनो। सन्त कबीर ने कहा है :–

ई जम जरता देखिया, सवै आपनी आगि।

ऐसा कोई ना मिला, जासों रहिये लागि।।

यह अनुभव करो कि मैं शक्ति हूँ मेरे द्वारा शरीर की सारी क्रिया हो रही है पर मैं क्रिया नहीं हूँ। मन चंचल है, शक्ति चेतना के द्वारा ही बुद्धि में विचार चल रहे हैं, पर मैं बुद्धि नहीं हूँ। मन मैं नही हूँ। मुझ में शक्ति के द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोह की क्रिया चल रही है पर मैं काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकार नहीं है, मैं सुख–दुख नहीं हूँ।

विद्युत के द्वारा बल्ब में, कूलर में, हीटर में एवं अनेक मशीनों में कर्म हो रहे हैं पर विद्युत सबसे असंग है। नित्य मुक्त निर्विकार है। उसी भांति चेतन स्वरूप, शक्ति सत्ता स्वरूप सबसे असंग है। अपने को किसी से न मिलाओ। दृष्टा बनो, कर्ता–भोक्ता अहंकार है।

मन की पूर्ति न करो, मन को उसी के मन से मिला दो जिसकी सेवा करना हो। अभी तो मन की मानती हो, सभी मन के भक्त हैं। श्रद्वा को ज्ञान से सम्बन्धित करो, मुझे तृप्ति होगी। जगत में जितनी भाग–दौड़ है सब प्रपंच ही है।

गो गोचर जह लगि मन जाईं, सो सब माया जानहु भाई।।

तुम्हारा कल्याण, सद्‌ज्ञान, आत्मज्ञान सद्‌विवेक के सहारे तुम्हारे द्वारा ही होना है। वह भले यहाँ आने से हो या कहीं और जाने से जाग्रत हो सकता है। उदासीनता बुरी नहीं है। अपने को परमात्मा में समर्पित रखो, जो कुछ भी हो, देखती रहो। तुम्हें केवल ज्ञान में अज्ञान को बन्धनों से

मुक्त करना है, तो तुम केवल ज्ञान में अज्ञान को देखो। अंहकार, अभिमान मोह के परिणाम को देखो। गुरू ज्ञान के आश्रय की जरूरत है, जिसे तुम वहीं रह कर लिये रह सकती हो। ज्ञान रूप में गुरू तुम्हारे साथ ही है, आने जाने की जरूरत नहीं। मेरे पास आना आवश्यक नहीं, यह तो मोह है। जिज्ञासा की पूर्ति कहीं रहकर हो सकती है, अपने प्रश्न हल करती रहो। तुम्हारा हित हो, ऐसी मेरी अभिलाषा है।

झलक होश की है, अभी बेखुदी में।
बड़ी खामियाँ है, मेरी बन्दगी में।।

पथिक

*****

नमो परमात्मने!

प्रायः मैने कहा है कि संग से जो भीतर होता है वह प्रगट हो जाता है। मनोमय अहंकार में ही जन्म जन्म के दोष चले आ रहे हैं। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह, आसक्ति, ममता, इन्द्रिय लोलुपता छोटे छोटे जन्तुओं में, पशु पक्षियों में प्रबल होते हैं। एक एक विषय इतना प्रबल होता है, जो मानव शरीर में बहुत ही स्वल्प रह गया है। लेकिन जो भी दोष हैं, वह पशु शरीरों से चले आ रहे हैं। जितना सद्गुणों की अधिकता में शक्ति व्यय होती है। उतना ही दोषों की तीव्रता कम होती जाती है और जितना अधिक ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधादि के वेग में शक्ति व्यय होती है। उतनी ही गुणों की कमी रहती है।

सभी सन्त गुरूजन कहते आये हैं कि ऐसा कोई दुख नहीं मिल सकता जिसके पीछे अपनी चाह की पूर्ति का पक्ष न हो या मन में लोभ, अभिमान, कामना न हो। गुरूजन यह भी समझा चुके हैं कि दुख सुख मानने से होता है यह कर्म का भोग भी नहीं है। कर्म के फलसे या पाप–पुण्य कर्मों से संयोग–वियोग, लाभ–हानि एवं अन्य परिस्थितियाँ आतीं हैं। यदि आत्म ज्ञान है तो कुछ आयेगा उससे ज्ञानी दुखी नहीं होगा, अज्ञानी ही दुखी–सुखी होगा। इसीलिये कहा है किसी अन्य को दुखदाता सुखदाता मानने की मूर्खता अज्ञानी ही करते हैं।

तुमने पढ़ा होगा, काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष के विकारों के वेग से भीतर विष की ग्रन्थियाँ बढ़ जाती हैं। यही ग्रन्थियाँ क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष की अग्नि के जलते ही पसीजती हैं, विष फैलाती हैं। इसीलिये प्रायः जिनकी

ऊर्जा इनके आवेग में व्यय होती है, वह विशेष रोगी हो जाते हैं, आयु कम होती जाती है। शक्ति की याचना न करो, प्राप्त शक्ति का सदुपयोग करो। शान्ति तो तुम्हारे हार्दिक प्रेम के साथ निरन्तर है। तुम परतंत्र नहीं हो, ज्ञान स्वरूप चेतन हो। अहंकार भ्रमित है, विमुख है। मेरे पास आने से कोई लाभ नहीं, केवल सद्ज्ञान, विवेक के आदर की जरूरत है।

पथिक

*****

नमो परमात्मने!

गुरू वाक्य जो नित्य स्मरणीय हैं उनका मनन करो :–

1. अनित्य विनाशी के साथ ही नित्य चेतन सत् अविनाशी का अर्थात् परमात्मा के होने का क्षण–क्षण स्मरण करो।
2. परमात्मा है इसीलियें मैं हूँ। वहीं से हम–हम स्फुरित हो रहा है।
3. चाह रहित, संकल्प रहित, सबकी याद भूलकर चेतना में बुद्धि स्थिर करके मन ही मन या धीरे धीरे गाओ।

'आनन्दमयं आनन्दमयं परमात्मन परमानन्दमयं'

4. तुम मुक्ति, भक्ति, ध्यान, ज्ञान कुछ न चाहो फिर जो है वही मुक्त है, सत्य है, चेतन आत्मा है। मन से मुक्ति ही ध्यान है।
5. जो मिला ही है उसे पाने का श्रम व्यर्थ है। आत्मा, परमात्मा तो है ही, उसे देखने की चाह व्यर्थ है, इसी में तो अहं स्फुरित हो रहा है। जो है उसी के ध्यान में आनन्दित रहो। तुम निरन्तर हो, किन्तु बनो कुछ नहीं। चेतन ही तो आनन्द स्वरूप है।
6. जहाँ अहं का आकार नहीं, वहीं परमात्मा है। मेरा मानते ही आकार बन जाता है।
7. संकल्प, विचार एवं कामना शून्य होने पर अर्न्तदृष्टि खुलती है। तुम अपने शुद्ध चेतन को जान लो, अशुद्ध तन को अपना रूप न मानो। अहं रूपी अणु के भीतर विराट चैतन्य छिपा है।
8. मन को देह में न लगाकर चेतन स्वरूप में लगाओ। अंहकार में कृतज्ञता, नम्रता, प्रसन्नता, शान्ति संतोष से भरे रहो, देह का गर्व न करो, देह को अपना रूप न मानो। खाल से मढ़ी देह में अस्थिपंजर

को देखो।

9. किसी के पाप, अत्याचार, दोषों का स्मरण ही न करो। चर्चा न करो, तुमसे अधिक हृदय निवासी सर्वज्ञ परमेश्वर जानता है। उसी की कृपा से सबका हित होता है।

10. प्रियतम परमात्मा ही शत्रु मे, मित्र में, साधु में, असाधु में विद्यमान है।

11. प्रत्येक घटना व कर्म के पीछे प्रभु के होने का विश्वास करो। उसी का सब है, उसी के सब प्राणी हैं, वही सर्वमय है। किसी की निंदा न करो, जो कुछ किया जाता है वह अपने ही प्रति हो जाता है।

12. प्रभु के समर्पित हो तो सब कुछ स्वीकार करो, उन्नति, अवनति, पतन, उत्थान सब प्रेममय प्रभु पर छोड़ दो। उसका विधान जो कुछ दिखाये सब मंगलमय है। तुम कुछ न चाहो, क्योंकि तुम्हें यर्थाथ का ज्ञान नहीं होता ? अंहकार समर्पित नहीं होता, मन मुख (मन की मानने वाला) गुरू उपासक नहीं हो पाता।

13. बुद्धि का उपयोग अपने भीतर दोष दर्शन में करो। दुख ही दोषों का परिचय देता है। अपने अहंकार में इतने अधिक दोष हैं कि देखना है तो उन्ही दोषों को देखो।

14. जितनी बार परदोष पर विचार होगा उतना ही पाप बढ़ेगा, पाप के भोग से प्रतिकूलता का दुख होगा।

15. आनन्दमय परमात्मा में सुख स्वरूप आत्मा तुम्हीं हो, तब व्यर्थ सन्ताप से क्यों तपो ?

16. शक्ति सेवा में लगा दो, प्रेम को प्रभुमय होने दो। ज्ञान को सर्वसंग से मुक्त करो, यही सन्तो का उपदेश हमें सर्वोपरि प्रिय लग रहा है।

17. जब तक मन की पूर्ति की जाती है तब तक सेवा, त्याग, प्रेम की पूर्णता नहीं होती।

पथिक

*****

विनाशी शरीर में अविनाशी आत्मा को नामरूप में स्मरण!

सामवेद में एक मंत्र में बताया है कि श्रद्वा पर आसुरी वृत्ति अश्रद्धा आक्रमण करने को सदा तत्पर रहती है। दानवृत्ति पर अदानवृत्ति

आक्रमण करती है। देने का संकल्प होने के बाद अवसर पर दान न देने पर की प्रेरणा प्रबल हो जाती है। इसी प्रकार सत्य के प्रति प्रेम पर असत का मोह बाधक बनता है। पथिक प्रबोध में श्रद्धा के विषय में अधिक स्पष्ट दिया गया है। इस हृद्वय में आश्चर्य हुआ कि श्रद्धा और उदारता की अधिकता प्रायः हर एक में इतनी तीव्रता से नहीं देखी, जितनी तुममें देखी गयी। इसीलिये संदेह रहता कि यह आवेग स्थायी है, एक जाग्रति है या परिवर्तन शील है। जितनी तीव्रता से गति होगी उतनी ही तीव्रता से उल्टा लौटने की भी शक्ति होती है। तुम्हारे पास जो भी शक्ति संचित है उसके द्वारा अपने आपको बन्धनों, दुखों से छुड़ा लो। आत्मज्ञान का होना आवश्यक है। अन्य के दर्शन की अपेक्षा अपने ही दर्शन करना चाहिये। जीवन के लक्ष्य का ज्ञान भी हर एक को नहीं होता। प्रायः लोगों का लक्ष्य है, सुखपूर्वक धन, मान, भोग की प्राप्ति।

1. देह हाड़, मांस, रूधिर, मलमूत्र आदि द्रव्यों से बनी है, देह को अपना रूप न मानो, अपने लिये न मानो।
2. पशु के लिये यह देह भोग का साधन है, विवेकी मानव के लिये यह सेवा का साधन है।
3. संसार के सच्चे मालिक को भूलकर के हम खुद ही मालिक बन बैठे हैं। मिले हुये देहादिक पदार्थों का मालिक बनना अहंकार की बेईमानी है।
4. ऊपर से मिले हुए को मेरा मानते हुये, भीतर से सब कुछ दाता प्रभु का समझते हुए लोभ, मोह, अभिमान से मुक्त हो सकते हो।
5. मै प्रभु का हूँ। सभी प्राणी प्रभु के हैं, ऐसा समझकर मिले हुए के द्वारा सबकी सेवा करते रहो।
6. जो देह को देखता है, वह देह नहीं है।
7. वस्तुओं, व्यक्तिओं से जितने सम्बन्ध हैं, उतने ही अहं के आकार हैं और नाम हैं।
8. अहंकार जिनके संग से सुखी होता है उन्ही के संग से दुखी भी होता है।
9. दृश्य को सिनेमा की भांति देखना है, उसे पाने का प्रयत्न नहीं करना है।

10. जिस प्रकार अज्ञान में देह भाव से रहते हो उसी भाव से सब कर्म करते हो, अब आत्म भाव से रहो।
11. सब नाम रूपों के पीछे, मैं ज्ञान स्वरूप आत्मा हूँ यही स्मरण स्वभाव बना लो।
12. जो नित्य निरन्तर है, वही आत्मा तुम हो। तुम मुक्ति ही हो, आनन्द हो, इसलिये आनन्द और मुक्ति को न चाहो।
13. इन्द्रिय, मन, बुद्धि के आगे जो देखते हो वह संसार है, उसके पीछे देखते हो तो नित्य सत्य स्वरूप है, वही तुम हो।
14. तुम्हारे घर से कितने बुजुर्ग चले गये यदि तुम यहाँ रहने, पाने और बचाने का प्रयास कर रहे हो, तो महामूर्खता है।
15. जो बाँधा जाता है वह पशु है, पशु इसलिये बांधा जाता है क्योंकि वह अपनी भोजन सामग्री को देखता है, अपने देखने वाले को नहीं देखता। पशु का तन बंधा है, मनुष्य का मन बंधा है।
16. मन, बुद्धि, अहंकार यह सब तुममें है, तुम यह नहीं हो।
17. विवेक बढ़ाने के लिये गुरूजनों का संग और श्रद्धापूर्वक सेवा, सुन्दर साधना है।
18. अपनी बुराई करने वाले के प्रति बुराई न करना, पशु प्रवृत्ति का दमन करने वाले तथा मानवता का निर्माण चाहने वाले परमार्थी का कर्तव्य है।
19. अपने मन की न करके प्रियतम के मन की पूर्ति करते हुये सेवा स्वधर्म के पालन में कष्टों को सहते हुये प्रसन्न तथा शान्त रहना तपस्वी का कर्तव्य है।
20. अपनी रूची पूर्ति का पक्ष छोड़कर अपने सुख की चिन्ता न रखकर अपने स्वामी की प्रसन्नता के लिये उसकी आज्ञा का पालन करते रहना सेवक का कर्तव्य है।

पथिक

*****

परमात्मने नमः!

एक घण्टा मौन, अचाह, शून्य हो जाओ।

1. मौन का समय बढाते जाओ, कमरा बन्द, शान्त, न चाह रहे न विचार, न कल्पना, छः महीनों में ही विचारों में परिवर्तन होगा।
2. खाल से मढ़ी देह, शरीर, अस्थिपंजर मात्र है।
3. जो अपना आप है वही परमात्मा है।
4. परम तृप्ति का नाम परमात्मा है।
5. केवल प्रेम रह जाना, परमात्मा को पा लेना है।
6. चेतना, जड़त्व को तोड़ती हुई पूर्ण होने के लिये गतिमान है।
7. सत की खोज में चैतन्य उपलब्ध होगा।
8. योग, अन्तः करण को शुद्ध करता है।
9. केवल वर्तमान में ठहरो, वासना इच्छा लुप्त हो जायेगी।
10. जो स्वयं में स्थिर है, वही आत्मवान है।
11. चेतना ही चिन्तन अनुरूप, तद्रुप बन जाती है।
12. सर्वज्ञान से मुक्त होना ही परम ज्ञान है।
13. स्वेच्छा से मुर्दे के समान जीना सन्यास है।
14. केवल चैतन्य स्मरण रहे और सब छूट जाये।
15. परमात्मा तो तुम्हारा स्वभाव है, उपलब्धि नहीं।
16. साक्षी देखता है, प्रतिक्रिया नहीं होती।
17. **ध्यान**—अपनी चेतना में डूबो, बैठो या खड़े रहो। अपने में स्मरण करो, तुम जहाँ हो वहीं परमात्मा है। सारा जगत दृश्य परमात्मा में है। नदी, पहाड़, वृक्ष, तारे, सूर्य सब परमात्मा में हैं। कोई तुम्हें मारे, अपमान करे, कटू वाक्य कहे तो उसके लिये प्रभु से क्षमा चाहना, क्योंकि वह अज्ञान में कर रहे हैं।
18. स्वयं में ठहरो, यहीं मुक्त हो। मुक्ति, भक्ति, ध्यान, कुछ न चाहो।
19. कल्पना के जाल से मुक्त हो जाओ।
20. भीड़ से ऊबते हो, वहीं मन से ऊबो।
21. परमात्मा में तुम अहंकार शून्य अभी हो, अहंकार के आकार तुम्हारे द्वारा निर्मित हैं।
22. ध्यान वहीं, जहाँ विक्षेप न मानो, जो हो रहा है वह सब ठीक है। सब

स्वीकार करते जाओ।

23. जो मिला ही है उसे पाने का श्रम व्यर्थ है।

24. दुखी हिसंक होता है, सुख को भीतर जान लो, तो अहिंसक हो सकोगे।

25. क्रिया से वही मिलता है जो बाहर है, अक्रिया से वही मिलता है जो भीतर है।

26. पाना नहीं है, जानना है,खोजना नहीं है पहचानना है। मैं, में प्रसन्न रहना है, तुम हो ही, कुछ बनना नहीं है।

27. तुम जो हो, सो पूर्ण, परम तृप्त, शुद्ध, बुद्ध, परम प्रिय हो, प्रेम ही हो।

28. जो स्वतः हो, किये बिना हो, वही परमात्मा।

29. मन को अहंकार में, अहंकार को माया में, माया को आत्मा में, आत्मा को परमात्मा में डालकर पूर्ण में शान्त हो।

ममतारत सम ज्ञान कहानी, अति लोभी जन बिरति बखानी।

क्रोधी सम कामी हरि कथा, ऊसर बीज वए सम वृथा।।

जीवन में प्रायः अनेकों प्रकार के दुख हैं, लेकिन शक्ति के, समय के, ज्ञान के, प्रेम के द्वारा, सेवा भाव, भक्ति की कमी का दुख नहीं है। गुरू ज्ञान, प्रेम की पूर्णता के न होने का दुख नहीं है। इसीलिये ज्ञान व्यर्थ जा रहा है। आनन्द, शान्ति, निरन्तर प्राप्त है, परन्तु हम विमुख हैं। हम साधकों में संयम की कमी है।

पथिक

*****

नमो परमात्मने!

स्वलपाहार करते रहना ठीक है, फलाहार से कमजोरी बढ़ेगी। नींद के पीछे नहीं पड़ना चाहिये। तमोगुण की अधिकता के कारण नींद, आलस्य, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि विकार प्रबल रहते हैं। सरल उपाय यही है कि विकार तुम पर न चढ़े। तुम क्रोधाधिक विकारों पर चढ़ जाओ और इतना ही सोचो की मैं ज्ञान स्वरूप, निर्विकार, नित्य, शुद्ध चेतन हूँ। यह विकार मन में हैं। प्रत्येक विकार में उसी क्षण दृष्टा होकर देखो और ठहरो। दूसरे को न देखो, अपने को देखो, कि मैं हूँ। व्यवहारिक क्षेत्र में भी क्रोधावेग में उत्तर न दो। दूसरा कोई गलती कर रहा हो, क्रोध कर रहा हो, तो तुम

अपने को व्यर्थ दण्ड क्यों दो? गलती दूसरा करे और दण्ड तुम भोगो। यह तो अहंकार की मूर्खता ही है। गलती करने वाला तुमसे बहुत फासले पर दूर है पर जो मन दुखी होता है, क्रोधित होता है, वह तुम्हारे भीतर ही है, उस मन को देखो। फलाहार करने से यह विकार दूर न होंगे। अनेक प्राणी फलाहार ही करते हैं वे भी बहुत विकारी होते हैं। मन तो वही रहेगा। उस मन को अहंकार को बदलने से साधना ठीक से चलेगी। हम दूसरों की शिकायत करते हैं, हमारा मन कितना उद्दण्ड है, उसे क्षमा करते रहते हैं। गलत स्थान छोड़ देना ठीक है परन्तु ऐसा कोई स्थान मिलेगा ही नहीं जहाँ कोई असुविधा न हो।

तुम ऐसा न सोचो कि तुम्हें कोई हटाना चाहता है। अपनी कमी देखो, हमारे समर्थ भगवान भी केवल प्रेम को चाहते हैं। किसी के लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, कलह को नहीं चाहते। मनुष्य अपनी अन्धी श्रद्धा से, कल्पना से, धारणा से, अनुमान से, अधिक धोखा खाता है। जिस संग से तुम्हें अशान्ति हो, अश्रद्धा हो, दोष उमड़े और दूर न हों, उस संग का त्याग कर देना चाहिये। अन्तर्यामी सर्वज्ञ प्रभु का विधान कब क्या करवाये कुछ कहा नहीं जा सकता।

ताके युगपद कमल मनावहुँ, जासु कृपा निर्मल मति पावहुँ।।

किसी प्रकार बुद्धि मोह, लोभ, कामना से रहित होकर पवित्र हो जाये, यही साधना की सफलता है। जीवन में कुछ न बनकर अपने सतस्वरूप को जान लेना है। भिखारी, दरिद्र, अहंकार को समझ नहीं है। अहंकार द्वारा मान की चाह एवं लोभवश अज्ञान में अपने मन की पूर्ति में, सुख मान लेने से अनेक पाप व अपराध बन जाते हैं। भीतर के दोषों को देखना अच्छी प्रक्रिया है।

पथिक

*****

विनाशी नामरूप में अविनाशी आत्मदेव को नमस्कार !

कितने वर्ष श्रद्धा जाग्रति होने पर बीत रहे हैं यदि जीवन निर्माण का संकल्प करती तो आज सुन्दर जीवन में दिव्यता का दर्शन होता, परन्तु दिव्यता के अवतरण की प्यास प्रबल नहीं होती। लाखों श्रृद्धालु अपने मन के ही सेवक बने रहते हैं। बुद्धि युक्त होकर ही कोई मन की दासता को छोड़ पाते हैं। आप में शक्ति की कमी नहीं, सत संकल्प की कमी है। मन की मानने तक शक्ति का सदुपयोग नहीं हो पाता। अर्जुन महारथी होते

हुये भी मन की ही मानते रहे। भगवान की शरण होकर मोह को नष्ट कर सके। मन की मानने वाला शान्ति, मुक्ति, भक्ति से विमुख ही रहता है, वह सेवा भी नहीं कर पाता। गुरूभाव से ही वह सेवा में तत्पर होता है। मनमुख तो भोगी ही बना रहता है। विवेक जाग्रत होने पर ही मन की दासता से कोई मुक्त हो पाता है। क्रोध के अवसर पर क्षमा, अभिमान की अकड़ के विरूद्ध सरलता तथा दया, संतोष और निरन्तर चेतन आत्मा में ही बुद्धि स्थिरता का अभ्यास दृढ हो जाये, तो मुक्ति सुलभ ही है। अहंकार दरिद्र है, भिखारी है, अपने में अपना कुछ न मानने से अहंता, ममता समाप्त होती है। जहाँ तक अनुकूलता का रसास्वाद है, वह प्रभु की दया है। दूसरों को सुख देते रहने से पुण्य बढ़ते हैं। दूसरों के प्रति हितकारी प्रवृति स्वधर्म पालन से ही होती है। इसीलिये शान्ति सुलभ रहती है। अहंकार से कभी–कभी अपराध बनते रहते हैं, उनका त्याग विवेकवती बुद्धि द्वारा ही होता है। लोभी सुखोपभोग के लिये सावधान रहता है। शान्ति प्रेमी साधक धर्ममय प्रवृत्ति के लिये सजग रहता है।

परहित सरिस धर्म नहीं भाई, पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।

लोभ, मोह, अभिमानवश ही अपराध बन जाते हैं। अपने बल, विद्या, विवेक का सदुपयोग करते हुये जीवन को सुन्दर बनाये रहना तुम्हारे जैसे पुण्यवान व्यक्ति के लिये सम्भव है। सेवा, त्याग, प्रेम की पूर्णता के लिये सतत् सावधान रहो, यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। हम लोगों से असावधानी के कारण प्रायः दोष बनते रहते हैं। सावधान रहना साधक का सर्वोत्तम पुरूषार्थ है।

अपने विचार ही नर्क को स्वर्ग और स्वर्ग में नर्क की कल्पना गढ़ लेते हैं। जिस प्रकार मिश्री प्रत्येक वस्तु को मधुर बना देती है और लाल मिर्च सभी को अति कटु बना देती है। उसी प्रकार प्रेम सभी को मधुर व सुखमय बना देता है और द्वेष सभी को कटु बना देता है। जैसी दृष्टि वैसा ही भाव बन जाता है। प्रेम में अपने अधिकार की वस्तु के दान का साहस अति सरल हो जाता है। ज्ञान में देखो तो संसार में कुछ पाने योग्य सुन्दर सत्य नहीं है और देने योग्य भी। अहंकार के पास जो कुछ है वह तुच्छ है परन्तु प्रेम में तुच्छ का मूल्य बढ़ जाता है।

पथिक

*****

श्रद्धालु आत्मन!

वही पढ़ो, जिससे दैवी वृत्तियों/भावों की जाग्रति हो। पत्र पढ़ने के स्थान में पुस्तकों के वचनों का मनन करो। दिव्य मन्त्रणा को बार बार पढ़ो। भूतकाल की बातों का स्मरण मुर्दा उखाड़ उखाड़ कर देखने के समान है। वर्तमान को देखो। भूतकाल का स्मरण वर्तमान से विमुख बना देता है। वर्तमान में जो भी कुछ है, चाहे देह हो, या मन हो, अहंकार हो, विचार भाव या कोई भी वस्तु, व्यक्ति दृश्य सामने हो उसे ही देखो। जो सामने नहीं है, वर्तमान में नहीं है उसकी याद अनावश्यक है। भूतकाल के चित्राभास सिनेमा को कितने मनोयोग से लोग देखते हैं लेकिन वही दृश्य सामने चल रहा है, उसे ध्यान से नहीं देखते। अहंकार को देखने वाले तुम्हीं तो ज्ञान स्वरूप आत्मा हो। आकार न रहे, केवल ज्ञान रहे, होने का बोध मात्र रहे, यही आत्मज्ञान है, मैं देख रहा हूँ कि यदि स्नेह से या लोभ से, द्वेष से या कामना पूर्ति के लिये जिसका स्मरण नहीं भूलता उसके सामने स्मरण करने वालों की मूर्ति बलात आती ही रहती है। मानसिक सम्बन्ध बना ही रहता है। किसी भी भाव से यदि भगवान से सम्बन्ध जुड़ा रहे तो बहुत ही शुभ है। किसी विरक्त ज्ञानी, सन्त, महात्मा अथवा भगवान भक्त प्रेमी से सम्बन्ध दृढ़ होना सौभाग्य ही है। बिना देखे ही प्रेम स्वरूप, ज्ञान स्वरूप आत्मा परमात्मा के होने का स्मरण करने की सम्मति गुरूजन देते हैं। शत्रु में, कामी, क्रोधी, लोभी, पापी, दुष्ट में भी परमात्मा को नमस्कार करने की याद बनी रहे तो दुर्भाग्य से मिला हुआ सम्बन्ध भी उन्नति का, सद्गति का द्वार बन जाता है। परमात्मा को जहाँ स्मरण करे,वहीं है। जहाँ हम हैं, वहीं परमात्मा है। जिस शक्ति समय को हम अहंकार वश, ईर्ष्या में, दोष दर्शन में, क्रोधावेग में व्यय करते हैं, उसी को हम सेवा में, सत्कार व सम्मान में लगा सकते हैं। जिस बौद्धिक ज्ञान को हम धन, मान, प्रतिष्ठा की प्राप्ति में और उसकी सुरक्षा में लगाये रहते हैं उसी ज्ञान से हम अहंकार को धन, मान से मुक्त रहने में लगा सकते हैं। जिस प्रेम में विनाशी पदार्थों को भरे रख सकते हैं उसी के द्वारा हम आत्मा, परमात्मा से पूर्ण अनुभव कर सकते हैं। दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है। सन्त कहते हैं कि आचरण महत्वपूर्ण है। दम्भ, मूढ़ता, अज्ञान, अहंकार के पार निजानन्द का अनुभव होता है। अपने में, सभी में परमात्मा का अनुभव न करने तक धोखा ही है। हम तुम सभी के भीतर सच्चिदानन्द ही है।

पथिक

*****

नामरूप में ज्ञान स्वरूप आत्मदेव को नमस्कार !

धीरे धीरे आपके स्वभाव में परिवर्तन हो रहा है। यदि दृढ़ संकल्प करो तो वर्षों का कार्य दिनों में हो सकता है। शक्ति, समय, योग्यता को दुरूपयोग से बचाने पर ही सदुपयोग सम्भव है। अहंकार तो सभी का भिखारी और दरिद्र ही होता है। अनन्त सर्वदर्शी चेतन के प्रति समर्पण होने पर अहंकार की कठोरता प्रेम से गलने लगती है। अहंकार मेरा पाने के विस्तार में जीवित है। अहं ज्ञान में बुद्धि स्थिर करते–करते आकारों की सीमा मिटने लगती है। यदि हम कुछ भी न बने, तो आकार नहीं रहेंगे। ध्यान से अहं स्फुरण में बार–बार वृत्ति ठहरानी है। भूतकाल और भविष्य की स्मृति ही ध्यान योग में बाधक है। आपकी साधना में भूतकाल के मनन में ही शक्ति अधोमुखी बनी रहती है। बहुत सावधान रहने पर विजय सम्भव है। अहंकार की बली देने पर शक्ति के साथ शान्ति की अनुभूति होगी, अभी अवसर है। क्षुद्र अहं में शान्ति नष्ट न हो। मन की न मानो, अहंकार कभी तृप्त नहीं होता।

सन्त निर्णय अनुसार कामनाओं की अधिकता से वात रोग होता है। लोभ की प्रधानता से कफ की वृद्धि होती है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध की अधिकता से रक्त विकार, पित्त की प्रबलता रहती है। सर्वप्रथम मन रोगी होता है, उसका प्रभाव तन पर पड़ता है। मन में आधि बढ़ती है, तन में व्याधि आती है, रामायण में लिखा है :–

काम, वात, कफ लोभ, अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।
प्रीति करहिं जो तीनों भाई। उपजत सन्निपात दुःखदाई।।

तुम्हारे निष्काम पुण्य के प्रभाव से श्रद्धा की जो जाग्रति है उसी के प्रभाव से तुम सन्त वचन सुनने को उत्सुक रहती हो। श्रद्धा तो सन्त सेवा की प्यास लिये है परन्तु कोई कर्मभोग बाधा डालते रहते हैं। बुद्धि का तर्क जब श्रद्धा में बाधक बनता है वहीं अपराध बन जाता है। तुम अपने हृद्वय की श्रद्धा और प्रेम को अश्रद्धा व अप्रेम से बचा सको, तब तुम स्वयं सन्त महात्मा हो जाओगी। तुम्हारी निष्काम सेवा से, उदारता से, नम्रता से, पवित्र भावना से, जो शक्ति संचित होती है, वह थोड़े क्षणों के क्रोध तथा दोष दृष्टि से सब बह जाती है। तुम सदा पवित्र देवी स्वरूप में रहती हो परन्तु क्षण मात्र में ईर्ष्या, क्रोध का आवेग चण्डी बना देता है। आदमी को जब क्रोध आता है तब उसे चाण्डाल कहा गया है। क्रोध आने पर वह

चाण्डाल की तरह अपवित्र हो जाता है। तुम नित्य शुद्ध, बुद्ध, पावन, चेतन स्वरूप आत्मा हो। तुम क्रोधी, ईर्ष्यालु, दम्भी की संगति से बचो या फिर सभी में परमात्मा को देखो।

पथिक

*****

विनाशी देह में ज्ञानस्वरूप आत्मा को नामरूप में स्मरण !

पुण्यमय जीवन उसी का है जो परमदाता प्रभु से प्राप्त में संतुष्ट एवं प्रसन्न रहता है और किसी को अपने सुख के लिये दुख नहीं देता, निष्काम रह कर सुख ही देता रहता है।

परहित सरिस धर्म नहीं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधि माई।

इतना अवश्य है कि जो अपने ही दोष से दुखी रहता है उसमें तुम्हारा अपराध नहीं है। इतना ही हम सभी को स्मरण रखना चाहिये कि अपने सुख के लिये किसी को दुख न दिया जाये, किसी का अपमान न किया जाये, किसी से घृणा न की जाये। परमात्मा ने तुम्हें जो कुछ दिया है उसी में प्रसन्न रहो। मनुष्य से आशा न करो, मनुष्य स्वयं ही भिखारी है, परमात्मा ही पूर्ण दाता है। तुम्हैं जो शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता सुलभ है, उससे सेवा करती रहो। अपने लिये किसी से कुछ न चाहो। तुम्हारे लिये परमात्मा ही देने को पूर्ण समर्थ है। अपनी स्वतंत्र प्रसन्नता से सबको प्रसन्न रहने दो। शक्ति सेवा के लिये, ज्ञान अपने परीक्षण के लिये और प्रेम प्रभु के लिये होना ही मानव के लिये परम हितकर है।

लोग कहते हैं महात्मा क्यों बीमार होते हैं उन्हैं यह पता होना चाहिये कि देह, इन्द्रियां मन महात्मा नहीं होता। जो जीवात्मा परमात्मा से अभिन्नता का अनुभव करे वही महात्मा है। जो संसार के पदार्थों को अपनी वस्तु मानता है वही बद्ध जीवात्मा है। ज्ञान का आश्रय लेकर प्रसन्न रहो, निर्मल रहो।

पथिक

*****

प्रिय नामरूपों में प्रकाशित परम प्रेमास्पद आत्मदेव को प्रमाण !

पशु को स्ववश में करके प्रभु तक पहुँचने का पथ स्वधर्म है। धर्म की पूर्णता सर्वहितकारी प्रवृत्ति से होती है। इसके लिये निष्काम सेवा,

दान, आवश्यक है। पराधीनता में मिलने वाले सुख में आसक्ति रहने तक सेवा पूर्ण नहीं हो पाती। ममता भी सेवा में बहुत बाधक बनती है। जिससे ममता होती है, उसी से कामना पूर्ति की आशा रहती है। ममता रहने तक हम प्रभु को सब कुछ नहीं मानते। अपना मानने से ही अधिकारों की मांग होती है। अधिकारों का त्याग किये बिना कर्तव्य की पूर्णता नहीं होती है। दूसरों से सुख चाहना अधर्म है, पराधीनता है। स्वंय का पागलपन स्वयं को नहीं दिखता। अपने को प्रभु के हाथों में छोड़ दो । देखते जाना कि क्या आता है, क्या जाता है, प्रभु तो अपने साथ हैं ही। सन्त कहते हैं कि भंयकर दुख से बचना हो, तो सुख के भोग में शक्ति नष्ट न कर, सेवा करो। सेवा करते हुये अपने मन की पूर्ति न चाहो। दूसरों के कतर्व्य न देखो, अहंकार का बोझा उतार दो, तभी समर्पण होगा। बुद्धियुक्त होकर देखो, किसी के साथ जो किया है वही वापस लौटेगा। कोई गाली दे, अपमान करे, क्रोध करे तब उसे मेहनत करते हुये देखो अपने को सजा क्यों दो। शान्त, स्वस्थ रहना चाहिये। जब हम अशान्त हो जाते हैं तब स्वस्थ नहीं रहते। सन्त मत है कि अकेले रहकर जितना शान्त मौन में ठहरोगे, उतना ही जीवन का वैभव एवं विश्राम सुलभ होगा। पूजा, पाठ, जप आदि से यह नहीं होता।

अहं को आकारों से मुक्त करने पर ही समर्पण पूर्ण होता है। जगत में वे ही दरिद्र हैं जो प्रेम को नहीं जानते। क्योंकि मान्यताओं के आकार अहं ज्ञान को ढके हुये हैं। तुम कुछ न बनो, परमात्मा के हाथों में छोड़ दो। वह बनाये, तो बनो, मिटाये तो मिटो। अहंकार मिटने पर केवल प्रेम बचता है। खोये हुये अवसरों के लिये कई कई जन्म प्रतीक्षा करनी पडती है। सेवा, त्याग, दान के अवसर मिले परन्तु अहंकार ने सब नष्ट भ्रष्ट कर दिया। मनुष्य अपनी अहं कृतियों से बंधता है अतः मुक्त होने के साथ स्वतंत्र है। बीते हुये की याद न करो, भविष्य की चिन्ता न करो। वर्तमान को सुन्दर बना लो। अभी शक्ति, समय है, बाहर कुछ नहीं छोड़ना है। भीतर मन की दरद्रिता को पहचानना है और हृद्वय को उदार विशाल बनाना है, इसके लिये प्रेम को बाँटते रहना है प्रेम तो अनन्त परमात्मा से मिलता ही रहता है, बाँटने से कभी घटता नहीं।

कई बार सुना है कि जितना अधिक मान की चाह उतना ही अपमान का दुख, जितना लोभ, मोह उतना अधिक हानि का, वियोग का दुख। किसी अन्य को दुखदाता मानो ही नहीं। विद्या का सदुपयोग अपने

जीवन को सुन्दर बनाने में करो। यह समय व्यर्थ–अनर्थ में तुमने खो दिया तो दोषी हो। बहुत कुछ अभी बचा है।

सैकडों अशिक्षित तुमसे अधिक विनम्र हैं, शान्त हैं, प्रसन्न हैं, तुम शिक्षित होकर अशान्त हो, दुखी हो, क्योंकि अपने दोष नहीं दिखते। अहंकार भिखारी है, दरिद्र है। अब अपने प्रियजनों के प्रति मान के, प्यार के, अधिकार के दानी बनो, दीन बनो, अपना कुछ न मानो। अब अंकिचन होकर अपने प्रभु के समर्पित हो जाओ वह प्रभु चाहे भीतर देखो या बाहर देखो। अभी जिन लोगों में केवल श्रद्वा आगे है वही मेरे प्रति दैवी गुणों की जाग्रति से संतुष्ट हो रहे हैं। उन्हे दोष दर्शन का अवकाश ही नहीं है क्योंकि मुझ से कोई सुखोपभोग की कामना नहीं है, कहीं मैंने पढ़ा था :–

1. पदार्थों का जो परस्पर आर्कषण है वह विद्युत का है।
2. दो शरीरों के मध्य जो आकर्षण है वह कामोपभोग का है।
3. दो मनों के बीच जो आकर्षण है वह प्रेम के कारण है।
4. दो आत्माओं के बीच जो आकर्षण है वह सात्वविक श्रद्धा का है, यही श्रेष्ठतम है।

मेरे संग से लोगों को वही प्राप्त होता है जो अन्तर चेतना में है। इसी प्रकार अन्य सभी के संग से मेरे भीतर वही प्रकट होता है जो बाहर नहीं दिखता। जो साधु स्वभाव में जितनी देर जाग्रत रहते हैं उतने समय साधु, ज्ञानी, भक्त सब कुछ सुन्दर ही दिखते हैं। इतना ही अन्तर है किसी में क्रोध पत्थर की लकीर की तरह, किसी में पानी की लकीर की तरह, किसी में बालू की लकीर की तरह दिखता है। एक सन्त फ्रांसिस की कथा पढ़ी थी। अपने शिष्य के साथ एक गाँव जा रहे थे। मार्ग में आंधी, वर्षा के कारण पेड़ के नीचे रूकना पड़ा, भींग गये। गांव दूर था। रात हो गयी। सन्त ने चलते–चलते कहा साधु वह नहीं है जो अन्धों को आखें दे सकता है, बीमारों को ठीक कर सकता है, किसी मुर्दे को जिन्दा कर सकता है। वह वास्तविक साधू नहीं है जो पशुओं की भाषा समझता है एवं सारे जगत का जिसे ज्ञान है। वह भी वास्तविक साधु नहीं है जो दूसरों के मन की बात बता देता है, जो वस्त्र नहीं पहनता, जो शास्त्रों का पण्डित है, जो बहुत सुन्दर कुशल वक्ता है, वह भी वास्तविक साधु नहीं है। दोनों भीगे वस्त्रों में कीचड़ से लथपथ चलते रहे। गाँव में दिये दिखने लगे तब शिष्य से पूछे बिना न रहा गया, उसने पूछा तब साधु कौन है। गुरू ने उत्तर

दिया कि हम गाँव पहुँचने को हैं। सराये का द्वार खटखटायेंगे, द्वार पाल पूछेगा तुम कौन हो और हम कहेंगे कि तुम्हारे दो बन्धु, दो साधु, यह सुनते ही यदि वह कहे कि भिखारियों, मुफतखोरो, यहाँ से भाग जाओ। यहाँ तुम्हारे लिये कोई स्थान नहीं है और वह द्वार बन्द कर ले। हम भूखे थे आधी रात में फिर द्वार खटखटायेंगे। वह अबकी बार निकले लकड़ी से चोट करे और कहे बदमाशो परेशान मत करो यह सुनकर हमारे भीतर कुछ न हो वहाँ वह शान्त शून्य बना रहे और द्वारपाल में भी प्रभु दिखता रहे, तब वही वास्तविक साधू है।

पथिक

*****

विनाशी नाम रूप में अविनाशी को नमस्कार!

कितने वर्षों के बाद तुमने पूछा कि क्या करना चाहिये। अहंकार अभी बहुत कठोर है। धीरे धीरे पिघलेगा, गलेगा, वही तरल प्रेम के रूप में स्वयं के लिये तृप्ति कर होगा। ज्ञान तो अपना स्वरूप ही है। उस ज्ञान का भोगी अहंकार परतन्त्र होकर सुख दुख का भोगी बनता है। तुम जो अध्ययन करती हो वह बहुत शुभ है, अब स्वयं का अध्ययन सावधानी से करो। साक्षी होने पर ज्ञान चक्षु खुलते हैं। सत् चेतन आत्मा प्रतिपल विद्यमान है। इसके ध्यान के लिये कहीं जाना नहीं है। ऐसा कोई क्षण नहीं जब सत् नहीं हो। सत्संग के लिये, शान्ति के लिये, कहीं जाना भ्रम है। जो सुख के लिये दौड़ता है, महार्षि वशिष्ठ ने उसे गधा कहा है। आत्मा, ईश्वर, चेतन एक ही है। कामना द्वारा शक्ति का क्षय होता है। चेतन आत्मा होकर रहो। जो स्वयं में तृप्त, संतुष्ट है वही अहिसंक है। आत्मवान होकर रहने से अहंकार मिटता है। आत्मा ही अहंकार मय है, अहंकार ही मनोमय है, मन ही इन्द्रिमय है। सब दोष, गुण, भय, चेतन, आत्मा में ही हैं। जहाँ जहाँ सुखाभास होता है वहीं विषयविष है। पढ़ाने के अतिरिक्त किसी के बीच में रहने पर बहुत कम बोलो, सलाह न दो, ज्ञान का अभिमान आसानी से नहीं दिखता। शान्त, मौन रहने का समय बढ़ाते रहना उन्नति का उपाय है। सुविधाओं का सुख ही पराधीन बनाता है। दुख से सभी हटना चाहते हैं परन्तु सुख से आत्म ज्ञानी ही हट पाता है। कुछ गुरू वाक्य सुन्दर हैं, हम लोगों के लिये स्मरणीय है :–

1. जो बिना परिश्रम के अपने आप में प्राप्त हो जाये उसी का नाम परमात्मा है।

2. यदि तुम शरीर को ढूढ़ने चलोगे तो संसार में पाओगे, अपनी खोज करोगे तो परमात्मा में पाओगे।
3. ऐसा कोई क्षण नहीं जब आत्मा–परमात्मा न हो। जो निरन्तर सुलभ है उसी की प्रायः विस्मृति रहती है। जो नहीं है, उसी की याद आती है। परमात्मा की विस्मृति रहती है।
4. बल के द्वारा संसार की सेवा हो सकती है यदि ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध, सुखोपभोग से बचा लिया जाये।
5. ज्ञान के द्वारा मुक्ति मिल सकती है, यदि विनाशी पदार्थों को अपना न माना जाये।
6. बिना देखे परमात्मा में प्रेम स्थिर किया जा सकता है यदि अपने आप को परमात्मा में होने का विश्वास दृढ़ किया जाये।
7. यह तभी सम्भव है जब जीवन में किसी को सुखदाता या दुखदाता न माना जाये। इसी मान्यता के कारण मानव रागी–द्वेषी बना रहता है।
8. राग–द्वेष के रहते त्याग और प्रेम की पूर्णता नहीं होती। प्रेम की पूर्णता में ही आनन्द है। त्याग की पूर्णता में ही परम शान्ति है।
9. हम सभी साधक प्राय राग द्वेष की सीमा को अज्ञानवश पार नहीं कर पाते हैं। इसीलिये यज्ञ, दान, तीर्थ सेवन अथवा कथा श्रवण आदि शुभ कर्मों द्वारा भी शान्ति, मुक्ति और भक्ति से वंचित हो रहे हैं।

यह पथिक अपने प्रभु को स्मरण करते हुये इस समय आनन्दित है।

पथिक

*****

सर्वनाम रूपधारी परमात्मा को नमस्कार!

नौरात्रि से पुरूषोत्तम चल रहा है। अन्न, दूध, साग सब बन्द है। शहद, पानी और सेब से काम चल रहा है। शरीर दुर्बल भले ही हो पर शक्ति तो परमात्मा से आती है, वह कम नहीं है। भोजन से अणु बढ़ते है, घटते हैं, शक्ति नहीं मिलती। यह निरन्तर स्मरणीय है कि हम सब परमात्मा की शक्ति हैं, परमात्मा की ही प्रीति हैं, परमात्मा का ही ज्ञान हैं। देहादिक पदार्थ परमात्मा की प्रकृति के हैं, हम देह नहीं है, देह मेरी नहीं है। संसार में अपना कुछ नहीं है। सब कुछ परमात्मा का है, हम परमात्मा के ही हैं। इतना अधिक स्मरण रखना है कि देहादिक वस्तुओं, व्यक्तियों

से आत्मीयता मिटाकर परमात्मा के साथ आत्मीयता प्रीयता दृढ़ हो जावे। प्रीति में ही तो प्रियतम प्रभु का निरन्तर वास है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशि।।

तुम जितना भी चेतना में, बुद्धि मन स्थिर रखोगी उतना ही चेतना, शक्ति, विज्ञानमय कोष में उठेगी। कृतज्ञता, नम्रता, शान्ति, संतोष से अहंकार को भरे रहो।

आपने कई बार सुना है कि दर्पण में मुख वैसा ही दिखता है जैसा होता है। उसी भांति संग से हमारे भीतर जो कुछ गुण दोष होते हैं वही प्रकट हो जाते हैं। कोई दूसरा सुख या दुख का देने वाला नहीं है। हम जैसा मान लेते हैं वैसा ही प्रतीत होता है। जब हम अन्य को सुख दाता, दुख दाता मानते हैं तभी रागी–द्वेषी बनते हैं। जब तक हम रागी द्वेषी हैं तब तक प्रेम के राज्य में आनन्द पाने के अधिकारी नहीं हो सकते हैं। हम लोग इतने स्वतंत्र हैं कि जैसा भी पापी, पुण्यवान होना चाहें वैसा ही हो रहे हैं। हम गुरू ज्ञान का तथा सदुपयोगका अनादार करने के कारण ही स्वतंत्रता का दुरूपयोग करते हुये अशान्त दुखी होते हैं। हम स्वतंत्रतापूर्वक प्रेम को देते रहें तो कोई रोकने वाला नहीं परन्तु अहंकार भिखारी है, दरिद्र है, यह मांगता ही रहता है। यदि कभी देता भी है तो लेने, पाने की आशा से देता है। जो प्रेम चाह की पूर्ति में रूक जाता है वही तो मोह है। परमात्मा ही प्रेम का अनन्त श्रोत है। प्रेम लेने के लिये नहीं प्रत्युत्त देने के लिये होना चाहिये परन्तु मूढ़तावश हम लोग सौभाग्य की दिशा में न चलकर दुर्भाग्य की दिशा में दरिद्र बने रहते हैं। कई बार सुना है कि ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध से हम लोग अपना या दूसरे का हित कर ही नहीं सकते हैं। हम लोग गुरू वाक्यों का अनादर करते हुये दैनिक अपराध करते रहते है, तब जो करना चाहिये वह नहीं कर पाते। हमारे भीतर बीते हुये का मनन चलता है यह भूत है, आगे का चिन्तन होता है यही प्रेत है। यही दोनों वर्तमान में कर्तव्य परायण एवं सत्य का चिन्तन नहीं होने देते। जब हम दूसरों को दोषी मानकर दुखी होते हैं तब अपने प्रति हम घोर अपराध करते हैं। यह दुर्भाग्य गुरू वाक्यों के स्मरण मनन से सौभाग्य में बदल सकता है।

पथिक

*****

नमो परमात्ने!

दो बजे पंजाबी बाग आ गया था। एक झोला वहीं रह गया। यदि उसे मैं लिये होता, तो न भूलता। सेवा करने वालों के कारण अपने से भूल हो जाती है। यही पराधीनता का परिणाम है। मुझे कोई परेशानी नहीं है। याद आते ही यह विचार आया कि अभी तो शरीर की सुविधा का सामान ही छूटा है एक दिन यह शरीर ही छूटने वाला है, जो सदा रहने वाला है उसी का स्मरण रहना चाहिये। मैं झोले में जब समान देखता था तब मन में आता था कि इतना व्यर्थ का समान क्यों ढोया जाता है। शरीर की आवश्यकता तो बहुत कम वस्तु की है। एक आदत सी बन गयी है। अन्न जल सभी जगह मिल जाता हैं। चाहे जितनी देह की सेवा की जाये फिर भी दुख आ ही जाता है। कष्ट भी उतना ही अधिक होता है जितना सुविधा का सुख भोगा जाता है। समान छूट गया तो बहुत हल्कापन मालूम होता है। कोई कष्ट नहीं है। सब कुछ छूट जाये तब भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। क्योंकि सत्य परमात्मा तो निरन्तर साथ ही है, परन्तु विवेक हर जगह नहीं रहता। कभी लेने का लोभ रहता है, वही लोभ सेवा करने में बदल जाता है। पहले खाने का लोभ फिर खिलाने का लोभ भी आसानी से नहीं छूटता। मैं प्रसन्न हूँ।

ज्ञान में देखने से ज्ञात होता है कि गीता में कृष्ण नहीं दिखते, रामायण में भी राम की कल्पना ही होती है। वेदों में ब्रम्ह् नहीं दिखता। सभी ओर से सूचना मिलती है कि जहाँ हम स्फुरित हो रहा है वहीं आत्मा, परमात्मा, राम, कृष्ण, विद्यमान हैं। अहंकार अपनी मान्यताओं को ओढ़कर अपनी वृत्तियों से संतुष्ट सुखी हो रहा है। प्रतिकूलता से दुखी होता है। अधिक यात्रा से शरीर में प्रतिकूलता रहती है। कहीं एक जगह ठहर नहीं पाता।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी ज्ञानस्वरूप आत्मा को नामरूप में स्मरण !

अपना अध्ययन करो। सुन्दर सद्‌गुणों के मध्य में असुन्दर दुर्गणों को हटाने के लिये सावधान रहो। श्रद्धा को अश्रद्धा से, दानवृत्ति को अदान से और सत् को असत् के आवरण से बचाते रहना सौभाग्य निर्माण की कला है। दुख की पूर्ण कृपा होगी, तभी अहंकार दीन होकर झुकता है,

या फिर भरपूर सुखी ही शान्ति मुक्ति चाहता है। जो न पूर्ण दुखी है, न पूर्ण सुखी है। वही उपदेश के अनुसार नहीं चल पाते हैं। सदा प्राप्त परिस्थिति पर संतोष करो। जो कुछ जाये उसकी चिन्ता न करो। जो बचा है उसको देखो, सदुपयोग करो, क्योंकि किसी दिन वह भी न रहेगा। प्राप्त का सदुपयोग, अप्राप्त की कामना का त्याग करना विवेकी का कर्तव्य है। उपनिषद में एक मंत्र है।

आत्म तीर्थ महातीर्थ, अन्य तीर्थ निरर्थकम।
चिन्तमतर्गतदुष्टं तीर्थ स्नानैन शुद्धयति।।

चेतन आत्मा ही महातीर्थ है अन्य तीर्थ निरर्थक हैं क्योंकि भीतर यदि चित्त दुष्ट है तो बाहर तीर्थ स्नान या सेवन से शुद्धि नहीं होती।

मनुस्मृति में लिखा है कि सयानी लड़की की शादी माता पिता न कर सकें तो स्वयं ही वर को खोज लेना अनुचित नहीं होता है। सम्बन्ध करा दो बाकी भाग्य पर निर्भर है। उसके भाग्य में यह सम्बन्ध है, निश्चित समझना। यदि कोई बाधा नहीं आती तो आगे की चिन्ता व्यर्थ है, थोड़े दिन का खेल है। अच्छा बुरा मानना मन की भ्रान्ति है। संसार में सब कुछ मिथ्या है, परमात्मा ही सत्य है। यदि बाधा न आये तो सम्बन्ध तय करा दो, कमी रहे तो मद्द करते रहना। लड़का कुछ कमाता है तब ठीक, यदि बेकार होता तब ठीक न था। तुम मन की अनुकूलता का पक्ष न लो। प्रतिकूलता में उन्नति की दिशा मिलती है।

यदि श्रद्धालू व्यक्ति के सामने दुखद परिस्थिति है तो बहुत ही शुभ है, नहीं तो वह सुखोपभोग में ही जीवन व्यर्थ खो देगा। अश्रद्धालू के लिये तो दुखद परिस्थिति से जीवन उत्थान की आशा नहीं होती। जो वह श्रद्धा रखती हैं, उन्हें कुछ समझाया जा सकता है। सुखद में सेवा कर सकती हैं और दुखद परिस्थिति में त्याग का पाठ पूरा कर सकती हैं।

पथिक

*****

नमो परमात्मने!

अपने सुख का पक्ष लेकर यदि किसी की उपस्थिति से खिन्न हुआ जाता है, तब तो यह महामूढ़ता है, दरिद्रता है। यदि दूसरे की अशान्ति को सोचकर उपस्थिति से उदासीनता रहना दिखता है तब तो

हित भावना है। अपने तन से, मन से, वाणी से, दूसरों का हित चाहना पुण्य है, अहित चाहना पाप है।

श्रद्धा की रक्षा करो, अश्रद्धा का आक्रमण न होने दो।
उदारता पर कृपणता का आक्रमण न होने दो।
क्षमा को क्रोध से न ढकने दो।
आत्मज्ञान को देहाभिमान से न ढकने दो।
सेवा को स्वार्थ से दूषित न होने दो।
शक्ति को व्यर्थ अनर्थ से नष्ट न होने दो।
अपने चेतन स्वरूप में बार बार बुद्धि को विश्राम दो।

मैंने कई बार लिखा और कहा भी, कि ऐसा कोई दुख नहीं हो सकता जो हमारे ही दोष के कारण न हो। हमें जितने अधिक मान की या किसी के प्यार की या धन की, अधिकार की चाह होगी उतना ही अधिक हमें उसके न मिलने पर दुख होगा। यह तुम्हारी बुद्धि क्यों नहीं पकड़ती। हमें दूसरों का क्रोध, दूसरों की ईर्ष्या, दूसरों की घृणा, नफरत आदि दोष दिखते हैं पर अपने भीतर ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा नहीं दिखते। हम अपना अपमान समझकर दुखी होते हैं। लेकिन भीतर अभिमान नहीं देख पाते हैं। जब हम दूसरों के द्वारा अपनी हानि से दुखी होकर दूसरों को दुखदाता मानते हैं तब अपने भीतर का लोभ नहीं दिखता। हम दूसरों को दोषी, अपराधी, दम्भी, छली मानकर अशान्त होते हैं तब अपने भीतर यही दोष नहीं दिखते हैं। जिस पर हमारा कोई अधिकार नहीं उसे अपने अनुकूल बनाना चाहते हैं परन्तु अपने मोही, अभिमानी, सुखलोलुप, कामी, मन पर अधिकार नहीं जमा पाते, इसी कारण से अशान्ति बढ़ती जाती है। अशान्त होते ही अपनी मूढ़ता तथा बुद्धि की मूर्खता के कारण शान्ति पाने के लिये दूसरों के पास जाते हैं। यह भी कितनी न समझी है। अशान्त हम हैं तब शान्ति कौन देगा। भगवान बुद्ध ने यही किसी से कहा था, कि तुम अपनी कामना वासना पूर्ति न होने से अशान्त हो, शान्ति के लिये दूसरों के पास भागते हो। गीता में भगवान ने बताया कि सब कामना छोड़ दो, सुख की स्पृहा छोड़ दो, ममता रहित, अंहकार रहित हो जाओ बस शान्ति ही शान्ति ही है। दोषों के त्याग से तत्काल शान्ति सुलभ हो जाती है, यह गीता का वचन है।

हम भगवान की बात न माने और इन्सान से शान्ति सुख पाने की आशा करते हुये जीवन खोते रहें यह दुर्भाग्य ही तो है। गीता में कहा है कि विषय के ध्यान आते ही संग की कामना होती है। कामना पूर्ति के क्षणिक सुख से आसक्ति बढ़ती है उसमें जो बाधक होता है तब क्रोध प्रबल होता है। क्रोध से कर्तव्य की, स्वरूप की एवं प्रभु की विस्मृति हो जाती है। स्मृति नष्ट होने पर बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धि नाश से विनाश का दुख भोगना पड़ता है। अशान्ति एवं दुख से हमारी बुद्धि ग्रस्तता का परिचय मिल रहा है। फिर भी हम अपनी बुद्धिमता का कितना गर्व करते हैं, अन्तर्यामी बनते हैं। दूसरे के दोषों को, छल कपट को जानने का दावा करते हैं। हम अपने प्रति कटु वाक्यों को सुनकर वर्षों से सम्हालते आ रहे हैं, परन्तु जो गीता रामायण के गुरू वाक्य है, उन्हें भूल जाते हैं। उन्हें नहीं सम्हालते जिनसे हमारा जीवन निर्दोष हो सकता है, अशान्ति से मुक्ति मिल सकती है। हम ऊपर से किसी को प्रणाम करते हैं परन्तु भीतर से उसके ज्ञान का, कथन का, सद्प्रेरणा का घोर अनादर करते हैं। हमारा अहंकार अपने प्रतिकूल लेखों को सजाये बैठा है परन्तु गुरू ज्ञान से भरे पृष्ठों को देखना नहीं चाहता। हमारी बुद्धि भ्रष्ट है, केवल आत्मा की ओर अभिमुख होने पर बुद्धि शुद्ध हो सकती है। अब अहंकार की दरिद्रता को पहचान लो। दानी होकर सुखी रहो, दरिद्रता छोड़ दो, तुम परमात्मा की ज्ञान स्वरूप आत्मा हो, तुम देह नहीं हो।

पथिक

*****

नमो परमात्मन!

सन्त समझाते हैं, काँटों में रहकर फूल बनो। किसी को प्रतिकूल कटू शब्द न कहो। काम, क्रोधादि विकारों में शक्ति, अधोमुखि रहती है। दर्द को, दुख को, साक्षी रहकर देखो। आप लोग बहुत पुण्यों के धनी हो। सेवा के द्वारा पुण्य बढ़ाते रहो। जो चाहोगे वही मिलेगा, गलत हो या सही।धन, सम्पत्ति सभी छूट जायेंगे, उसके द्वारा सेवा करते रहो, उसे सुखदाता मान कर मोही, लोभी न बनो। किसी को सुखदाता मानना ही पराधीन रहना है। जीव स्वयं सुख स्वरूप है। शक्कर स्वयं ही मीठी है वह हलुआ, पेड़ा, बर्फी, आदि वस्तुओं को मीठा मानकर पाने के लिये तरसती है, यही अज्ञान है। सुखदाता, दुखदाता, मानने से ही राग द्वेष हो जाता है, सन्त वचन है :–

सोई ज्ञानी, सोई गुणी, सोई दाता, ध्यानी।
तुलसी जाके चित्त भई, राग द्वेष की हानि।।

अपने प्रेम से तृप्त, संतुष्ट रहो। प्यार, अधिकार, मान सत्कार देते रहो, चाह ही भिखारी, दरिद्र बनाती है। आप लोग बहुत भले पुण्यवान हो। अपने को जानो, तुम परमात्मा के ही अंश हो, देह आदि सब कुछ संसार से मिला है, वह तुम्हारे साथ सदा न रहेगा। सत्, चेतन, आनन्द सदा तुम्हारे साथ है।

प्रवचन से सात्विक मनोरंजन होता है। श्रद्धा बनी रहती है। अवसर न मिलने पर वह भी ढ़क जाती है। अपने सत् स्वरूप की अथवा नित्य प्राप्त सद्चित आनन्द परमात्मा की विस्मृति हो रही है। दूरी तो नहीं होती इसलिये स्मरण मात्र से वह सुलभ रहता है। मन शब्द, स्पर्श, रूप, रस इत्यादि विषय को पकड़ लेता है परन्तु परिणाम नहीं देख पाता है। मनुष्य के मन ने झूठ के साथ समझौता कर लिया है। जो दिखता है सब झूठ है, लेकिन जो देखता है, वही सत्य है। वह सत्य ज्ञान स्वरूप आत्मा तुम्ही हो। मन कहेगा हटाओ शुष्क ज्ञान की बातें। मन को अपनी रूचि की पूर्ति में ही रस आता है। एक दिन जो दिखता है वह नहीं रहेगा। तब दुखी होता है। लेकिन जो देखता है सदा रहता है उसे मन देख नहीं पाता। मन की मानो नहीं और मन से लड़ो नहीं, बस धैर्य से देखते रहना है।

पथिक

*****

मेरे परमात्मन !

सबमें तुम्हें प्रणाम है, अनन्त प्रभो! वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल आकाश पंच तन्मात्रायें प्राण, इन्द्रिय, मन, चित, अहंकार, सम्पूर्ण, जगत एवं सगुण और निर्गुण सब कुछ केवल आप ही हैं।

(श्रीमदभागवत्)

पत्र से आपको निराशा हुई यह भी प्रभु की कृपा है। संसार से निराश हाने पर ही सच्चा भजन हो पाता है। सर्वाश्रय त्यागने पर परम आश्रय उपलब्ध होता है। प्रभु की विशेष कृपा है आप सब सहारों से मुक्त हो। अब यह सहारा भी क्यों रहे, व्यर्थ है। उसी का आश्रय लो, जो कभी नहीं छूटता।

जो इस शरीर का सहारा लेते हैं उन्हें कभी दुखी होना ही पड़ेगा, फिर यह शरीर महा अपवित्र है। अश्रद्धा बहुत अशुभ है, श्रद्धा बहुत शुभ है। जब बुद्धि मौन होती है तभी श्रद्धा होती है। आप निर्भय, निश्चित् होकर बार–बार अपने अविनाशी ज्ञान स्वरूप में बुद्धि स्थिर करो। आप अपने को देहमय, मनमय न मानकर केवल चिन्मय स्वरूप में बुद्धि को स्थिर करो। तुम सद्चेतन आनन्द स्वरूप हो। इसी प्रकार यह शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार, असत् है, जड़ है, दोष–दुर्गुण से भरपूर्ण है। लेकिन चेतन तत्व नित्य पावन है, वह तो प्रेम स्वरूप ज्ञान रूवरूप एवं सत्य है। वह तुम्हीं हो। तुम अपने आप में ही श्रद्धा करो। अपने को देह मन के साथ मिलाना ही असत् संग है। अपने प्रेम को, श्रद्धा को, स्वयं चेतन स्वरूप आत्मा में स्थिर रखना सतसंग है। अपने भाव को ही देखो, अपने आप में श्रद्धा करो, प्रेम स्वयं तुम्ही हो। प्रेम में ही समस्त पुण्य हैं, अप्रेम में समस्त पाप हैं। चेतन आत्मा में बुद्धि को स्थिर करो या फिर ऐसी बुद्धि से भी असंग हो जाओ जो नीचे ही देखती है, जो परदोषदर्शी है। परमात्मा को बार बार प्रणाम है।

पथिक

*****

नमो परमात्मने!

राम सच्चिदानन्द दिनेशा। नहीं तह मोह निशा लवलेशा।
प्रत्येक हृदय में सत्चेतन आनन्द स्वरूप सत्य प्रतिष्ठित है।
आनन्द सिन्धु मध्य तव वासा। विन जाने कत भरत पिपासा।

कई बार बताया गया है कि ध्यान किया नहीं जाता, प्रत्युत्त जो निकट से निकट है उसे ध्यान से देखना चाहिये। अज्ञानी मोही,लोभी जो निकट नहीं है, उसका स्मरण करते हैं। जो राम, कृष्ण, गुरू प्रत्यक्ष नहीं दिखते उस मूर्ति का ध्यान करते हैं। लेकिन जो निकट से निकट देह है उसे अथवा उससे भी अधिक निकट प्राण हैं, धड़कन चलती है, मन है, चित्त है, बुद्धि है, अहं के आकार हैं इन सबको ध्यान से नहीं देखते हैं।

1. यह देह मैं हूँ, यह सब मेरा है, यह कहते कहते मनुष्य उसी मय बन गया है। तब मैं चेतन हूँ, सत हूँ, यह जड़ देह, मैं नहीं हूँ। यह कुछ भी मेरा नहीं है। ऐसा सोचते सोचते किसी समय सत् चेतन स्वरूप का अनुभव होने लगता है।

2. अनुभूति होने पर साधना की आवश्यकता नहीं होती। साधना करते करते अनुभूति होती है।

3. तुम्हारा कहना है कि आपके निकट गुण ही उमड़ने चाहिये दोष नहीं। भगवान राम, कृष्ण के दर्शन करने वालों में भी भीतर रहने वाले दोष उमड़े। श्रद्धा, उदारता, नम्रता, सरलता, मधुरता तो ऊपर से भी ओढ़ी जा सकती है परन्तु भीतर के दोष यदि न प्रकट होंगे तब तक बाहर का श्रम व्यर्थ ही होगा। तुम्हारे हृद्वय की प्रीति जिन दोषों से ढकी है उन्हें देखो।

4. सुसंग का प्रभाव सब पर एक समान नहीं पडता।

जिन जैसा सत्संग किया, तिन तैसा गुण लीन।

कदली सीप भुजंग मुख, एक बूंद गुण तीन।।

गन्दे कपड़े पहनकर समझदार कुलीन नारी किसी भद्र पुरूष के सामने नहीं जाती, इसी प्रकार तुम्हारा मन मष्तिक सही न हो, तब किसी के सामने नहीं जाना चाहिये। सेवा, दान, सम्मान तत्काल करना चाहिये। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधावेग में 24 घण्टे ठहरना शुभ होता है।

प्रीति कबहूँनहिं जोरिये, जोरि तोरिये नाहिं।

पुनि जोरे तोरे बहुरि, गांठ परत मन माहिं।।

श्रद्धा में पाप नाश होते हैं अश्रद्धा में यही पाप बन जाते हैं। अश्रद्धा हो जाये तब बार बार श्रद्धा का परिचय देना भी दुर्बलता है। बहुत बुद्धिमानी, धन, मान, भोग के लिये तो ठीक है। श्रद्धा प्रेम में तो यह बहुत अड़चन डालती है। बुद्धि जब मौन हो जाती है तब श्रद्धा में समर्पण पूर्ण होता है।

चतुराई चेतना सभी चूल्हे में जावे।

बस मेरा मन एक, प्रभु ईश चरणाश्रय पावे।

आग लगे आचार–विचारों के उपचय में।

उस प्रभू का विशवास सदा दृढ़ रहे हृद्वय में।।

(तिलक गीता)

पथिक

*****

परम हितैषी सुखदाता श्रद्वालु, उदार, दानी, प्रेम स्वरूप, ज्ञान स्वरूप, निरन्तर शान्त प्रसन्न रह सकने वाली चेतन स्वरूप आत्मा को नामरूप में स्मरण!

तुम्हारी अशान्ति को, दुखी दशा को देखकर करूणावश यही अभिलाषा रहती है कि किसी कारण अपने विवेक का आश्रय लेकर तुम निरन्तर शान्त प्रसन्न रहो। क्योंकि तुम्हें परमात्मा से शक्ति चेतना मिल रही है। जो ज्ञान तुम्हारे साथ है। जो प्रेम तुम्हे अपने आनन्द की छाया में सुखाभास करा रहा है। वह ज्ञान, प्रेम, शक्ति, संसार में कोई दे ही नहीं सकता। तुम अपने प्रभु के महान दान को देखो, उसी में संतुष्ट, प्रसन्न, शान्त रहो। प्रेम को बाँटती रहो। चाहो नहीं, दूसरों को सुखी बनाये रहने के लिये मन को, वाणी को, प्रेम से मधुर ही बनाये रहो। अशान्त होने पर इस मंत्र का जाप कुशा के आसन पर बैठकर तीन माला जप प्रातः एवं सायं करना है। उत्तर की ओर मुख करके इस जप से तीन दिन में शोक अशान्ति हट जाती है।

ऊँ क्लीं श्रीं या देवी सर्वभूतेषू शान्ति रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्ये नमस्तस्ये नमस्तस्ये नमो नमः क्लीं श्रीं ऊँ।।

तुम्हारा मन नहीं लगता जप में, तब तुम कुछ न करो जिस तरह मन से तुम जप करना चाहती हो पर वह नहीं पसन्द करता, तब तुम मन की कोई बात पूरी न करो। केवल दृष्टा बनो, मन के अनुसार कर्ता न बनो। बुद्धि को विवेकवती बनाओ। विवेक ही कल्याणकारी शक्ति है। विवेक से ही कर्म के परिणाम का ज्ञान होता है। तुम यही तय कर लो कि मुझे कुछ न चाहिये तब तुम्हें अशान्ति न होगी। जब तुम कुछ न चाहोगी तब तुम्हें अपना अपमान, अनादार प्रतीत न होगा।भक्त का वचन है :–

मेरी चाही करन की, यदि है तुम्हरी चाह।
तो अपनी चाही करो तुम, यही हमारी चाह।।

पथिक

*****

विनाशी नामरूपधारी परमात्मा को सब ओर से प्रणाम!

आपकी श्रद्धा देह पर नहीं है परन्तु अज्ञानवश प्रीति देहमय बन रही है। श्रद्धा मनोमय दरिद्र अहंकार के प्रति भी नहीं है परन्तु अविवेकी बुद्धि अहंकार को ही देख रही है। आपकी श्रद्धा ज्ञान के प्रति है, परन्तु

अज्ञान की परिधि को पार नहीं कर पा रही है। अब सावधान हो जाओ। जो बुद्धि, विद्या हजारों लोगों को सुलभ नहीं है वह आपको सुलभ है, अब उसका सत्य के लिये ही उपयोग करो, भविष्य तुम्हारे द्वारा ही निर्मित होगा। मन तो अहंकार के आगे नहीं जायेगा, वह यहीं अटकायेगा। आप श्रद्धा, ज्ञान स्वरूप आत्मा में ही दृढ़ करो, वह सदा निर्विकार है, शुद्ध है, आनन्दमय है। देह का आश्रय लेना होगा लेकिन स्थूल देह का नहीं। आपके मन में जो देहमूर्ति विद्यमान है उसी के ध्यान से सत्य ज्ञानस्वरूप से सम्बन्ध दृढ़ करो। यह स्थूल देह विकारी है, भीतर सब कुछ अपवित्र है परन्तु मानसिक मूर्ति में कोई विकार, दोष, दुर्गन्ध नहीं है। यह देह जला दी जायेगी, राख बन जायेगी पर तुम्हारे मन की मूर्ति कोई जला नहीं सकता। तुम्हीं हो, उसे भले ही बिगाड़ लो या अधिकाधिक सुन्दर बना लो। आपको जो कुछ कहना हो जो कुछ रोना, गाना, सुनाना हो उसी मानसिक देह के सामने रक्खो, इसे बनाने दिखाने की जरूरत नहीं। तुम्हारे दुर्भाव, सद्भाव का उत्तर वहीं से मिलेगा। हमारे गुरूदेव को जब कोई अपने यहाँ ले जाना चाहता तब यही कहते थे कि इस मिटटी को, इस ठूठ को ले जाकर क्या होगा, इसका ध्यान करो, ध्यान में मिलो वहीं से सब कुछ होता है। आपका मन और सभी का मन तो स्थूल देह को चाहता है परन्तु यह झूठा सम्बन्ध है। अश्रद्धा से बढ़े हुए पुण्य भी क्षीण हो जाते हैं। कहा भी है।

'अश्रद्धा परमं पापं, श्रद्धा पाप प्रमोचनी।'

तुममें जितनी भी मात्रा में सरलता, नम्रता, उदारता, सहिष्णुता, निष्कामता और किसी के प्रति आत्मीयता, श्रद्धा, प्रीति बढ़ती जायेगी। उतनी ही मात्रा में दोष घटते जायेंगे। जिसके प्रति तुम्हारी श्रद्धा आत्मीयता है, प्रीति है, उसी के साथ तुम्हारे भीतर गुणों का विकास, दोषों का नाश हो सकता है।

प्रेम की पूर्णता में दोषों का पूर्ण त्याग अनिवार्य है और दोषों के त्याग के लिये सेवा ही क्षेत्र है, साथ ही दान की पूर्णता ही दोषों के त्याग में सहायक है। तुममें उदारता की, सेवा की, सहिष्णुता की कमी नहीं है। केवल अहंकार की कठोरता ही अभी गलनी है, पिघलनी है जल जमकर बर्फ बनता है और बर्फ पिघलकर जल के रूप में परिणत होता है यही अहंकार का रूपान्तर होना है। सब कुछ ले लो किन्तु तुम्हारी सेवा का अधिकार रहे। प्यार रहे न रहे, पर प्रिय मुझ पर सेवा का भार रहे। यह

उद्गार उसी प्रेम भरे तृप्त संतुष्ट हृद्वय के हैं जो अपने ही प्रेम में तृप्त है, संतुष्ट है, उसे न कुछ पाना है, न बचाना है, उसका प्रेम परम तृप्ति दाता प्रेमास्पद से है।

माता, पुत्र लक्ष्मण को समझाती है।

राग, द्वेष, ईर्ष्या मद मोहू। जनि इनके सपनेहू बस होहू।
सकल प्रकार विकार विहाई। मन वच कर्म करेहू सेवकाई।।
सबसे सेवक धर्म कठोरा, जो सेवक साहिवहिं संकोची।
निजहित चहई तासू मति पोची।।

विन विंधे कलियाँ हो सकीं हार क्या। कर सका कोई सुखी हो प्यार क्या।।
प्रेम की चाह में स्वयं ही खो गया। प्रेम था जिससे वही खुद हो गया।।

यह प्रेमी भक्त के उद्गार हैं।

तुम प्रसन्न रहो, सबको प्रसन्न रखो। दुखी होना अपने प्रति अपराध है और दूसरों को दुखी करना पाप है। बहुत बचती रहो पाप एवं अपराध से। सांस के आने जाने को मन से देखती रहो अर्थात उसी आने जाने में मन लगाये रहो। प्राप्त शक्ति परमात्मा की है उसी में समस्त गतियां हो रहीं हैं। सभी गतियों के पीछे परमात्मा की शक्ति का स्मरण करते हुये परमात्मा की उपस्थिति का अनुभव करो।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी आत्मा को नाम रूप में स्मरण!

यदि तुम श्रद्धा, प्रेम, नम्रता, उदारता, सेवा भाव से हृद्वय को भरे रहो, तो सदा अनुकूलता रहेगी। अपना मन खराब न किया करो, कोई शिकायत को स्थान ही न दो। माना कि तुमसे किसी से बहुत प्रतिकूलता हो गयी तुमने अनुमान कर लिया कि अमुक व्यक्ति मेरे प्रतिकूल है, लेकिन वह व्यक्ति जब मिला तब बहुत अनुकूलता रही, प्रत्यक्ष तुमने अनुकूलता का आनन्द देखा और फिर भी पहले की प्रतिकूलता की कल्पना से मन को खराब कर लिया। यह स्वर्ग का नर्क बना डाला। कोई तुम्हारा शत्रु भी रहा हो पर जब मित्र भाव दिखा तब पहले के प्रतिकूल भाव का चिन्तन मनन

करना मूर्खता है, ऐसा न करो। अपने प्रेम में प्रसन्न रहो, तृप्त रहो, किसी से आशा न करो, किसी से अपेक्षा न रक्खो। अपने प्रेम में, अपनी सेवा में, भावना में, अपने दान में तृप्त रहो। दूसरा तुम्हें कुछ दे न दे, तुम कुछ चाहो ही नहीं। आनन्द, शान्ति, प्रेम तुम्हारे साथ ही हैं खूब बाँटो, चाहो नहीं।

जिस पर लोभ, मोह, क्रोध विकार चढ़ जाते हैं वही शक्ति हीन होता जाता है। जो क्रोधादि, विकारों पर चढ़ जाता है, वही शक्तिशाली होता है। एक ओर यह जीव जड़ शरीर से तन्मय है दूसरी ओर नित्य चेतन सत् परमात्मा से मिला हुआ है। देह का ही स्मरण अधिकतर रहता है नित्य अविनाशी चेतन का स्मरण नहीं रहता। अभ्यास हो गया है, अभ्यास से ही अभ्यास बदल सकता है। सजग रह कर कोई भी गलत आदत बदली जा सकती है। यदि तुम सजग रह कर जो कुछ देह में, वाणी में, इन्द्रियों में, क्रिया हो रही है उसके देखते रहने में तत्पर रहो, तो जो भी गलत अभ्यास है वह सही हो सकता है। सजगता की ही अपेक्षा है। जीवन का सुन्दर निर्माण मानव के संकल्प पर ही निर्भर है। तुम संकल्पवान हो। मनुष्य इच्छा की पूर्ति का संकल्प करता है। लेकिन इच्छाओं की निवृत्ति का संकल्प नहीं करता। इच्छा की पूर्ति से क्षणिक सुख मिलता है, शान्ति नहीं मिलती। शान्ति के लिये इच्छाओं की निवृत्ति आवश्यक है। इच्छायें उसी में नहीं रहती, जिसका हृद्वय प्रेम से तृप्त हो रहा है। सच्चा प्रेमी अपने प्रेमास्पद की पूर्ति में ही संतुष्ट, प्रसन्न रहता है। तुम्हारे हृद्वय में प्रेम की प्रधानता होनी चाहिये। प्रेम ही दानी, उदार, निष्काम, सहिष्णु होता है।

पथिक

*****

प्रेममय प्रभु की श्रद्धालू आत्मा को स्मरण!

खोजो, जन्म के प्रथम, मृत्यु के बाद, तुम्हारा क्या रूप नाम था। हजारो जन्मों के पहले? मृत्यु के पीछे तुम किस रूप में होते हो। जहाँ मन नहीं होता, जितनी देर नहीं रहता, उतने में ही परमात्मा प्रगट है।

ध्यान का अर्थ अविचलित चेतना। मन का अर्थ है विचलित चेतना।

मौन का समय बढ़ाकर यदि सवा घंटा आंख बंद कर बैठ सको, करो कुछ नहीं, सिर्फ देखते रहना जो कुछ भी तन में, मन में, प्राण में, हो रहा है। सवा घंटा नियम से आंख बन्द कर बैठ सको, तो महीने में बहुत

कुछ अनुभूति हो सकती है। चौबीस घंटे में एक घंटा, संवा घंटा परमात्मा के लिये 23 घंटा अपने लिये काम करो। मन की बात न मान, देखते रहना है। मन की पूर्ति में मन मोटा ही बना रहता है। अभी शक्ति है, संकल्प पूर्ण करो। साधना की पूर्णता के लिये इच्छा पूर्ति करते करते जीवन बीत जाता है, शक्ति क्षीर्ण हो जाती है। बाहर के छिद्र बन्द होने पर शक्ति ऊपर उठेगी, योग में पहुँचायेगी, मन की पूर्ति में तो छिद्र ही बढ़ते जायेंगे।

अपनी ओर से तो मैं बीच बीच मे यथार्थ सत्य का ही संकेत करता हूँ। तुम अहंकार वश मानो या न मानो। अब इस सत्य का अनादर न करो, तो तुम सत्य हो, चेतन आत्मा हो। नाम रूप का अभिमानी अहंकार ही मनोमय होकर कर्ता भोक्ता बन रहा है। तुम नित्य, निरन्तर, ज्ञान स्वरूप हो, उसमें जो कुछ रख लिया उसी मय ज्ञान बन रहा है। सुख दुख मन का माना हुआ है। यदि तुम अपने ज्ञान स्वरूप में बुद्धि को बार बार स्थिर करने लगो तब यही अभ्यास सरल हो जायेगा। अभी तुम अमुक नाम रूप में बन कर और किसी को अपना बनाकर अपने ज्ञान को ढक लिया है। तुम ज्ञान में कुछ स्वीकार न करके देखो तो अभी नित्य मुक्त हो, तुम स्वयं सुख स्वरूप हो।

चेतन अमल सहज सुखरासी तुम्हारा स्वरूप है। परन्तु मोहासक्त बुद्धि द्वारा क्या क्या मान लिया है। यह बन्धन मान्यता का है। यदि तुम अपने ज्ञान स्वरूप को मुक्त अनुभव नहीं करो तब तुम्हें कोई मुक्ति न दिला सकेगा। तुम स्वयं अपने मित्र हो, यदि मन के पीछे से बुद्धि हटा लो। गीता में यही संकेत है कि अपने बनो, संसार के सब सहारे झूठे हैं। लाख बार देह को मेरी मेरी कहो यह देह तुम्हारी हो नहीं सकती। जनक जी के गुरू समझाते हैं यह देह तुम नहीं हो, देह तुम्हारी हो नहीं सकती। **'नाहं देहो, न में देहो, वोधोहमिति निश्चयी'** तुम ज्ञान हो, मनही, सुख दुख मानता है, चित्त चिन्तन करता है। बुद्धि ने गलत निश्चत कर लिया है। तुम मन चित्त से ऊपर बुद्धि को चेतन ज्ञान स्वरूप में बार बार स्थिर करो। ऐसा न किया तो अनेकों जन्मों की भांति यह जन्म भी दुख भोग के चक्कर में ही समाप्त हो रहा है। भक्ति, मुक्ति, शान्ति तुम्हें न मैं दे सका, न दूसरा कोई सन्त महात्मा दे पायेगा। समझ में न आये तो और भटक लो। अभी तक तो देखना चल ही रहा है। राग, द्वेष के द्वन्द से छूटने का प्रयत्न करो। तुम्हें ही ज्ञान में देखना है। मैं कुछ दे नहीं रहा हूँ केवल दिखा रहा हूँ। ज्ञान में देखो, चेतन आत्मा में ही प्रेम स्थिर कर लो,

फिर जप पूजा पाठ की जरूरत नहीं। न समझ में आये तो और भटक कर देख लो।

पथिक

*****

ऊँ श्री परमात्मने नमः

प्रभु के प्रेम का स्मरण करके तृप्त रहो, सन्तुष्ट रहो, प्रेम में ही अपने को तृप्त समझो, सदा देने की अभिलाषा बढ़ने दो, लेने की कामना ही छोड़ दो। प्रभु का प्रेम देने से कभी घटता ही नहीं और लेने से तृप्ति होती ही नहीं।

यह गुरूवाक्य मैने कई बार दुहराये हैं कि मन में कल्पना करने की, अनुमान लगाने की और आविष्कार की महान शक्ति है। वही शक्तिमान मन निर्णय कर रहा है। किसी के मन की व्यथा दूसरा समझेगा भी तो क्या कर सकता है। अपना मन ही शत्रु हो तो दूसरा क्या बिगाड़ सकता है। कामना वासना से मुक्त मन ही अपना मित्र है। कामी, क्रोधी, मोही, लोभी, मन ही अपना शत्रु है। किसी सद्‌गुण को, सद्‌विचार को व्यक्ति का गुण नहीं मानो। तुम स्वयं ही ज्ञान स्वरूप हो, तुम शुद्ध चेतन प्रेम स्वरूप हो, अपने को देखो, पराश्रय छोड़ दो।

अहंकार दरिद्र है, भिखारी है, अपनी प्रशंसा सुनना चाहता है, शिकायत प्रिय नहीं है। अभी यह अहंकार न तो सही स्वामी बन सका न ही सेवक। सेवकाई करने में होता तो भूल न होती। अहंकार को तो मान प्यारा है। अभी मान का त्यागी भी नहीं हो सका, दूसरों को त्याग का उपदेश देता है। प्रारब्धवश मिली प्रतिकूल संगति से कर्म फल कट जाता है। अब नये पाप न होने दो। गीता में कहा है **संशयात्मा विनश्यति,** संशय में न रहना चाहिये। संशय निवारण की मुझ पथिक में क्षमता नहीं है। रामायण में लिखा है–

हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश, अपयश, विधिहाथ।

अब भाग्यानुसार जो समय की हानि हुई तो उसमें किसी अन्य को दोषी न ठहराओ। भाग्यानुसार माता, पिता, पति, पुत्रादि का संग मिलता है।

विधि वश सुजन कुसंगति परहीं।
फणि मणि सम निज गुण अनुसरहीं।।

सन्त वचनों को भगवान की ओर से भगवान का संदेश ही मानना चाहिये। तुम कहीं नहीं भटको। तुम स्वयं सन्त महात्मा आज से ही अपने को समझो। तुम देह, इन्द्रियां मन का पक्ष न लो। अहं के आकारों के पीछे तुम शुद्ध निर्विकार चेतन आत्मा हो। अभी परमात्मा से युक्त हो, कभी भिन्न हो ही नहीं सकती। मैं भी शुद्ध चेतन निर्विकार आत्मा हूँ। मै नित्य मुक्त हूँ। लेकिन यह देह, यह मन, यह इन्द्रियां, यह अहंकार, सन्त महात्मा नहीं है। यही भ्रम निवारणार्थ सत्य वचन है, इन पर ध्यान दो। मैं विशुद्ध, नित्य मुक्त, चेतन आत्मा द्वन्दों, से मुक्त शान्त आनन्द हूँ। यह देह जड़ है, अहंकार मिथ्या है, सारे विकार अहंकार में है, यह अहंकार महामूढ़ है, अहंकार के पार स्वयं को पहिचानो, तो महात्मा। तुम मूर्ति के भगवान की उपासना कर सकती हो परन्तु इस अहंकार की उपासना में तुम भगवान से विमुख रहोगी। भूल न करो महात्मा पद प्राप्त करो।

पथिक

*****

श्रद्वालू आत्मा को नामरूप में स्मरण!

की हुई भूल न दुहराने का दृढ़ निश्चय ही वास्तविक प्रायश्चित है। जितना ही साधक शान्त, मौन रहेगा, उतना ही शक्ति की गति अन्तर्मुखी होती जायेगी। विज्ञानमय कोष की जाग्रति होगी। यदि मेरी बात का आदर करती हो तो अहंकार की दरिद्रता से सजग रहो, केवल देखती रहो। कुछ भी न चाहो, तभी दरिद्रता का अन्त होगा। जो स्वतः मिल जाये उसे पाकर प्रभु की दया का धन्यवाद दो। जब प्रतिकूल आये, मन की पूर्ति न हो, तब प्रभु की कृपा का स्मरण करो। किसी को सुखदाता दुखदाता न मानो। अपने ही भीतर दुखदाता दोषों को देखो। सदैव प्रभु की ओर से जो भी आये उसे स्वीकार करो। प्रभु की महान कृपा से और इतने जीवन में तप के फल से तुम्हें सत्संगति का सुयोग सुलभ हो रहा है। भगवान ही जानते हैं कि जिस कामना की पूर्ति से तुम्हारा हित होगा उसकी पूर्ति के अवसर सुलभ होंगे और जिसकी निवृत्ति से तुम्हारा हित होगा उसकी निवृत्ति की शक्ति भी वही देंगे। तुम्हें केवल देखते रहना है, कि कब क्या मिलता है और कब क्या छिनता है। सब स्वीकार करो। शिकायत करो ही नहीं, जब सब कुछ भगवान पर छोड़ दिया तब शिकायत की जगह ही कहाँ रही। चाहे स्वर्ग हो, चाहे नरक हो, सभी में

उन्ही को देखो। अधिकार की मांग तो करो ही नहीं। भगवान किसी को महाधनी बना दे। किसी को प्यार दें तुम्हें बिल्कुल न दें। तुम हर दशा में प्रभु की मर्जी, प्रभु की प्रसन्ता की ही उपासिका बनो। केवल मांगना छोड़ दो, संतुष्ट रहने का वृत ले लो। व्यास भगवान ने कहा है कि लोग, लोभ एवं काम की अलंघ्य खाईयों को पार कर जाते हैं, परन्तु क्रोध के आवेग के सामने धराशायी हो जाते हैं। तुम्हारा हित हो, शान्त, प्रसन्न रहो, यही मेरी भावना है, प्रसन्नता है। दुखी हृद्वय से मैं डरता हूँ ।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी श्रद्वालु आत्मा को नाम रूप में सद्भाव पूर्वक स्मरण!

तुम्हारा शरीर अब कैसा है मन तो सभी का रोगी रहता है। ऊपर से सभी ठीक दिखते हैं परन्तु भीतर तो अनेंको रोग हैं। जिस प्रकार बाहर की सर्दी गर्मी के प्रभाव से भीतर विकार प्रगट हो जाते हैं। उसी प्रकार संग एवं शब्द, स्पर्श के प्रभाव से भीतर काम, क्रोध, मोह आदि विकार प्रगट हो जाते हैं और संग के प्रभाव से भीतर छिपे हुऐ श्रद्धा, उदारता, नम्रता आदि सद्गुण भी प्रकट हो जाते हैं। किसी कारण से मुरझाया मुख खिल उठता है और किसी कारण से खिला हुआ मुख मुरझा जाता है। एक शब्द से हंसी आ जाती है एक शब्द से आंसू छलक पड़ते हैं। उमड़ता वही है जो भीतर होता है, जो भीतर नहीं होता वह नहीं उमड़ता। गुणों की जागृति में तद्नुसार कर्म करने से गुणों की वृद्धि पुष्ट होती है। कर्म न करने से गुण सूख जाते हैं। इसी प्रकार दोष, दुर्गुणों के जाग्रत होने पर कर्म न बने तो कुछ दिन में दोष सूख जाते हैं। क्रोध आये तब बोले नहीं, प्रेम आये तब भोग नहीं, ऐसा करने से दोनों क्षीण हो जायेंगे। क्रोध, ईर्ष्या, लोभ, आदि विकारों के जाग्रत होने पर कर्म न करो, क्रिया न होने दें, तो विकार पोषण नहीं पाकर सूख जाता है। तुम्हारे भीतर प्रेम, दया, करूणा, उदारता, श्रद्धा, आदि सभी सद्गुण हैं उनके अनुसार क्रिया होने पर सद्गुण बढेंगे, क्रिया न होने पर सुप्त रहेंगे। दान क्रिया से उदारता को पोषण मिला, सेवा सत्संगति क्रिया से श्रद्वा को पोषण मिलता है। बहुत सजग रहो, अपने हद्वय को सदा प्रसन्न रहने दो, उदार रहने दो, विनम्र रहने दो। इसके विपरीत उदारता, नम्रता प्रीति क्षमाशीलता को घक्का देने वाले विकारों के आते ही उन्हें धक्का देकर बाहर कर दो, वाणी द्वारा प्रगट

न होने दो। यही तुम्हारी वीरता है, धीरता है, गम्भीरता है, विशालता है। तुम्हारा प्रत्येक कर्म दूसरों के हित में हो और गुरूजनों के सुख हेतु हो। अपने मन की पूर्ति के सुख का पक्ष न लो। जीवन का निर्माण जिन दिव्य सद्‌गुणों द्वारा, ज्ञान द्वारा प्रेम द्वारा होगा, उसके लिये तुम्हारे पास बहुत समय है, शक्ति है, वह व्यर्थ नष्ट न होने दो। तुम अपने प्रभु की प्रसन्नता के लिये सत्‌त सावधान रहो। वे प्रभु ईर्ष्या, द्वेष, कलह,क्रोध, निन्दा, घृणा करने से प्रसन्न न होंगे।

पथिक

*****

विनाशी नाम रूप में अविनाशी आत्मदेव को बार बार नमस्कार है!

सन्त के वचन हैं :—

जो न तरै भवसागर, नर समाज अस पाय।
सो कृत निन्दक मन्द मति, आत्म हनन गति जाय।।
सो परत्र दुख पावई, सिर धुनि धुनि पछिताय।
कालहिं, कर्महीं, ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाय।।
"कोउ न काहू सुख दुख कर दाता।
नित कृत कर्म भोग सब पाता।।"

सत्संग की रूचि बढ़ने दो और जिज्ञासा की प्यास इतनी जागने दो कि सत्य परमात्मा को, आत्मा को, अथवा स्वयं को जाने बिना चैन न लो, यही सच्ची जिज्ञासा है। तुमने लिखा है कि जायें तो कहाँ जायें, तुम्हें संसार का धन, सम्मान, मान, सुखोपभोग चाहिये तो चलते ही रहना होगा। यात्रा का अन्त ही नहीं है और सत्य परमात्मा को चाहिये तब कहीं भी जाने की जरूरत नहीं है। अपने में ही बुद्धि को स्थिर करो। मन की न मानो, आत्मा परमात्मा का अनुभव स्वयं में ठहरने से ही होता है, आने जाने से नहीं। ऐसा सन्त सद्‌गुरू ने बताया है।

तुम सत्य को अथवा स्वयं को या इस संसार को समझने जानने के लिये सन्त के पास जाओ, वीतरागी ज्ञानी की खोज करो, जब तक न मिले तब तक नित्य प्रभु से प्रार्थना करो, यदि तुम्हारी सच्ची जिज्ञासा होगी, तब प्रभु कृपा से अपने आप सद्‌गुरू मिलें या भीतर ही प्रभु ज्ञान रूप में जाग्रत होकर समाधान करेंगे। जब तक श्रद्धा सन्देह रहित न हो, तब तक कहीं न बंधो। तुम असत्य वस्तु या व्यक्ति का सहारा न लो। किसी वस्तु या व्यक्ति के दोषों की छानबीन में अपना सुन्दर समय न बिताओ।

अहंकार जड़ है मूढ़ है, समस्त बन्धनों का कारण है।

मोसम कौन कुटिल खल कामी।

जो तन दियो ताहि विसराया, ऐसो नमक हरामी।।

“अहंकार विमूढ़ात्मा कर्ता हमिति मन्यते” इस अहंकार के पीछे जो ज्ञान स्वरूप चेतन आत्मा है वह परम शुद्ध, बोध स्वरूप, निर्विकार, आनन्दमय, अविनाशी है। परमात्मा ही आत्मा है। आत्मा में ही बुद्धि के संयोग से अहं स्फुरित हुआ और मन के संयोग से आकार उत्पन्न हुये हैं। वही आकरमय अहंकार ही सत्यानन्द परमात्मा से विमुख होकर कर्ता भोक्ता बन रहा है। इस अहंकार का दृष्टा, मैं नित्य निर्विकार, ज्ञान रूवरूप, चेतन, नित्य मुक्त साक्षी आत्मा हूँ यही तुम भी हो।

पथिक

*****

विनाशी नाम रूप में अविनाशी परमात्मा को नमस्कार।

गो गोचर जह लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।

तेहिकर भेद सुनहु तुम सोई। विद्या अपर अविद्या दोई।।

एक दुष्ट अतिशय दुख रूपा। जा वश जीव पराभव कूपा।।

एक रचे जग गुण वश जाके। प्रभु प्रेरित नहीं निज बल ताके।

तुम्हारी सरलता, नम्रता, उदारता, निष्कामता, प्रीति बहुत ही सुखद पुण्यमयी है। जीवाणु के भीतर चेतना प्रकृति के जड़त्व को तोड़ती हुई पूर्ण से मिलकर पूर्ण होने के लिये निरन्तर गतिमान है। इस गति विधान को ज्ञान में देखने वाले ही जानते हैं। जब स्पष्ट दिव्यता का अवतरण दर्शित होगा। तब तुम्हारा हृद्वय पूर्णतः इस निष्काम प्रेम से अपने आप में तृप्त होगा। तुम्हारी समीपता में जो कोई आयेगा वह भी शान्ति तृप्ति का अनुभव करेगा। तुम्हारे हृद्वय में अनपेक्षित आनन्द भरपूर होगा तभी आत्मतृप्ति, आत्मतुष्टि, आत्मा में ही प्रीति दृढ़ होगी। तब शक्ति, सम्पत्ति सेवा के लिये एवं ज्ञान बन्धनों से, दोषों से मुक्ति के लिये और प्रेम

जो धन चाहे वह निर्धन है, मान चाहता है अभिमानी।
पथिक जो न कुछ चाहे जग से, बन्धन मुक्त महान वही है।।

केवल प्रभु के लिये घटित होगा। जब तक अहंकार अपनी तृप्ति तुष्टि का कामी है तभी तक क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष में शक्ति का दुरूपयोग होता है, यहि पशु प्रवृत्तियाँ है, इनके दमन, शमन से दिव्यता का अवतरण होता है क्रोध ही क्षमा में परिणित होगा, द्वेष ईर्ष्या भी प्रेम में बदलेगी। यदि तुम अभिमान छोड़कर प्रेम की शरण ले लो, तो कामना के बादल छट जायेंगे। केवल कामना, इच्छापूर्ति का पक्ष न लो। सम्बन्धित जनों की पूर्ति का पक्ष लेकर सेवाव्रती हो जाओ। उन्हीं की सुविधा में, सुख पहुँचाने में अपनी धन्यता मानो। अहंकार की दरिद्रता एवं भिखारी वृत्ति से सावधान रहो। तुम यहाँ आकर सेवा कर सको तो तुम्हारा भाग्य बहुत सुन्दर होगा। यदि किसी शरीर से अपनी अनुकूलता चाहोगी तो भिखारी भीख मांगने वाले संसार में कोई तृप्त नहीं हो सके। भिखारी से भीख न माँगो। परमदाता परमात्मा के दान को, ध्यान से देखो और प्राप्त में ही संतुष्ट रहो। अप्राप्त की कामना त्याग दो।

प्राप्त शक्ति, सम्पत्ति योग्यता तथा प्रेम से दूसरों की सेवा करने में सजग रहो तो अप्राप्त की प्राप्ति स्वतः हो जायेगी। सही व्यक्ति कभी नही मांगते। जो मांगते हैं चाहते हैं, वह भिखारी गलत हैं, सही नहीं हैं। वही चोर डाकू बनकर कामना पूर्ति का पक्ष लेते हैं। सही वही हैं, जिसे बिना मांगे जो मिलता है, उतने में ही तृप्त रहता है।

पथिक

*****

प्रेममय प्रभु की श्रद्धालु आत्मा को स्मरण !

एक सन्त ने बताया था कि एकान्त में उसी की याद आती है जिससे कुछ लेना है या देना बाकी है। अवश्य ही अहंकार जब दुखी होता है तो किसी न किसी कामना को लेकर ही दुखी होता है। यह भी पढ़ा सुना है कि कामनाओं की पूर्ति कभी किसी की किसी के द्वारा हो ही नहीं सकती। कामनाओं के त्याग से तथा सुख स्पृहा छोड़ देने से, साथ ही अपना कुछ भी न मानकर, ममता रहित और अहं को आकारों से रहित करते ही शान्ति सुलभ होती है यह भगवान का निर्णय है।

अहंकार जहाँ भिखारी और दरिद्र होता है वहीं वह दानी और त्यागी भी होता है। अविद्या में अहंकार को पुष्ट करते रहना पाप है। अहं के आकार ही बादलों की तरह आत्मा की अनुभूति कराने वाली ज्ञान दृष्टि

के आगे छाये रहते हैं। इसीलिये निरन्तर प्रकाशित आत्मारूपी सूर्य को अज्ञानी नहीं देख पाता। आकार न रहने पर दर्शन के लिये अथक प्रयत्न करता है, बड़ी अक्ल लगाता है, कहाँ कहाँ जाने का संकल्प करता है, दुखों से मुक्त होने के लिये सुन्दर सफलता के मानसिक चित्र बनाता है और कभी कभी शक्ति समय सम्पत्ति को व्यर्थ नष्ट करके वैसा ही लौट आता है जैसा गया था। अहंकार बाहर के सम्बन्धित जनों के संग का त्याग तथा कार्यक्षेत्र का त्याग एवं ग्राम नगर, गृह परिवार का त्याग करके शान्ति की कल्पना करके सुदूर देश में जाना चाहता है। परन्तु भीतर से दुखदाई मोह, मत्सर, मद, ममता, मूढ़ता, दुराग्रह, असत्याग्रह एवं अभिमान के त्याग को सोचता ही नहीं। तुम्हारा ही नही सभी में अहंकार की इसी प्रकार की कृतियाँ मूढता वश भोगी बनाये रहती हैं।

तुम सावधान रहकर मोही, मूढ़ मन के संकल्पो की पूर्ति का प्रयत्न न करो। स्वतः पूरा हो तो दृष्टा होकर देखने के लिये सावधान रहो। जिससे तुम्हारा लेना देना है, यथा शक्ति उसकी पूर्ति कर दो। उसके बदले में कुछ न चाहो और सोच लो कि मुक्ति मिल रही है। तुम वही बोलो जो दूसरों के लिये हित प्रद हो, सुख प्रद हो। उसी से बोलो, जो सुनने के लिये तत्पर है। उसी से मिलो जो तुमसे मिलकर प्रसन्न होता है। उसी के यहाँ जाओ जो तुम्हारी उपस्थिति चाहता है। वही सुनो जिससे तुम्हारे मन का मोह मिटता है। तुम्हारे द्वारा वही दान हो, जो दूसरों की आवश्यकता पूर्ति करता हो। वही पढ़ो जो अज्ञान को हटाता हो। बार बार मनन करो–

मैं परमात्मा की शक्ति हूँ। मैं परमात्मा का शुद्ध ज्ञान हूँ। मैं परमात्मा का आनन्दमय प्रेम हूँ। अहंकार में उतर कर यह शक्ति, यह ज्ञान एवं प्रेम सीमित सुखोपभोग का साधन बन रहा है। अब संसार की ओर न भागो। कहीं भागने से दुख, अशान्ति न मिटेगी, स्वयं में ठहरो। प्रतिकूलताओं को सहकर देखो। तप करो, किसी व्यक्ति, वस्तु या तीर्थ के सहारे क्षणिक सुख भले ही प्रतीत हो परन्तु अशान्ति का, दुखों का अन्त न होगा। अभी तक न देखा हो तो और भटक कर, खोकर देख लो, लेकिन देखने की दृष्टि खुली होनी चाहिये। यही तप है।

पथिक

*****

विनाशी प्रिय नाम रूप में प्रकाशित आत्मदेव को नमस्कार!

यह गुरू सम्मति है कि अपनी रूचि के प्रतिकूल जो कुछ भी हो उसे प्रभु के विधान से हितकारी जानकार स्वीकार करते जाओ। अपने भीतर काम, क्रोध, लोभ, मोह जो भी विकार प्रबल हो उसके पीछे आत्मदेव की शक्ति को नमस्कार करो। आत्मदेव ही अहंकार को गलाने के लिये दुख के रूप में कृपा करते हैं। यहाँ पर एक अपने गुरू की अनन्य श्रद्वालू देवी हैं। सब प्रकार से सुखी सम्पन्न साधन युक्त होने पर भी विवाह नहीं किया। कुछ दिन पूर्व गुरूदेव का शरीर नहीं रहा उनके वियोग में बहुत दिन व्याकुलता पूर्वक रोते रोते बिताये। अब रोना तो बन्द है लेकिन रात दिन यही प्रतिक्षा है कि गुरूदेव के प्रत्यक्ष दर्शन हों। विज्ञानमय कोष में जब तक चेतना जाग्रत नहीं होती तब तक मनोमय कोष में जाग्रत अहंकार में इसी प्रकार के संकल्प उठते हैं, उसे पता नहीं कि यदि उसका प्रेम वैवाहिक जीवन में बिखर जाता तो उस प्रकार के दर्शन का दृढसंकल्प अथवा हटाग्रह न होता। चेतना नीचे उतरकर जब तक तमोगुण, रजोगुणी, सतोगुण से लिपटी रहती है तब तक तमोगुणी, रजोगुणी और सतोगुणी संकल्पो की पूर्ति के लिये समग्र शक्ति का उपयोग होता है और तुममें तमोगुणी से सम्बन्धित रजोगुणी संकल्प उठते हैं। रजोगुण के साथ जब तमोगुणी अंश मिला रहता है तब संकल्प की पूर्ति की प्रतिकूलता में ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध में शक्ति नष्ट होती रहती है और सतोगुणी संकल्प में जब रजोगुण मिश्रित रहता है तब सेवा, दान, दर्शन की प्रबल, प्रयास, प्रतीक्षा, अधीरता, व्याकुलता, करूणा, रूंदन आदि वृत्तियों की प्रधानता रहती है, लेकिन ज्ञान में दर्शन की दृष्टि नहीं खुली है। मनुष्य में जो उर्जा शक्ति होती है वह तमोगुणी, रजोगुणी, सतोगुणी वृत्तियों के द्वारा अपना मार्ग खोज लेती है। मैंने कुछ बालकों को देखा कि शान्त रह नहीं सकते, क्षण क्षण उछलने कूदने की वृत्ति रहती है। यदि उनकी वृत्तियों को रोका जाये तो क्रोध और रूदन में परिणत हो जाती है। इसका दर्शन तभी होता है जब विज्ञानमय कोश में मनोवृत्तियों को देखने की क्षमता आ जाती है। तुम्हारे जीवन में जो कुछ घटित हो रहा है वह प्राकृतिक विधान से सभी कुछ हितकर है। यदि पुण्य से सुलभ सत्संग का आदर करो तो शीघ्रता से शक्ति की अद्योमुखी गति ऊर्ध्वमुखी हो सकती है। इसके लिये बड़ी सुगम साधना है कि शक्ति के चारों द्वार से प्रवाह को रोक लिया जाय।

1–प्रिय दर्शन की कामना, 2–जो अति प्रिय हो उससे मिलने की कामना, 3–अहंकार को प्रिय लगने वाले प्रिय शब्दों को सुनने की कामना, 4–भ्रमण की कामना। इनसे शक्ति रोक ली जाय तो हृदय में पवित्र भावों का विकास होता है। यदि भाव रस का भी योग न किया जाय तब विज्ञानमय कोश में चेतना उठ जाती है, वहाँ से अपने भीतर आनन्द की झलक मिलती है। कार्य बहुत थोड़ा है लेकिन लाभ सर्वोपरि है। गंगा के प्रवाह को रोक लिया जाय, तभी नहर बन सकी है।

पथिक

*****

विनाशी नाम रूप में अविनाशी आत्मदेव को नमस्कार

सन्त वाक्य बहुत ही सावधान करते हैं।

ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी।
क्रोधिहिं सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा।।

सन्तों के उपदेश, निर्देश तो ऊसर में बीज बोने के समान व्यर्थ हो जाते हैं। जिसके ऊपर भूत सवार है अर्थात बीती हुई प्रतिकूलताओं का ही मनन चलता है। उसके लिये वर्तमान के कर्तव्य की चर्चा व्यर्थ है। सन्त कहते हैं कि भूत से अपने को मुक्त करो, वर्तमान को देखो, इसी वाक्य से अशान्ति हटती है, प्रसन्नता होती है। मनुष्य में सारी वृत्तियां अनेंको जन्मों के पशु देहों का संस्कार है। वृत्ति पशुओं की है, विचार–मन व जीवन का परिचय है। विवेक दिव्य जीवन की जाग्रति है, गुरू कृपा से मानवता में दिव्यता का अवतरण होता है।

पशु में मानवता लाते तुम, मानव को देव बनाते तुम।
वह योग विधान सिखाते तुम, जिससे पापों का क्षय होवे।।
भगवान तुम्हारी जय होवे।

प्रतिकूलता में ही अपने असाधु और साधु वृत्तियों का परिचय मिलता है। प्रत्येक संग दर्पण का काम करता है। अपने भीतर की कुरूपता या सौन्दर्य को दिखा देता है। इसीलिये संग का दोष वहीं तक पड़ता है जहाँ तक अपने में दोष छिपे होते हैं। दूसरों को दोषी ठहरना, अविचार की सीमा में ही है। इसीलिये मैं अपने हित के लिये सभी प्रकार के संग को स्वीकार कर लेता हूँ। भविष्य की भगवान जाने, जो कुछ होगा देखते जाना है। तुममें भगवान के कई सद्‌गुण बहुत सुन्दर सुखद हैं उन्ही के

द्वारा दोष मिटेंगे। तुम्हारा जीवन दिव्य होगा, सुन्दर होगा, यह तुम्हारे ही शुभ संकल्प पर निर्भर है।

किसी की भूल को, अपराध को, क्षमा करने का अभ्यास दृढ़ करो। शान्त और मौन रहकर स्वस्थ्य रह सकती हो। क्रोध तो किसी को प्रिय नहीं होता। श्रद्धा के साथ अश्रद्धा, प्रेम के साथ द्वेष, क्षमा के बिना दृढ क्रोध, विनम्रता के ऊपर कठोरता आदि दैवी शक्ति अथवा वृत्तियों पर आसुरी शक्तियों का आक्रमण है। इसी को देवासुर संग्राम कहते हैं। जो सभी के भीतर चलता ही रहता है।

पथिक

*****

ज्ञान स्वरूप आत्मा को विनाशी नाम रूप में स्मरण!

प्रभु की दया से अनुकूलता का सुख मिलता है और कृपा से प्रतिकूल की वेदना रागाशक्ति से मुक्त बना देती है।

तुम्हारा बहुत बड़ा पुण्योदय है अब तुम सभी से निराश होकर सर्वाश्रयों का त्याग कर दो। सर्वाश्रय छोड़ने पर परमाश्रय उपलब्ध होता है। मुझसे या किसी से कुछ पाने की आशा में, समाधान की प्रतीक्षा में, समय व्यर्थ न करके, जहाँ से प्रश्न उठता है वहीं शान्त होकर उत्तर की प्रतिक्षा करो। अब प्रयत्न में न पड़ो। श्रद्धा के द्वारा शरीर के दर्शन का महत्व न देकर ज्ञान में अपने को देखो और जो मैं बोलता हूँ वह सब पुस्तको में पढ़ लो। अब प्रश्न भी छोड़ दो, सत्संग के लिये असत संग का सहारा न लो। तुम्हीं नित्य सत्य हो, अपना ही संग करो। सब प्रश्न हटा दो, किसी की मनः स्थिति का चिन्तन न करो। किसी जैसा तुम्हें नहीं बनना है। हर एक जीवात्मा अद्वितीय है, तुम अद्वितीय हो, तुम्हें किसी के समान नहीं होना है, वह नकल होगी। मुझसे कोई आशा न रक्खो, तुम्हारे हृदय में ही वह महान शक्ति है जिससे तुम्हे समाधान मिलेगा। असंग होकर तुम नित्य कल्याण स्वरूप हो। तुम्हारे हृदय में ऐसी कोई सांसारिक कामना भी नहीं है, याचना नहीं है, दरिद्रता भी नहीं है। अपने में ही शान्त, मौन, होकर सत्संग करो। असत,अनित्य संग से बचो। बाहर अनित्य का ही संग है।

पथिक

*****

हृदयस्थ प्रभु को नाम रूप में अपने भावनानुसार स्मरण करते हुये आनन्दित हूँ।

अन्तःकरण जैसे जैसे जप, सुमिरन, प्रभु के गुण चिन्तन से पवित्र होता जाता है। वैसे ही वैसे पशुता का दमन, राक्षसी, दानवी वृत्तियों का दमन होता जाता है। मानवता विकसित होती जाती है और द्विव्यता बढ़ती जाती है। जब अपनी कोई चाह नहीं रहती, तब कोई भी वस्तु अपनी नहीं प्रतीत होती, सब कुछ प्रभु से से मिली हुई और प्रभु की ही दीखती है। जब कर्तव्य परायण रहना स्वभाव बन जाता है जब दूसरों के अधिकार की रक्षा में ही सुख दीखता है। जब अपना अधिकार कहीं दीखता ही नहीं है। जब लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधादि सारे दोष मिट जाते हैं, तब प्रभु के नाते सभी के प्रति हृदय स्नेह से भरा रहता है, जब ममता, आसक्ति समाप्त हो जाती है। तब मानवता की पूर्णता में द्विव्य आनन्द की अनुभूति होती है। प्रभु प्रेम में तृप्त रहो, संतुष्ट रहो, मन की पूर्ति का पक्ष न लो। प्रभु की मर्जी में प्रसन्न रहो।

तुम्हारे हृद्वय में परमात्मा का प्रेम तथा ज्ञान परम पवित्र आनन्दमय है। परन्तु जो कुछ ऊपर परम है वही नीचे उतरते उतरते पतित कहा जाता है। जो पतित है वही ऊपर उठते ही पवित्र दीखता है। तुम्हारी बुद्धि जब मन के पीछे चलने लगती है, तब वह नष्ट हो जाती है। जब ज्ञान में देखती है तब बहुत शुद्ध हो जाती है। तुम मन को सूखने दो, मन की मानोगे तो बहुत देर लगेगी। मन तो कामनाओं से कसा रहता है। मन अपनी पूर्ति के लिये हिंसक है, भोगी है। मन की पूर्ति के पीछे इतने पाप अपराध बनते हैं कि उसके फल भोगने से वियोग का दुख भोगना पड़ता है। पुत्र वियोग, पति वियोग, पत्नि वियोग, अर्थात प्रिय वियोग का दुखभोग हिंसा का परिणाम है। जो अपनी रूचि पूर्ति के कारण दूसरों को दुख देता है वही वियोग का दुख भोगता है। जो अपने प्रिय को सुख देता है वही प्रिय संयोग का सुख भोगता है। यदि तुम अनुकूलता के सुख का पक्ष लेकर दुख सहिष्णु हो जाओ, तब इस तप से तुम्हारा भोगी चित्त विरक्त हो जायेगा। तब तुम्हें योग आनन्द सुलभ होगा। संयोग के सुख क्षणिक है, योग का आनन्द नित्य है। संयोग भिन्न का होता है और योग आत्मा परमात्मा की अनुभूति का होता है। तुम प्रभु कृपा पर निर्भर रहो, जो अनायास मिले, जितना मिले, उतने में ही संन्तोष करो, तृप्त रहो, तब कृपा से ही योग की अधिकारिणी हो जायेगी।

पथिक

*****

श्रद्धालु आत्मन!

तुम्हारे परम सौभाग्य में दुर्भाग्य का आक्रमण होता रहता है परन्तु अभी तक विजय नहीं मिलती। दैवी वृत्तियों को आसुरी वृत्तियाँ खा जाना चाहती है। श्रद्धा को अश्रद्धा नष्ट करना चाहती है। प्रेम को द्वेष वृत्ति हड़प कर जाना चाहती है, क्रोध तो जला ही देना चाहता है परन्तु अभी तक सभी आक्रमण व्यर्थ जा रहे हैं। अपने में ही प्रीति एकत्रित करना, तुम्ही अपनी मित्र हो और शत्रु भी। तुम्हारे अहंकार की कठोरता, दरिद्रता एवं कर्कशता परमात्मा की योगानुभूति में तथा पुण्य वृद्धि में बाधक है और पाप वृद्धि में सहायक है। तुम्हें अपने भीतर ही इस अहंकार के आक्रमणों से सावधान रहकर युद्ध करना होगा। तुम्हारे भीतर ही तुम्हें अशान्त करने वाले दुखदाता शत्रु हैं। तुम अपने साथ अहंकार की सीमा में होने वाली पाप प्रवृत्तियों से जितनी भी सावधान रहोगी उतना पाप से बचकर पुण्य वृद्धि कर सकोगी। जो शक्ति, समय, पाप में नष्ट होती है वही पुण्य वृद्धि में सहयोगी हो सकती है। तुमने कहा कि श्रद्धास्पद ही तुम्हें विकार रहित कर सकता है परन्तु याद दिलाता हूँ कि तुम्हारा प्रेम ही अथवा तुम्हारी अटूट श्रद्धा ही श्रद्धास्पद से सब दोषों का नाश करा सकती है। भगवान राम, कृष्ण, द्वेषी, अहंकारी, मोही द्रोही को नहीं बदल पाये। शक्ति के द्वारा शत्रु पराजित किया लेकिन अपने द्विव्य ज्ञान द्वारा दुर्योधन, शिशुपाल, कंस, रावण आदि का अज्ञान नहीं मिटा सके। क्योंकि ऐसा सत्य विधान नहीं है। तब मैं तुम्हारे भीतर के दोषो में, अहंकार की कठोरता एवं ईर्ष्या, द्वेष आदि विकारों को कैसे मिटा सकता हूँ। प्रेम में ही सारे दोष दूर हो सकते हैं। मुझ में श्रद्धा प्रेम अटूट है तो तुम आज्ञा पालन में समर्थ हो सकोगी। यदि अहंकार की सुरक्षा चाहती हो, तब तुम अहंकार से प्रेम करती है, गुरू तत्व से नहीं। व्याख्यान उपदेश किसी को त्यागी, निर्दोष नहीं बना पाते। श्रद्धा प्रेम के सहारे ही साधक त्यागी उदार हो सकता है। प्रेम के विरूद्ध अहंकार, द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध को न ओढ़ो। क्रोध में जब मुख खुलता है तो देखने वाली आंखें बन्द हो जाती हैं। अहंकार रूपी मेघों से प्रेम रूपी सूर्य ढक जाता है अर्थात् आंखें ही ढक जाती है।

पथिक

*****

ऊँ श्री परमात्मने नम!

तुम्हारे भीतर अपने भीतर दुख देने वाले दोषों का दुख है, यह बहुत ही

शुभ है। बार–बार जो दोहराया जाता है उसी का अभ्यास हो जाता है। उसके विपरीत जब गुण दोहराया जाता है तब गुण का अभ्यास हो जाता है। संग से ही गुणों का और दोषों का अभ्यास होता है। तुम भगवान की कृपा से श्रद्धा के द्वारा जो ज्ञान का आदर कर रही हो इसी के द्वारा दोषों के स्थान में गुण पुष्ट होंगे। जिस प्रकार रूप का अभिमानी कुरूपता से सावधान रहता है। उसी प्रकार गुणों का प्रेमी सर्वत्र गुणों का ही पक्ष लेता है। तुम बहुत डरो कि कठोर वचन, कर्कश वाक्य बोलने की आदत छूट जाए। कुछ दिन श्रम करना होगा। अनेक शरीरों को देखते हुये देहों में एक चेतन स्वरूप आत्मा का मन ही मन चिन्तन करो, जिस प्रकार अपने प्रिय स्नेही के प्रति, अपने श्रद्धेय के प्रति कोई प्रेम से ही भरा रहता है उसी प्रकार तुम सभी आत्माओं के प्रति स्नेह करूणा से भरे हृदय द्वारा व्यवहार करो। जैसे लोभी को धन लाभ की चिन्ता रहती है, हानि का भय रहता है। उसी प्रकार तुम सद्गुणों की वृद्धि का, गुणों की हानि का भय बनाए रक्खो। सात दिन किसी से प्रेम पूर्वक बर्ताव करने और किसी दिन एक कटु, कठोर, कर्कश शब्द का प्रयोग कर दो, तो क्या दशा होती है। तुम्हारे मन में मधुर वाक्य भी भर जायेंगे और एक कटु वाक्य उसी प्रकार खटकता रहेगा जिस प्रकार फूलों के हार में कांटा चुभता रहता है। जीवन की कुरूपता अपने ही अज्ञान में बढ़ती है और जीवन का सौन्दर्य भी अपने ही द्वारा निर्मित होता है। यह बहुत शुभ लक्षण है कि तुम्हें अपनी भूल का पश्चाताप होता है। दुखी होने पर भी तुम दूसरों को दुख न दो।

पथिक

*****

विनाशी नाम रूप मय परमात्मा को सब ओर से प्रणाम!

जब तक मन की पूर्ति का पक्ष है तब तक सेवा, प्रेम एवं त्याग की पूर्णता हो ही नहीं सकती। मन की अनुकूलता में सुख की प्रतीति होती है और प्रतिकूलता में दुख की प्रतीति होती है। कामना की अपूर्ति में दुख और कामना की पूर्ति में क्षण क्षण सरकता हुआ सुख। लेकिन ज्ञान से देखने में जब कामना का त्याग हो जाता है तब है शाश्वत शान्ति।

शरीर में गुदा से लेकर सिर तक नौ चक्र हैं। मूलाधार चक्र में काम वासना प्रबल रहती है इसके संयम से ब्रह्मचर्य पूर्ण होता है। इसके ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र में भावों की प्रबलता रहती है और इसी में भय,

क्रोध, हिंसा, ईर्ष्या, द्वेषादि विकारों में शक्ति क्षीण होती रहती है। इस चक्र के संयम से, अभय, प्रीति, क्षमा, अहिंसा भाव प्रबल होते हैं। मणिपूरक नाभि चक्र में शक्ति संयमित होने पर संदेह, विचार, श्रद्धा, विवेक जाग्रत होता है। इसी प्रकार हृद्वय चक्र की जाग्रति से भक्ति भाव प्रबल होता है। प्रत्येक चक्र की आंशिक जाग्रति से पूर्ण सद्‌गुण नहीं बढ़ते, गुणों के बीच में दोष चलते रहते हैं। हर साधक के जीवन में जैसे–जैसे ऊँचे चक्र जाग्रत होते जाते हैं, वैसे–वैसे उसके व्यवहार में सद्‌गुणों का ही परिचय मिलता है। दोषों की प्रबलता नहीं रह जाती।

मैं अपने सम्पर्क में आने वाले सैकड़ों श्रद्धालु जनों का निरीक्षण करते हुये देख रहा हूँ कि सभी साधकों में पशु प्रवृत्तियों की अधिकता से दैवी वृत्तियों का विकास बहुत धीरे–धीरे हो रहा है। सैकड़ों श्रद्धालुओं में दो तीन श्रद्वालु प्रेमी ऐसे दीख रहे हैं जिनके जीवन में ऊँचे चक्रों की जाग्रति के कारण ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध में शक्ति का दुरूपयोग होता ही नहीं। जिसका हृदय प्रेम से आप्लावित है वह दूसरे के दोष सुनकर करूणित हो जाता है, अपनी कमी देख कर, सुनकर आंखो में आंसू बहने लगते हैं।

बिनु गुण यौवन, रूप, धन, बिनु स्वारथ हित जानि।

शुद्ध कामना ते रहित, प्रेम यही पहिचान।।

एक अंगी बिनु कारनहिं, एक रस सदा समान।

गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान।।

छिनही चढ़े छिने उतरे, सो तो प्रेम न होय।

अघट प्रेम पिन्जर बसे, प्रेम कहावे सोय।

साधक के जीवन में जब चेतना नीचे के चक्रों से उठकर ऊपर के चक्रों में पहुंच जाती है। तब प्रीति में निष्कामता, निर्भयता सरलता, सहिष्णुता, नम्रता, उदारता आदि दिव्य गुण जाग्रत रहते हैं। तब ईर्ष्या, क्रोध, द्वेष, कलह, निन्दा, घृणा आदि दुष्प्रवृत्तियों के लिये स्थान ही नहीं मिलता। दुख रूपी आग में जब दोष रूपी ईधन जल जाता है तब आग बुझ जाने पर दिव्य प्रेम की शीतलता से हृदय शीतल हो पाता है।

अशान्ति से बचने के लिये जहाँ तक हो सके अपनी रूचि पूर्ति के सुख का पक्ष न लेकर जिनको तुमने अधिकार दिया है उनकी सेवा में

शक्ति समय का उपयोग करती रहो। अपने सुख की इच्छा जितनी प्रबल होती है उनता ही अधिक सुख इच्छा पूर्ति से प्रतीत होता है लेकिन ठहरता नहीं है और पूर्ति न होने से उतना ही अधिक दुख भी होता है। कितना ही किसी के मन की पूर्ति की जाय उसकी तृप्ति पूर्ण नहीं होती। अन्त में अशान्ति ही हाथ लगती है। इसीलिये अधिक मेल मिलाप, अधिक व्यवहार का विस्तार भी अशान्तिदायक है। तुम्हारे भीतर अपनी कामना कोई प्रबल नहीं है और अधिक कोई इच्छायें भी नहीं है, यह बहुत शुभ है। यह कई बार सुन चुकी हो, कि इच्छायें मनुष्य को दरिद्र दुखी बनाती हैं। तुम अधिक इच्छाओं को न बढ़ने देना। अधिक सम्बन्ध भी न बढ़ाना, अपने भीतर ही शान्त, मौन रहकर आनन्द की प्रतीक्षा करना। किसी से कोई आशा न रखना। जो अपने आप मिले उसी में सन्तोष रखना। जो न मिले उसकी इच्छा न करना। किसी की ऋणी न रहना। तुम्हारी उदारता, सेवा, भावना व निष्कामता से बहुत ही सन्तोष होता है।

पथिक

*****

सर्वरूपमयी देवी, सर्वदेवी मयंजगतो विश्वरूपां नमामि परमेश्वरीम्!

यह सत्य वचन हैं–

1. मनुष्य के विचार ही उसके लिये स्वर्ग नर्क का निर्माण करते हैं।
2. अतीत की स्मृति एवं भविष्य का चिन्तन वर्तमान के सदुपयोग में बाधक बनता है।
3. अहंकार से बढ़कर संसार में कोई दूसरा दुखदाता नहीं है।
4. मन ही स्वर्ग को नर्क और नर्क को स्वर्ग बना देता है।
5. अपने चुनाव के अनुसार मनुष्य प्राप्त का सदुपयोग और दुरूपयोग करता है।
6. धन, मान, भोग के पीछे संसार में कौन पागल नहीं है।
7. महत्वकांक्षा का ज्वर, सम्मान की प्यास, मानव को सन्तापित करती रहती है।
8. जो अपनी प्रसन्नता दूसरों के अनुकूल वाक्यों पर निर्भर कर रहा है वह पराधीन, शान्त नहीं रह सकता।
9. अहंकार की खुराक समीपवर्तीजनों के आदर सम्मान से पूर्ण होती है

यदि वह नहीं मिलता तब अंहकार अति क्षुभित अशान्त हो जाता है।

10. दूसरों से अनुकूलता चाहने वाला सदा सशंकित, भयातुर रहता है।

11. प्रिय भाषण पुनि नम्रता, आदर प्रीति विचार।
लज्जा, क्षमा, अयाचना, यह भूषण उर धार।।

पथिक

*****

सर्वनाम रूपधारी परम प्रियतम परमात्मा को प्रणाम।

इच्छापूर्ति के सुख से मन कभी तृप्त नहीं हो सकता है। स्थान परिर्वतन में तृप्ति की, शान्ति की, कल्पना ही होती है। किसी वस्तु व्यक्ति के संयोग से क्षणिक सुख की प्रतीत होती है स्थान बदल जाता है पर मन वही रहता है। अनिश्चित मन लिये हुये इस जगत में कुछ भी निश्चित नहीं हो सकता है। कोई निर्णय या किसी प्रकार की बात निश्चित नहीं हो सकती, चित्त निश्चित हो सकता है, सिद्धान्त निश्चित नहीं होते। चेतना निश्चित होती है। जब तक चित्त उलझा रहता है तब तक कोई बात निश्चित नहीं होती। उलझा हुआ चित्त वही निकाल देता है जो उसके भीतर की अवस्था होती है।

क्रमशः बना हुआ अंहकार जैसे जैसे टूटता जाता है वैसे वैसे अहंकार का विस्तार क्षीण होता जाता है। हृदय जितना प्रेम से भर जाता है उतनी ही अहंकार में सरलता, नम्रता, उदारता प्रगट होती है। अहंकार ही कर्ता बनता है। कर्ता रहने तक पाप का अन्त नहीं होता, कर्तापने की समाप्ति में ही निष्पाप जीवन उपलब्ध होता है। कर्म नहीं बांधता, कर्ता बांधता है।

नेत्रों से जितनी भी वस्तु दीखती है, सब मिटटी ही है, वह सर्वाकार है। इसी प्रकार जितने भी भाव हैं वह सर्वभावमय चेतन आत्मा ही है। अज्ञानवश हम तत्व को न जानकर नामरूप में ही अटक गये हैं और रागी–द्वेषी बन रहे हैं। **शक्ति ही कर्मस्य है। प्रीति ही सुखमय है। ज्ञान ही सम्बन्धमय है। केवल आत्मा ही आनन्दमय है।**

अहंकार को दुबला करना बहुत शुभ है, मोटा बनाये रहना अशुभ है। अहंकार जितना मोटा होता है उतने ही अधिक पाप बनते हैं। अपने तन, मन पर जब अधिकार नहीं जम पाता, तब दूसरों पर अधिकार मानना,

उनसे अपने मन की पूर्ति चाहना, अहंकार का अन्धापन ही है। अपने प्रति क्यों का सवाल करना तो ठीक है दूसरों के साथ क्यों का सवाल नहीं उठाना चाहिये। अंहकार ही हिंसक होता है अंहकारी व्यक्ति को कोई भी सदा सुखी नहीं रख सकता है और अहंकार रहित व्यक्ति को कोई दुखी नहीं कर सकता है।

गुण के अभिमान में ही परदोष दर्शन का प्रभाव पड़ता है। जो आत्मा परमात्मा से युक्त है, वह महात्मा। जो अहंकार संसार के पदार्थों को लिये हुये है वह अहंकार को देखने वाली ही वद्ध जीवात्मा है।

पथिक

*****

सर्वनाम रूपों के प्रकाशक परमात्मा को प्रणाम करते हुये हृदय प्रसन्न है!

पत्थर की मूर्ति में भी शरणागति एवं विश्वास, धारणा का परम द्वार खोल देती है इसके विपरीत भगवान के दर्शन से भी अहंकार के लिये शान्ति तृप्ति का द्वार नहीं खुलता। सन्तों का निर्णय है कि ऐसा कोई क्षण नहीं जब आनन्दमय परमात्मा, सुख स्वरूप आत्मा, विद्यमान न हो, बिना कुछ किये ही प्राप्त है। परमात्मा है, इसीलिये हम हैं परन्तु ज्ञान स्वरूप अहं आकारों को ओढ़ कर सत्य से विमुख हो रहा है। परमात्मा कितना महान उदार है कि ऐसे पापी, दोषपूर्ण, पतित अहंकार से भी घृणा नहीं करता। अपने ज्ञान को, प्रेम को, शक्ति को देना बन्द नहीं करता, उसी की शक्ति, चेतना, ज्ञान, प्रेम के द्वारा यह अहंकार अपनी पूर्ति कर रहा है। इतना ही नहीं, पतित अहंकार को भी वह प्रभु कभी न कभी पावन बनाकर अपना आनन्द द्वार खोल देता है। इन गुरू वाक्यों से हमें सुन्दर प्रेरणा मिलती है।

1. किसी को सुखदाता न मानो, तभी राग मिटेगा।
2. दुखदाता भी किसी अन्य को न मानो, तभी द्वेष मिटेगा।
3. संसार में किसी वस्तु, व्यक्ति से ममता न करो, कामना न रखो तभी स्वाधीनता सुलभ होगी।
4. जब तक किसी को सुखदाता दुखदाता मानोगे तब तक राग द्वेष से मुक्त हो ही नहीं सकते।
5. जब तक मिले हुये तन, धन, जन को अपना मानोगे तक तक मोह,

ममता, आसक्ति, कामना से छूट ही नहीं सकते।

6. यह अहंकार ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधादि, विकारों को ढोते हुये कितना अशान्त दुखी हो रहा है, फिर भी सावधान होकर अपने को नहीं देखता।

तुम्हारी बुद्धि बहुत सुन्दर है यदि तुम अपना ही चित्र देखो दूसरा बीच में न आने पाये। तीन बातें स्मरण रखना है।

1—ज्ञान अपने निरीक्षण के लिये।

2—प्रेम केवल प्रभु के लिये।

3—शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता, निष्काम सेवा के लिये।

भूत के आक्रमण से बुद्धि को बचाती रहो। वर्तमान में कर्तव्य पालन करते हुये दूसरे के अधिकार की रक्षा करती रहो। अपने मन की पूर्ति से शक्ति को बचाते हुये अक्सर तुम वही करती हो जो तुम्हें ठीक लगता है। मन की पूर्ति से मन बलवान ही रहता है। प्रेम की प्रधानता में ही दूसरों की पूर्ति की उदारता होती है। सेवा, दान, पुण्य वही करती हो जो तुम्हारा चुनाव होता है। प्रसन्न रहो, तो तुमसे बहुत पुण्य होगा। अप्रसन्न होना ही पाप का स्वागत है। प्रसन्न रहना ही अपना बहुत बड़ा हित साधते रहना है। वर्तमान में ही रहो, भविष्य का चिन्तन छोड़ती रहो। भूतकाल की स्मृति न दुहराओ, स्वांस को देखती रहो। स्वांस लो, तब मन ही मन **'मैं'** और निकले तब **'हूँ'** का मनन करो, या **सोहं** का मनन करो। विज्ञान मय कोष पर अधिकार मिल जाये तब पता चलेगा आनन्द तुम्हारे भीतर ही है, और ऊपर उठने पर तो तुम्ही आनन्द हो, तुम्ही नित्य चेतन हो, तुम्ही ज्ञान स्वरूप आत्मा हो, परमात्मा से भिन्न नहीं हो। तुममें कोई विकार बन्धन है ही नहीं। असंग होते ही तुम नित्य मुक्त हो। अभी अहंकार दुखी सुखी हो रहा है, मन ही सारे द्वन्दों को रचता रहता है। तुम्हें अहंकार को छोड़ना नहीं है। बल्कि अहंकार से मुक्त होना है। मन के पार जाते ही तुम नित्य शुद्ध, मुक्त बोधस्वरूप हो।

पथिक

*****

परमेश्वर की नित्य चेतन स्वरूप आत्मा को स्मरण!

यह सन्त वचन हैं :—

1. महत्वकांक्षी अहंकार जो भी सेवा, दान, तप, साधना करेगा उससे अपनी महत्वकांक्षा ही पूर्ण करेगा।

2. महत्वकांक्षा रहते अहंकार का शान्त रहना असम्भव है।

3. अहंकार के प्रत्येक सम्बन्ध दर्पण की भांति उसे ही प्रकट करते हैं। दर्पण में वही दीखता है जो देखने वाले के मन में होता है।

4. अहंकार स्वयं ही कामना, स्पृहा, ममता, आसक्ति के कारण अशान्त होता है इसलिये उसे दूसरा कोई शान्ति नहीं दे सकता।

5. अहंकार स्वयं अपनी कामना की अपूर्ति में ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध की अग्नि से तपता है फिर जिसके समीप होता है उसे तपाता है।

6. अग्नि तभी तक जलती है जब तक ईधन होता है ईधन के जल जाने पर अग्नि स्वतः बुझ जाती है।

7. दुख रूपी दावाग्नि वहीं प्रकट होती है जहाँ मोह, लोभ, काम अभिमान आदि कोई न कोई दोष रूपी ईधन होता है।

8. सुखासक्त अहंकार ही वस्तु व्यक्ति का भोगी बना रहता है।

9. जो व्यक्ति अपने दुख का कारण स्वदोष को देखता है, त्यागी होता है। दोषों का त्यागी ही शान्ति का अनुभव करता है।

10. कामना, वासना से ग्रसित को दुखी होने पर अपने दोष नहीं दीखते हैं, दूसरों के ही दीखते हैं। परदोषदर्शी अधिकाधिक दोषी बनता जाता है।

11. जो व्यक्ति अपने को जैसा है, वैसा नहीं जान सकता तब दूसरों को कैसे जान सकेगा। यदि स्वयं को समझना कठिन है तब अज्ञान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

12. सर्मपण में अहंकार खो सकता है। प्रेम में ही सर्मपण सम्भव है।

13. श्रद्धा की पूर्णता में ही बुद्धि से मुक्ति मिलेगी।

14. दो शरीरों के प्रति जो परस्पर आकर्षण है, वह कामी अहंकार में है, दो मनों के बीच जो आकर्षण है वह सद्‌गुण दर्शी प्रीति के कारण है। दो आत्माओं के बीच में जो आकर्षण है वह श्रद्धा के कारण है, यही श्रेष्ठतम है।

15. दरिद्र अहंकार अपने को शुद्ध, निर्विकार, निर्दोष मानकर दूसरों पर क्रोधित होता है। अपने ही द्वारा अपने को तपाता है। यही तो अपना हनन है, वह समझाने पर भी अपनी दुर्दशा को नहीं देखता, परन्तु भोगता रहता है।

16. पूर्ण पवित्रता तभी देखी जाती है, जब बाहरी प्रभावों से चित्त विचलित न हो, संसारिक आर्कषण, घृणा, द्वेष आक्रोश आवेग से बचे रहकर रीझ–खीझ से अविचलित रहकर, निर्द्वन्द स्थिति में दृढ़ता बनी रहे।

17. दो भिक्षुओं ने अपने पात्र में पेय पदार्थ की भिक्षा प्राप्त की, एक भिक्षु यही मनन करता था कि आधा पात्र खाली रह गया, दूसरा भिक्षु आनन्द विभोर था। वह सोचता था कि धन्यवाद मेरा आधा पात्र भर गया।

18. एक व्यक्ति गाता है :–

स्वामी मोहि न विसारियों, लाख लोग मिलि जाँहि।
हमसे तुमको बहुत है, तुमसे हमको नाहिं।।

19. एक व्यक्ति स्वामी की महिमा को न देखकर अपनी गरिमा को, अपने त्याग को, अपने प्रेम को सोचकर अपनी उन्नत दशा में स्वामी की संगति से पतन की कल्पना से खीझता है, शिकायत करता है, भाग्य को कोसता है।

20. अपने मन की प्रतिकूलता से दुखी अहंकार मिली हुई अनुकूलता को भूल जाता है और प्रतिकूलता का ही चिन्तन मनन करता है।

21. अहंकार रहित सेवक अपने स्वामी से जो कुछ भी अनुकूलता पाता है उसे पाकर अपने को धन्य समझकर स्वामी की दया, कृपा का स्मरण करते हुये कृतज्ञ एवं प्रसन्न रहता है, क्योंकि उसे जितना मिल गया, वही बहुत दिखता है। जो नहीं मिला उसका स्मरण नहीं रहता। वह पात्र के खाली भाग को न देखकर केवल आधा भरे भाग को ही देखता है।

22. कामना युक्त अहंकार मिला हुआ मान एवं अधिकार को भूल जाता है, जो नहीं मिलता वही याद रहता है।

23. निष्काम प्रेमी कहता है कि जो भी मुझे मिला है बहुत मिला है मैं तो इतना पाने के योग्य न था। मैं बहुत ही तृप्त हूँ आनन्दित हूँ।

24. सकाम सेवक कहता है तुमने दूसरों को खुले हृदय से दिया पर मुझे समय न दिया, अधिकार न दिया, बल्कि दुराव किया, छल किया, कपट किया।

25. वासना तथा कामना से भरा अहंकार दरिद्र रहकर मरता है। लेकिन

उपासना तृप्त प्रेमी सम्राट हो जाता है।

26. चारों ओर परमात्मा की कृपा दया को बरसते हुये अनुभव करना, परमात्मा में क्षण क्षण अपने को गतिमान देखना, उपासना है।

27. प्रेम से भरा हृदय उसी का स्मरण करता है जो बिना मांगे मिला है। वह कृतज्ञता से, प्रसन्नता से, नम्रता से खिला रहता है।

28. देहमय, मनोमय, अहंकार अपने समीपवर्तीजनों में वही देखता है जो उसके भीतर होता है। एक चमार के लिये दुनियां में जूतों के सिवाय कुछ नहीं है। आत्मज्ञानी के लिये अविनाशी प्रेमतत्व के सिवाय सब दृश्य मिथ्या है।

29. दृश्य के स्मरण से वह स्मरण हो रहा है, जो दृश्य का आश्रय अदृश्य सत् चेतन तत्व है।

30. अहंकार में जो हम नहीं है, जो अपना नहीं है, जिस पर अपना स्वतन्त्र अधिकार नहीं है उसी का स्मरण बना रहता है।

31. प्रेम में श्रद्धा सम्पन्न अहंकार दानी बनता है, अप्रेम में दरिद्र अभिमानी बना रहता है।

32. प्रेम को प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति, की आसक्ति से मुक्त कर लेने पर सेवा, त्याग एवं दान पूर्ण हो पाता है। मेरा मानने से ही आसक्ति बढ़ती है। ममता का अन्त होने पर चाह का अन्त होता है। आसक्ति ही लोभी, मोही कामी बनाती है। जिसमें आसक्ति है उसकी सेवा करने से दोष से छुटकारा मिल जाता है।

33. किसी संग की इच्छा नहीं करना है। अपनी कामनापूर्ति का पक्ष न लेकर अधिकारी सम्बन्धी की सेवा करना है।

34. जिस संगति से अशान्ति हो, दुख हो, दोष बढ़ते हों, उस संगति का त्याग करना चाहिये।

जो कुछ तुम्हारे किये बिना भीतर बाहर होता हुआ दीखे तो उसे दृष्टा साक्षी भाव से देखो। अपने को असंग रखकर परमात्मा से सत्य युक्त अनुभव करो। प्रकृति में सभी कार्य स्वतः हो रहे हैं। तुम भिखारी अहंकार को ही पहचाने रहो और पूर्ण परमात्मा की आत्मा को हर तरह मन, बुद्धि, अहंकार में चेतन रूप से व्यापक अनुभव करती रहो। जो वस्तु अथवा व्यक्ति सर्वोपरि प्रिय होती है वही प्रेमास्पद बन जाती है। तुम्हारे हृदय में

जो सर्वोपरि प्रिय है वही तुम्हारा प्रेमास्पद है। अब उस प्रेमास्पद से विनाशी नाम के पीछे अविनाशी तत्व को बार बार स्मरण करती रहो। यही साधना तुम्हें सत्य में प्रतिष्ठित कर देगी। विनाशी में अविनाशी को दिव्य प्रेम एवं ज्ञान के रूप में अनुभव करो। सदा शान्त प्रसन्न रहकर अन्तर निहित प्रेम स्वरूप प्रभु की कृपा का स्मरण करते हुये धन्यवाद दो। अनुकूलता में दया का स्मरण करो और प्रतिकूलता के दुख में कृपा का अनुभव करते हुये शान्त मौन होकर जो भी हो रहा है उसे ज्ञान में देखो। तुम्हारा प्रेमास्पद नित्य ज्ञानरूप में, प्रेमरूप में अखण्ड शक्तिरूप में तुम्हारे हृदय में ही है।

पथिक

*****

अपने ही परम प्रेमास्पद प्रभु का परम आश्रय प्राप्त करने के लिये आतुर प्रेममयी, ज्ञानमयी आत्मा को विनाशी नामरूप में स्मरण!

मुझे तो दीखता है कि तुम्हारे ऊपर प्रभु की बहुत दया के साथ कृपा सुलभ हो रही है। दया से तुम्हें सुविधा जनित सुख सुलभ है और कृपा इतनी अधिक है कि सत्संग के प्रति तुम्हारे हृदय में प्रबल अटूट श्रद्धा है। लोग वर्षो तीर्थ में रहते हैं पर स्नान और मन्दिर दर्शन अथवा कथा में ही अटके रहते हैं। तीर्थ का वास्तविक लाभ सन्तों के समागम से मिलता है। सन्त समागम एवं सन्तों की सत्कथा श्रवण से फिर सन्त में जब गुरू भाव में श्रद्धा जाग्रत होती है तब गुरू सानिध्य सुलभ होता है। गुरू का योग श्रद्धा के द्वारा ही हो पाता है। गुरू कोई आकृति या व्यक्ति नहीं होता है। गुरू तो ज्ञान का स्वरूप आत्मा ही है, वह किसी सन्त के माध्यम से मिल पाता है। तुम्हें वह सुलभ भी हो गया, यह सब तुम्हारे संयमी, तपस्वी, धर्ममय जीवनचर्या का फल है। अब आगे की यात्रा पूरी होनी है। किसी प्रकार ज्ञान ज्योति से अपनी अन्तर ज्ञान ज्योति को प्रकाशित कर लो। तुम प्रायः यह कहा करती हो कि हमारा सुधार कृपा से ही होगा। तो यह बताओ सुधार में बाधक काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममता आदि दोषो में कौन दोष तुम में प्रबल है। तुम्हें उसका पता तो होना चाहिये। मन की इच्छापूर्ति से सुख ही मिलेगा पर तृप्ति तो होगी नहीं। सत्य तो तुम्हीं हो, अपना संग ही सत्संग है। देह मन बुद्धि के द्वारा अन्य का संग सत्संग में बाधक है।

पथिक

*****

विनाशी नाम रूप में ज्ञान स्वरूप आत्मा को स्मरण!

मेरी तो यही सम्मति है कि मन की न मानकर बुद्धि की मानो, गीता की, रामायण की मानो। विवेक की, ज्ञान की मानो और जो कार्य मिलता है उसे पूर्ण करो। व्यर्थ दौड़ भाग से क्षणिक सुखाभास होगा, थकावट होगी फिर वहीं लौटना होगा, जहाँ से यात्रा शुरू हुई थी। वहीं विश्राम मिलेगा जहाँ से संकल्प उत्पन्न हुआ था। कामनाओं के त्याग में ही शान्ति है, पूर्ति में तो थकावट ही है। रजोगुण की प्रबलता में ही तीव्र कामनायें अशान्त बनाती हैं। साधना, भजन, में प्रीति बढ़ जाये और मुमुक्षता प्रबल न हो, तो अध्ययन, जप, ध्यान, ज्ञान भी अशान्ति नहीं मिटा पाते। वाह्य, सम्बन्ध, भूमि, भजन, परिवार के त्याग का संकल्प लोगों में होता है परन्तु लोभ, मोह, अभिमान, आसक्ति, कामना, सुखस्पृहा के त्याग का संकल्प दृढ़ नहीं देखा जाता या तो किसी की सेवा बने या फिर कामना, स्पृहा, अहंकार, ममता का त्याग हो जाये। सेवा तो जहाँ हो, वहीं हो सकती है। विद्यालय का कार्य भी सेवा ही है यदि वेतन के द्वारा अपनी इच्छा पूरी न करके दुखी की आवश्यकता पूरी की जाये।

तुम स्वयं ही महात्मा हो, अपना ही संग करो। यदि आत्मा परमात्मा की अभिन्नता का बोध हो जाये तो तुम्ही महात्मा हो। यदि तुम्हारे भीतर मान की चाह न होती तो हजारों महात्माओं से बढ़कर तुम दर्शनीय होती, मुझसे बहुत ऊपर होती।

पथिक

*****

विनाशी देह में प्रकाशित अविनाशी ज्ञान स्वरूप चेतन्य देव को नमस्कार!

जीव स्वतन्त्र है चाहे तो निष्काम प्रेमी भक्त बने या फिर कामी, क्रोधी, लोभी, ईष्यालू, बना रहे। जो हम निर्मित करते हैं उसे हमको ही मिटाना पड़ता है। रामकृष्ण को स्वयं से निर्मित काली की मूर्ति को स्वयं ही मिटाना पड़ा था। जिस शक्ति के दुरूपयोग से हम कामी, क्रोधी, ईष्यालू, द्वेषी बनते हैं उसी शक्ति से दृढ़ संकल्प द्वारा सदुपयोग करते हुये त्यागी, प्रेमी, सहिष्णु हो सकते हैं। राग, द्वेष न रहना ही इन्द्रियों को वश में रखना है। रागी, द्वोषी, क्रोधी को मिलता कुछ नहीं व्यर्थ शक्ति नष्ट होती है। किसी सहायक के बिना जब चाहे तभी निर्मल, निष्काम, निर्लोभी हो

सकते हैं परन्तु हम चाहते ही नहीं। हम जो दोष, गुण या शब्द क्रिया बार बार दोहराते हैं उसी का अभ्यास हो गया है। अभ्यास के विपरीत अभ्यास ही पूर्व अभ्यास से मुक्त होने का साधन है।

प्रायः प्राप्त अवसरों को खो देने पर कई जन्मों तक उन शुभ अवसरों से वंचित रहना पड़ता है। धन्य है, वे साधक जो प्रतिकूलता में भी शान्ति, सन्तोष, प्रसन्नता से भरे रहते हैं। मानवता के विकास में पशुवृत्तियों को जीतना ही पड़ेगा। शक्ति के दुरूपयोग से पतन होता है, उसी शक्ति के द्वारा सेवा का तथा त्याग का एवं सर्वस्व समर्पण का संकल्प पूर्ण होता है। उचित यही है कि वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य द्वारा दूसरों की सेवा होती रहे। यही अपने उद्धार का साधन है। अहंकार भिखारी है, दरिद्र है यह संसार में धन, संयोग, भोग, सम्मान, प्रतिष्ठा से ही तृप्त होना चाहता है, जो सम्भव नहीं है। इस अहंकार के पीछे आनन्द स्वरूप, सर्वदृष्टा, अनन्त सत्ता निरन्तर विद्यमान है। इसी का स्मरण मुक्ति, भक्ति, शान्ति के लिये सरल उपाय है।

मन में रजो गुण का वेग है, इच्छा प्रबल होती है, शक्ति के बिखरने के लिये कोई माध्यम चाहिये। नेत्र बन्द कर मौन, शान्त रहना, सर्वोपरि एकान्त है। केवल स्वास को ही मन से देखते रहना, यह उत्तम साधना है। आपके भीतर जो नीरसता है इसका कारण शरीर की प्रतिकूलता भी है। शक्ति की क्षीणता भी है। शक्ति की अधिकता में इच्छा तीव्र होती है, बहुत अधिक उत्साह एवं उत्सुक्ता होती है। शक्ति के ह्रास होने पर सब शिथिल हो जाता है। शक्ति के द्वारा मन बहुत चंचल रहता है। शक्ति की कमी से मन सूखने लगता है। इच्छा की पूर्ति से मन हरा भरा होता है। कामना बहुत प्रबल रहती है जो कुछ मन की स्थिति है इसका कोई भरोसा नहीं। लेकिन यह नैराश्य तथा वैराग्य की स्थिति अच्छी है। राग बढ़ना अच्छा नहीं है। प्रसन्नता तो तभी रहती है, जब मन की पूर्ति होती रहे, जब आत्मा में ही प्रीति होती है आत्मा में ही संतुष्टि और तृप्ति रहती है तब पराश्रित रहने वाली खिन्नता का अन्त होता है। जब तक संसारिक वस्तुओं, व्यक्तियों में प्रसन्नता निर्भर रहती है तब तक पराधीनता के कारण सुख–दुख का द्वन्द चलता ही रहता है।

पथिक

*****

प्रेम स्वरूप प्रभु की नित्य ज्ञान रूवरूप आत्मा को स्मरण!

तुम प्रसन्न रहो, प्रेम से हृद्वय को सदैव भरे रहो, जिसे देखो,उसे प्रेम भाव से देखो। पशु, पक्षी, फूल, पत्ते, चप्पल, जूते, कपड़े, खिलौने, कांटे सभी परमात्मा की प्रकृति में हैं। सभी को प्रेम से ही देखो। एक मालिक सेवक की दी हुई ककड़ी खाने लगा, वह बहुत कड़वी निकली। मालिक ने सेवा को दे दी, वह सेवक सब ककड़ी बिना मुंह बनाये ही खाता गया। सेवक बोला कि मेरे मालिक की दी हुई अनेकों वस्तु बड़ी स्वादिष्ट लगती रहीं यदि एक ककडी कड़वी है तो मैं उसे कैसे छोड़ दूँ। वह मेरे प्यारे मालिक का प्रसाद है। अतः मुझे अति आदरणीय है। इसी प्रकार तुम सब कुछ को प्रभु में ही देखो, प्रभु की ही वस्तु, व्यक्ति जानकर सबको स्वीकार करती जाओ। प्रभु ही अनुकूल प्रतिकूल रूपों में तुम्हारी समता को पुष्ट करना चाहते हैं, विषमता को मिटाना चाहते हैं। कोई तारीफ करे तो समझो कि प्रभु इस रूप में मेरे अहंकार को तृप्त कर रहे हैं और जब कोई अपमान करे तब समझ लो कि प्रभु इस रूप में मेरे अहंकार को सुखा तपा कर क्षीण करना चाहते हैं। तुम हर परिस्थिति में शान्त, मौन, प्रसन्न, समस्थित रहकर देखती जाओ। सारा जीवन शिक्षा के लिये है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध के प्रकट होने पर इन दोषों को देखती रहो, इनके अनुसार कर्म न करो, मौन ही रहो। अपने चेतन बिन्दु में वृत्ति को शान्त करो। आंख बन्द कर देखो शरीर में मैं कहाँ हूँ। **मैं** का बोध मात्र रहे और कोई स्मरण न आये, मेरा कुछ न रहे, तब देखो धड़कन, नाड़ी, श्वांस किसके द्वारा चल रही है। वह आत्मा नित्य निर्विकार है, वही तुम हो। जो तुम्हारे प्रेम में है उसे भिन्न न जानो, उसी में तल्लीन रहकर शान्त रहो। कामना दुखकारी है, जब कामना नहीं, वासना नहीं, तब तो शान्ति ही शान्ति है।

पथिक

*****

परम प्रभु की ज्ञान रूवरूप आत्मा को नाम रूप में स्मरण!

यह कई बार बताया गया है कि दर्पण में मुख जैसा होता है वैसा ही दीखता है। उसी प्रकार भिन्न भिन्न संग रूपी दर्पण से जो कुछ भीतर दोष गुण होते हैं वे सब प्रकट हो जाते हैं। संग से ही तुम्हारे भीतर अहंकार तथा उसके साथ चलने वाले मान की तृष्णा और उस पर बाधा पड़ने पर क्रोध, द्वेष प्रगट होता रहा। लोभ की प्रबलता न थी, इसलिये लोभ प्रकट नहीं हुआ। कामनायें प्रबल नहीं हुई, उसी क्रम में संग से छिपी हुई श्रद्धा

जाग्रत हुई। अब श्रद्धा के साथ चलने वाले नम्रता, उदारता, सहिष्णुता, प्रेम, निष्कामता आदि दैवी गुण वृत्तियां भी क्रमशः जाग्रत हो रही हैं, यह बड़े सौभाग्य की बात है। गुण हो, या दोष हो उसके अनुरूप संग से दोनों सबल होते हैं यदि कुछ दिन श्रद्धेय गुरूजनों का संग न मिले तो श्रद्धा के साथ रहने वाली दैवी वृत्तियां जीर्ण–क्षीर्ण हो सकती हैं। इसी प्रकार यदि अहंकार जनित दोषों की पुष्टि के अवसर न मिलें तो वे भी जीर्ण–क्षीर्ण हो सकते हैं। किसी संग से दोष तथा किसी संग से गुणों का विकास होता जाता है। चाहे गुण हो या दोष जो बार बार दोहराया जाता है उसी का सहज अभ्यास हो जाता है। अहंकार की खुराक न मिलने से और सत्संग सुलभ होते रहने से जो भी आसुरी वृत्तियाँ है क्रमशः शान्त होती जायेंगी।

विज्ञानमय कोष के ऊपर आनन्दमय कोष में जो विशुद्ध प्रेम तत्व है वही मनोमय कोष में मोह का रूप ले रहा है। वही नीचे स्तर में सुख से सम्बन्धित होने पर पर काम कहा जाता है। जो नीचे काम है। वही ऊपर जाकर सर्वोच्च स्तर पर केवल प्रेम के रूप में विद्यमान है। वही आनन्द के रूप में अनुभूत होता है। हृदय में आत्मा आनन्द रूप है। प्रेम उसका प्रकाश है, वही आनन्द इन्द्रियों के बाहर आकर सुख रूप में भासित होता है। जो हो रहा है उसे देखती चलो, यह भी एक दिशा है, यात्रा है, इसका भी अन्त होगा।

अभी तक यह यात्रा बन्द थी। अब इसी दिशा में गुण दोष प्रकट होंगे। अध्ययन में समय बिताओ। दृष्टा होकर भीतर देखो बस चेतना को प्रीति के आकार में देखती रहो। कल्पना के चित्र बनने दो। भावना से अंगीकृत होने दो। तुम देखती भर रहो और यह भी निरीक्षण करो ऐसी कौन सी कामना जाग्रत होती है, जो पहले कभी नहीं हुई। बहुत अरमान उठेंगे। कल्पना के चित्र बहुत ही मोहक रसमय होंगे, बहुत आतुरता, उत्सुकता, अधीरता बढ़ेगी। बेग प्रबल होगा, तुम्हें दृष्टा होकर देखना है। श्रद्वेय को ज्ञान रूप में अपने साथ देखो। अभी तुम्हें बहुत सरल होना है। छल, दुराव, भय, छोड़, देना है। जिस प्रकार छोटे बालक छल, चतुरता, कपट से रहित होते हैं। उसी प्रकार तुम्हें होना है।

यह सब प्रेम के प्रभाव से ही सम्भव है। अहंकार की कठोरता, दरिद्रता बाधक बनती है। तुम्हारी श्रद्धा ही तुम्हें विनम्र, सरल, उदार, सहिष्णु, दानी, गरीब, दीन बना सकती है। इन सद्‌गुणों से ही तुम अपने श्रद्धास्पद को सरल बना सकती हो। बस दीन बनो, गरीब बनो, अकिन्चन

होकर रहो। गर्व, अभिमान, सम्मान की दरिद्रता को पास न आने दो। अभी तुम प्रभु के प्रेम का आस्वादन करते हुये तृप्त हो सकती हो। मान का, अधिकार का, अपनी पूर्ति का लालच रहने ही न दो।

पथिक

*****

विनाशी देह में परमेश्वर की प्रेमस्वरूप आत्मा को सादर प्रणाम।

जिस तरह दर्पण में मुख देखा जाता है उसी तरह ज्ञान में शरीर की, मन की, प्राण की समस्त गतियों को देखते हुये रहना, अपने को असंग एवं मुक्त बनाने की साधना है। क्रोध आये तो यह नहीं सोचना कि मै क्रोधी हूँ बल्कि देखना कि यह क्रोध है और फिर जानना कि यह क्या करना चाहता है। सजग होकर देखते रहना ही सहज साधना है। इसमें किन्चित भी भ्रम नहीं है। कठोर हृदय से ही कठोराघात होते हैं। प्रेम से द्वन्द कोमल होते हैं, कठोर एवं कटु आधार नहीं रह जाते हैं। अहंकार ही अभिमानी होता है। लेकिन प्रेम से अहलादित हृदय कोमल, विनम्र, कृतज्ञ रहा करता है। यही सिद्धि तुम्हें प्राप्त करनी है। किसी के प्रति वाणी द्वारा आघात न हो, इसके लिये सदा ही सजग रहना चाहिये। परम प्रभु की याद में समय बिताते हुये कार्य होते हुये देखो, कर्ता न बनो। कर्ता तभी तक बनता है जब तक अहंकार की दीवार नहीं टूटती है। अहंकार के पीछे चेतन प्रकाश है, अहंकार के आगे उसी के कारण अंधेरा है। दिन में अनेकों बार एकदम स्तब्ध हो जाया करो, ठहर जाया करो। एकदम ऐसा अनुभव करो कि सब कुछ ठहर गया है। शान्त है, गति रूक गयी है। दस पांच सेकेन्ड ऐसे ही शान्त स्तब्ध होकर देखो।

तुम यह कल्पना न करो कि कहीं जाने से अशान्ति, दुख से मुक्ति मिलेगी। यह अहंकार का पाप है जो बेचैन एवं अशान्त बनाकर इधर उधर नचाता है। पाप से ही अशान्ति, पाप से ही दुख, पाप से ही शक्ति सम्पत्ति का दुरूपयोग, पाप से ही ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, कामादि विकारों की प्रबलता होती है। तुम्हारी बुद्धि के साथ विद्या है इसलिये समझ में आ सकता है। किन्तु जहाँ जाओगी, मन साथ ही रहेगा। वातावरण का, संग का अच्छा प्रभाव पड़ेगा। लेकिन भीतर के भाव विचार जब तक निर्वासित न होंगे तब तक सन्तापित करते रहेंगे। एक सन्त ने कहा है कि तुम किसी संगति से, भीड़ से, कार्यक्षेत्र से, ऊब कर भागना चाहते हो, इससे लाभ नहीं होगा।

इसलिये तुम ऐसे मन से ही ऊबो, मन से नफरत करो, मन को ही धिक्कारो, मनोविकार को दूर करो, मन की न मानो। मन ही तो तुम्हारा सब कुछ का भोगी बन रहा है। कितना सुन्दर होता कि तन मन किसी की सेवा में लगा होता, किसी के काम आता।

अभी तो मन सबको अपनी पूर्ति का साधन बनाता है। अहंकार अपनी ही पूर्ति का पक्षपाती है अब तो एक ही दिशा है कि तुम अपने में ही अपने प्रियतम आत्मा परमात्मा की उपासना करो, आत्मा ही परम प्रियतम है, प्रेम स्वरूप है। आत्मा के होने से ही शरीर प्रिय लगते हैं। यदि आत्मा न हो तो खाल से लपटे हुये अस्थि, मांस, पिण्ड जिसमें मल, मूत्र, थूक, लार, कफ, रक्तादि घृणित द्रव्य भरे हैं, इस देह को कुत्ते गीध भले ही चाहते हैं वर्ना चेतन आत्मा के बिना यह देह कदापि प्रिय नहीं हो सकती। अब भी सावधान होकर देखो कि यदि तुम्हारे मन में काम वासना नहीं है, लोभ नहीं है, तब तुम पर किसी व्यक्ति का प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये। तुम्हारे लिये किसी संग का त्याग आसान है। कामी, लोभी, संगासक्ति का त्याग नहीं कर पाते। जो कामी व्यक्ति हैं उनको तभी आसक्ति से छुटकारा मिलता है जब वे अपने सर्वस्व तन को, मन को, उसी की सेवा में लगा देते हैं जिससे वह अपने मन की पूर्ति चाहते हैं। कामी का, लोभी का, मन बहुत ही दरिद्र होता है। इसीलिये जिससे अपने मन की पूर्ति होती है उसे तन, धन, अर्पण करता है और जब पूर्ति में बाधा पड़ती है तब क्रोध अन्धा होकर तन से, वाणी से, हिन्सक होता है। तुम स्वंय में ठहरो, यही मुक्ति है। कल्पना के जाल को छोड़ दो। भीड़ से, स्कूल से, ऊबते हो तो मन से ऊबो। अहं के आकार तुम्हारे द्वारा ही निर्मित हैं। जो हो रहा है प्रभु का विधान समझकर स्वीकार करती जाओ। दुखी होने पर तुम हिन्सक ही बनोगी।

सुख को भीतर जानकर अहिंसक हो सकती हो। सत्यानन्द को पाना नहीं है, जानना है, खोजना नहीं है, पहिचानना है। तुम जो हो सो पूर्ण परम तृप्त, परम प्रिय हो, तुम प्रेम ही हो, स्वयं में ही हो, स्वंय में ही प्रेम से तृप्त हो जाओ। जिस संग से अशान्ति हो उस संग की कामना ही छोड़ दो। मैं तुम्हारे हृदयस्थ आत्मा को प्रणाम करता हूँ। आत्मा परम प्रेमास्पद है, तुम्हारी देह नहीं है। देह का संग घोर असत संग है। मुझे तो देह द्वारा सेवा की तनिक भी जरूरत नहीं है। शरीर छूटते समय भले ही किसी की अपेक्षा हो। तुम अपने चेतन स्वरूप का स्मरण करो। जो स्वयं में स्थिर है,

वही आत्मवान है। वासनामय चेतना को उपासनामय बना लो। तुम परम पवित्र चेतन आत्मा हो।

पथिक

*****

अनेक आकारों को स्वीकार किये हुये चेतन स्वरूप को स्मरण!

तुम जहाँ जाओगी वहाँ यह मन साथ जायेगा। शायद तुम मन की होकर ही कुछ सीख सकोगी या फिर मन की कोई बात मानो ही नहीं, तब मुक्त होना सम्भव होगा। यदि श्रद्धा से पाप नष्ट होते हैं तो इसके विपरीत अश्रद्धा से परप पाप बन जाते हैं। जहाँ बुद्धि मौन हो जाती है तभी श्रद्धा होती है और जब बुद्धि तीव्र होती है तब अन्ध श्रद्धा नहीं टिक पाती। एक बार जब छिद्र बन जाता है तब उसे कदाचित बन्द करा जाये फिर भी वह कभी भी फूट जाता है। छिद्र बड़ा ही होता जाता है। तुम्हारी श्रद्धा वहीं टिकेगी जहाँ दोष न दीखें और दोष तभी नहीं दिखेंगे जब भरपूर प्रेम होगा। प्रेम तभी पूर्ण होगा जब अपने मन की पूर्ति का पक्ष न होगा और अहंकार समर्पित हो जायेगा। यदि कहीं श्रद्धा स्थिर नहीं हो तब सर्वोपरि श्रेष्ठ यही है कि तुम अपने में ही श्रद्धा करो। आत्मश्रद्धा होनी ही चाहिये। मन को, चेतन आत्मा में ही स्थिर करो, किसी साधू महात्मा के पीछे न जाओ।

आत्मवान होना बहुत ही उँची बात है। यदि अभी से आत्मा में ही श्रद्धा दृढ़ कर लो, आत्मा में ही प्रीति लगाते रहो, आत्मा में ही संतुष्ट रहो, तब तो तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं। कोई भी कर्तव्य नहीं, मन की मानो ही नहीं, मन तुम्हारा नहीं है। तुम अपने को ज्ञान रूवरूप, चेतन स्वरूप अनुभव करो। देह को, मन को, अपना न मानो और मन की न मानो। तभी तुम्हारी परेशानी दूर होगी। तुम्हारा मन ही तुम्हारा सर्वस्य है, वह किसी के प्रति समर्पित हो तभी तुम्हारा हित हो सकता है। मन की कामना जब पूरी नहीं होती तब क्रोध प्रबल होता है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध में बुद्धि अन्धी हो जाती है। कामना ही उपासना में बाधक है। उपासना ही वासना से मुक्त बनाती है। जहाँ ममता है, वहीं कामना बढ़ती है। कामना की पूर्ति से असक्ति बढ़ती है। आसक्ति ही सत्यानुरक्ति नहीं होने देती।

पथिक

*****

परम प्रिय, परम प्रभु श्रद्धालु आत्मा में सद्भावों एवं सद्गुणों का स्मरण करते हुये नमो नारायण!

मन जब सुखी हो या दुखी हो तब विवेक पूर्वक निरीक्षण करते रहना चाहिये। सुखी होने पर वस्तु या व्यक्ति के प्रति लोभ, मोह, आदि दोषों की वृद्धि होती है और दुखी होने पर द्वेष, क्रोधादि विकारों की पुष्टि होती है। जहाँ तक बने सेवा के अवसर खोजते रहो। धन, मान, प्यार, अधिकार लेना सभी जानते हैं, प्रयत्न करते हैं। तरसते रहते हैं और जितना मिलता है उससे तृप्त भी नहीं होते हैं। क्योंकि अहंकार भिखारी तो है ही, दरिद्र भी है, इसीलिये रामायण में कहा है।

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। सन्त मिलन सम सुख कुछ नाहीं।

सन्त महात्मा के प्रति श्रद्धा प्रेम होने पर ही त्याग और दान का बल आता है। धन, मान, प्यार, अधिकार जो देने की हिम्मत रखते हैं वही अधिक से अधिक पाने के अधिकारी होते हैं। लोभी, मोही, अभिमानी सुरक्षा की चिन्ता करते करते बूढ़े हो जाते हैं। जब प्रेम पर अहंकार हावी होता है तब सब गड़बड़ हो जाता है। प्रेम के साथ नम्रता, उदारता, सहिष्णुता, क्षमा, करूणा, प्रसन्नता, सजगता, तत्परता, विचार, विवेकपूर्वक परिणाम दर्शन की योग्यता, दूरदर्शिता आदि दैवी गुण होना ही चाहिये। अप्रेम में इन गुणों के विपरीत द्वेष दुर्विकार प्रबल हो जाते हैं। तुम अप्रेम की स्थिति में कभी न लौटो तब सभी सद्गुण तुम्हारे हृदय में हैं। प्रीति की पूर्णता में अपने प्रेमास्पद के प्रति संकोच करना, लज्जा करना, भय करना, छिपाना, दुराव करना, अपने सेवास्पद के अनूकूल न होना तो बहुत ही विपरीत व्यवहार माना जाता है। कहीं लज्जा संकोच करने से अपराध बन जाते हैं। पाप में संकोच लज्जा, भय बहुत शुभ सुन्दर है। सेवा में, प्रीति व दान में, संकोच, भय लज्जा बहुत अशुभ है। लेने में संकोच, लज्जा शुभ है, अपने प्रिय को या सुपात्र को देने में कन्जूसी अशुभ है।

पथिक

*****

प्रेम स्वरूप प्रभु को बारम्बार नमन।

कोई भी सम्बन्ध या तो किसी की याद, या तो लेने के लिये है या देने के लिये है। जो देना है उसे दे दो। जो लेना है उसे छोड़ दो। किसी के ऋणी न रहो। यह किसी पुस्तक में कहीं लिखा है। सच पूछो तो मेरे

पास किसी को देने के लिये है ही क्या? जो कुछ तन मन आदि है वह तो मेरा है ही नहीं।

वस्तुओं की ममता आसक्ति पराधीन बनाती है, कभी दीनता, और कभी अभिमान बढ़ाती है। दीनता, अभिमान के रहते विषमता नहीं मिटती। विषमता मिटे बिना नित्य प्रसन्नता नहीं रहती। नित्य प्रसन्नता रहे बिना खिन्नता नहीं मिटती। खिन्नता मिटे बिना काम नहीं मिटता, काम के रहते देहासक्ति तथा भिन्नता नहीं मिटती। भिन्नता मिटे बिना निसन्देहता, निर्भयता, चिन्मयता सुलभ नहीं होती। शुद्ध चित्त वही है जिसमें स्थिरता, प्रसन्नता, निर्भयता हो। तुम्हारे हृदय में जब अपनी कोई चाह न रहेगी तब खिन्नता, क्षोभ, अशान्ति क्यों होगी। तुम चाहती हो कि कोई इच्छा है, इसका पता नहीं लगता, यदि कहीं जाने का मन होता है या छोड़ने की इच्छा भी इच्छा है, किसी को देखने की इच्छा भी इच्छा है। अपनी अनुकूलता की इच्छा है। इच्छा न हो तो शान्ति ही शान्ति है। जब तक चित्त शुद्ध न रहेगा तब तक शान्ति, दुख, भय, तृष्णा नहीं मिटती।

चित्त की अशुद्धि कैसे होती है—

1.सामर्थ्य के दुरूपयोग से। 2. दोष की वेदना न होने से, 3 कर्तव्य का विवेक न होने से, 4—विश्राम न पाने से, 5—जिसे अपना माना है उसे प्यार न देने से। 6—किसी की सुनी हुई, देखी हुई भूल की बुराई के आधार पर अपने को या दूसरे को सदा के लिये बुरा मान लेने से। 7—वर्तमान में नीरसता पकड़े रहने से। 8—व्यर्थ चिन्तन चलते रहने से। 9—संयोग की दासता से, वियोग के भय से। 10—जो कुछ हो जाये और जो कुछ करना पड़े उसमें प्रसन्न न रहने से। 11—चित्त को दबाते रहने से। 12—संकल्प की उत्पत्ति और पूर्ति के परिणाम को न देखने से। 13—लोभी, मोही, अभिमानी बने रहने से। 14—सीमित सुखों में, अशाक्ति से। 15—सीमित अहंकार को छोड़ने से। 16—विवेक के अनादर से। 17—गुणों के अभिमान से। 18—सीमित प्रीति से। प्रेमास्पद के साथ भेद भिन्नता बनाये रहने से। 20—विनाशी, देहादि वस्तुओं में राग से। 21—प्रतिकूलता में क्रोध से चित्त अशुद्ध रहता है। बुद्धि में जड़ता रहती है। विवेक के आदर से युगों की अशुद्धि मिट जाती है। अहेतुकी कृपा के आदर से अशुद्धि मिटती है। अहंकार ही मोही, लोभी, कामी, हिसंक, पापी बना रहता है। असहयोग पूर्वक अपना सुधार अपने प्रति न्याय है। संकल्प

की पूर्ति का जितना सुख होता है उससे अधिक संकल्प के त्याग से, शान्ति स्वतंत्रता सुलभ होती है। ऊपर इक्कीस प्रकार के लक्षण चित्त की अशुद्धि के लिये हैं। इनमें कुछ लक्षण तो तुममें घटित होते ही होंगे। सेवा, दान, त्याग, प्रेम से चित्त शुद्ध हो सकता है। अब धन से सेवा तो हो जाती है परन्तु तन की सेवा के पीछे मन अपनी पूर्ति चाहेगा तब सेवा कैसे होगी।

पथिक

*****

नमो परमात्मनें!

तुम यदि वीरता का परिचय देना चाहती हो तो सत्संग से भागो मत। अहंकार की बलि जब तक न चढ़ाओगी तब तक यह अहंकार रूपी भैंसा तुम्हारी पवित्र शक्ति को नष्ट ही करता रहेगा। लाखों विद्वान नहीं जानते कि मनुष्य के साथ जो धन है उसका भोग सूक्ष्म शरीर से राक्षस ही कर रहा है और पदाधिकार का भोग अहंकार के भीतर रहकर मान की शक्ति कर रही है। कुछ अंश में देवताओं का अधिकार जहाँ कहीं प्राप्त है वहीं दान, सेवा, शुभ, कर्म बन रहे हैं। आप जहाँ जाओगी वहाँ पर यह अहंकार अपनी सृष्टि लेकर साथ ही रहेगा। भले ही वहाँ आसुरी एवं पशु शक्ति को खुराक न मिले परन्तु जब तक लौटोगी तब फिर वहीं रहेगा। तुम इस दरिद्र, भिखारी, अहंकार को देखो, यही अशान्त है, क्योंकि पता नहीं इसने कब कहाँ, किस प्रकार अपने मान के लिये, लाभ के लिये, इच्छित सुखोपभोग के लिये हिंसा की है। तन द्वारा हिंसा अथवा पाप कर्मों का फल तन द्वारा भोगना पड़ता है और मन द्वारा होने वाली हिंसा के पाप का परिणाम मन को भोगना पड़ता है। स्थूल रूप में जिसे दुख, कष्ट देकर शत्रु बनाया जाता है वह प्रथम तो स्थूल शरीर से बदला लेता है और शरीर छोड़ने पर वही पशु, वही क्रूर कर्मी मनुष्य सूक्ष्म रूप में काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, के साथ रहकर दुष्ट कार्य के लिये सहायक बनता है। दैवी उपासना में बकरा, भैसा की बलि देने की प्रथा है। यह चालाक मनुष्यों ने प्रथा बनाई है। वास्तव में शक्ति को संतुष्ट करने के लिये अहंकार की ही बलि देनी पड़ती है। तुम दूसरों से न भिड़कर दूसरों को शत्रु, विद्रोही, विरोधी न मानकर इस अहंकार को समस्त दुखों अनर्थों का मूल कारण समझ कर इसे ही कुचलो। विनम्रता के द्वारा इसे ही समर्पित करो। इसके जीते बिना किसी की अशान्ति नहीं मिटेगी। जो शक्ति अपने मान की रक्षा के लिये, अपने को निर्दोष सिद्ध करने में व्यय करती हो, उसी शक्ति से इस

अहंकार की गर्दन पकड़कर सर्वमयी भगवती के आगे झुकाओ और ज्ञान रूपी तलवार से इसे काटो। वृन्दावन में लाला बाबू लखपती सेठ थे, विरक्त हो गये, सभी जगह भीख मांगकर वसर करते थे पर एक पूर्व के सम्बन्धी के यहाँ न जाते थे क्योंकि अहंकार कहता था कि सबके आगे हाथ परोसेंगे पर इस घर में नहीं जायेंगे। जब तक ऐसी भावना रही तब तक प्रभु की कृपा का अनुभव नहीं हुआ। किसी प्रकार अपना अहंकार ही बाधक दीखने पर जब उस द्वार में भीख मांगी, सर झुकाया, उसी दिन परमशान्ति तृप्ति का अनुभव हो सका।

तुम्हारी भावना, तुम्हारे विचार ही तुम्हें अशान्त बना रहे हैं, वह अहंकार के साथ हैं, जब तुम्हारा कोई कसूर नहीं है भूल नहीं है, तब न्याय सफाई देने की क्या जरूरत है और भीतर अभिमान है, दोष हैं, तब भी किसी के सामने न्याय कराने की क्या जरूरत है। पूरी शक्ति लगाकर तुम अपने आस पास अहंकारी जनों की करतूतों को न देखकर, अहंकार के पीछे पवित्र आत्मा को, परमात्मा को नमन करती रहो। हिम्मत करो, अपने भीतर विजयी बनो, सहने का संकल्प करो।

जो तोकूँ काँटा बुये, ताहि बुये तू फल।
तोको फूल के फूल हैं वाकू है त्रिशूल।।

पथिक

*****

नाम रूप में नित्य चेतना को स्मरण!

प्राकृतिक विधान से जो कुछ जिसके भीतर होता है वही संग के प्रभाव से उमड़ता है। गुण और दोषों के पर्त के ऊपर नीचे पर्त लगे हैं। कोई संग श्रद्धा को उभार देता है, जिससे श्रद्धा के सहयोगी, सजातीय, नम्रता, उदारता, सेवाभाव आदि दिव्य गुणों के अनुसार प्रवृत्ति होने लगती है। संग से ही अहंगत वासना के प्रभाव से कभी काम, कभी लोभ, मोह, ममता, आसक्ति प्रबल हो उठती है और प्रतिकूलता होने पर ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, आदि वृत्तियां भीषण रूप धारण करती हैं।

योग साधना में प्राणायाम स्वास की तीव्र घर्षण कराने से भीतर जो सद्भाव, दुर्भाव एवं सद्वासना दुर्वासना छिपी होती है वह उसी समय प्रबल होकर साधक को अपनी पूर्ति के लिये बाध्य करती है। साधक स्वासाघात के घर्षण से दस पन्द्रह मिनट बाद ही पागल की भांति हंसने,

गाने लगता है, गाली बकने लगता है या कीर्तन, कविता, प्रलाप, आलाप विलाप करने लगता है, नग्न हो जाता है। भागता है, फिर वेग शान्त होने पर स्वयं बहुत शान्त होकर अन्तर में आनन्द का अनुभव करता है। जो वेग निकलने में अनेक वर्ष लगते हैं। वह सात दिन की साधना में उमड़ कर रूपान्तरित हो जाते हैं। भीतर सभी के न जाने क्या क्या छिपा है। कई जन्म लगते हैं उसके विसर्जन में, लेकिन तीव्र साधन से वह बहुत कम समय में प्रकट होकर उर्ध्वगति में बदल जाते हैं। इसीलिये साधक को गुरू की समीपता सुलभ होने पर सावधान किया जाता है कि ऐसी साधना गुरू सानिध्य में साधनी होती है जिससे कि उसका किसी व्यक्ति से सम्पर्क न रहे। क्योंकि यदि विकारों का उभाड़ होगा, काम, क्रोध लोभ, मोह की वासना उमड़ेगी तो वह अन्य से सम्बन्ध होने पर अति घोर अपराधी बना देगी। यदि अच्छी पवित्र वासना होगी तब उसे सर्वदानी त्यागी बना देगी। नाभि चक्र में संचित शक्ति काम, क्रोध लोभ में बलात प्रेरित करती है। सब दोष प्रबल नहीं होते जो दोष उमड़ता है और तत्सम्बन्धित जो संकल्प उठता है, बहुत तीव्रता से उठता है। यदि उसकी पूर्ति करने की स्वच्छन्दता रहती है तब व्यक्ति का पतन हो जाता है। यदि किसी प्रकार यह शक्ति नाभि चक्र से ऊपर उठकर हृदय चक्र को जाग्रत कर दे, तो तुम साकारोवासना में बड़ी तेजी से उन्नति कर सकती हो। लेकिन वह शक्ति उर्ध्वमुखी नहीं हो पाती, नीचे ही आक्रोश, क्रोध, द्वेष तथा परिचिन्तन में व्यय होती है, यह बह जाती है। ऊपर उठने की क्षमता नहीं रह जाती। ऐसी दशा में तुम्हें किसी व्यक्ति से सम्बन्ध न रखकर अकेले ही मन के वेग को एकान्त स्थान में देखना चाहिये। यदि क्रोध हो तो बन्द कमरे में दीवाल से लड़ना, तकिया को पीटना, बड़ी जोर से मुठ्ठी बांधना, दांतों को कसकर दबाना चाहिये। एकान्त में यह वेग उमड़ कर शान्त हो जायेंगे। यद्यपि यह पागल पन मालूम होगा परन्तु सच्चे पागलपन को रोकने का उपाय यह कृत्रिम पागलपन अति उत्तम है। तुम्हें भलाई, बुराई, लडाई, मान, तिरस्कार, पूजा, प्रार्थना, क्षमा, याचना जो करना हो तो एकान्त में करो इसका बहुत अच्छा परिणाम होगा। मन से पुण्य करने का फल तो होगा, लेकिन मन से पाप करने का, क्रोध करने का पाप न लगेगा। भगवान अपने साथियों को ज्ञान द्वारा निर्मोही, निर्लोभी, निराभिमानी, तत्वज्ञानी, निष्काम प्रेमी बना सके हैं।

पथिक

*****

नाम रूप में परम प्रभु की आत्मा को स्मरण!

तुम्हें कहीं शान्ति नहीं मिलती, कहीं अनुकूलता नहीं रहती। तुम्हारे साथ केवल कुछ धन है जिससे अनुकूलता रहती है, चाहे जहाँ खर्च करो, चाहे जहाँ चल दो। इसके अतिरिक्त मन की पूर्ति का और कोई साधन तो दीखता नहीं। तन भी साथ दे रहा है। जहाँ तक पुण्य है वहीं तक तन की पूर्ति का सुख मिल सकता है। जितनी पूर्ति होती है उतने ही पुण्य घटते हैं। दूसरों की सेवा उपकार से पुण्य बढ़ते हैं। लेकिन जो व्यक्ति मन की पूर्ति चाहेगा वह सेवा कर नहीं पायेगा। यदि कुछ सेवा बनेगी वह अहंकार की पूर्ति में सहायक बन जायेगी। पूर्व में कुछ सेवा बनी भी है वह अहंकार ने पचा ली है।

कोटि कर्म बनते रहे, सदा क्रोध की धार।

किया कराया सब गया, जब आया अहंकार।।

तन किसी के काम आ नहीं रहा। केवल धन का दान ही हो पाता है, वह भी मन मुखता से ही होता है। अहंकार पसीजता है, पिघलता है, गलता है। वह प्रेम अभी तक कहीं पूर्ण हो न सका, जिससे भी सम्बन्ध है उसी से अहंकार अपनी ही पूर्ति चाहने लगता है। यदि तुम प्रेम से हृदय को भर लो, तभी तुमसे निष्काम सेवा, दान त्याग हो सकता है। प्रेम में ही तुम विनम्र, सरल, उदार, सहिष्णु हो पाती हो। अप्रेम में पाप, अपराध बन जाते हैं। प्रेम में ही तुम्हारे अहंकार की दरिद्रता दूर हो सकती है। तुम अभी तक प्रेम का आश्रय लेकर गरीब, अकिन्चन, विनम्र, सरल, सहिष्णु नहीं हो पाती हो, अहंकार भयंकर रूप धारण कर लेता है, वह पहले तपता है फिर बरसता है और कुछ समय के लिये शीतल होता है। यदि तुम सत्चर्चा में श्रद्धा रखती हो तो मेरा कुछ घटता नहीं है। यह तो तुम्हारा सौभाग्य है, खूब सुना, मनन करो, तद्नुसार व्यवहार करो।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी ज्ञान रूवरूप आत्मा को श्रद्धालु नाम रूप में स्मरण!

एक नियम नित्य सेवनीय है अपने सभी साथियों को करना चाहिये। शाम को 6 बजकर 50 मिनट पर खड़े होकर शान्त, मौन रहकर ध्यान से जो कुछ भी परमात्मा की शक्ति से अपने आप हो रहा है उसे अनुभव करना है। 7 बजकर 5 मिनट तक यह मौन ध्यान है। एक आसन, एक समय में मौन ध्यान से हम सभी आत्माओं में एकता की अनुभूति सजग होगी। उस मौन ध्यान में कुछ क्षण अन्त में अपने दिन भर के भले बुरे कर्मों का निरीक्षण करना है। गलत कामों के लिये क्षमा याचना करनी है और अच्छे कामों के लिये प्रभु को धन्यवाद देना है। जब हम कुछ न करके मौन है तब जो कुछ स्वास धड़कन नाड़ी, पाचन हो रहा है वह सब प्रभु की शक्ति से ही हो रहा है। उस प्रभु को अनन्त शक्ति के रूप में ज्ञान और प्रेम के रूप में अनुभव करना है। तुम भी नियम से याद रखकर मौन ध्यान कर लिया करो। खड़े न हो सको तो बैठकर ही मौन रहो। 15 मिनट ठीक समय से नित्य मौन होना है, चाहे जहाँ रहो समय निकाल लो।

ये सन्त वचन नित्य स्मरणीय हैं :–

1. प्रेम में ही समस्त पुण्य हैं। अप्रेम में ही सारे पाप अपराध हैं।
2. किसी के प्रति दुर्भाव उत्पन्न होते ही पाप बन जाता है और उसकी प्रेरणा से कर्म बनते ही अपराध हो जाता है।
3. जिसके भीतर सुगन्ध या दुर्गन्ध, तपन या शीतलता जो कुछ होगी, वही चारों ओर फैलती है। सुगन्ध या दुर्गन्ध अपने भीतर से निकलती है, लेकिन व्यक्ति यह मानता है कि दूसरे लोगों से ही सुगन्ध या दुर्गन्ध आ रही है।
4. कहीं कहीं अनेंको व्यक्ति एक प्रकार के भले या बुरे विचार वाले अथवा कई व्यक्ति सुगन्ध दुर्गन्ध लिये हुये एकत्रित हो जाते हैं।
5. नर्क को स्वर्ग और स्वर्ग को नर्क बना देना अपने शुद्ध या अशुद्ध मन का काम है।

द्वेष करोगो द्वेष बढेगा, प्रीति करोगे तो प्रीति।
जैसा मुख वैसा दीखेगा, जग दर्पण की नीति।।

6. अपने पवित्र विचार ही अपने साथ स्वर्ग हैं, अपने अपवित्र विचार ही अपने साथ नर्क हैं।

7. शरीर छूटने के बाद भी अच्छे विचार सुन्दर देवदूत के रूप में और भयानक विचार यमदूत के रूप में आस पास दिखाई देते हैं।

8. एक व्यक्ति दूसरे गाँव में जाकर एक वृद्ध से पूछता है कि इस गाँव के लोग कैसे हैं। वह वृद्ध पूछता है कि भाई तुम जिस गाँव से आये हो, वहाँ के लोग कैसे थे? वह उत्तर देता है कि मत पूछो वहाँ दुष्ट लोग मेरे गाँव में रहते हैं। वृद्ध कहता है कि इस गाँव के लोग भी दुष्ट ही मिलेंगे। उसी वृद्ध से दूसरा यात्री यही प्रश्न करता है। वृद्ध पुनः उससे भी वही प्रश्न करता है कि जिस गाँव से तुम आये हो वहाँ के लोग कैसे हैं? वह उत्तर देता हैः बड़े ही सज्जन साधु। वृद्ध कहता है इस गाँव में तुम्हे सज्जन साधु ही मिलेंगे।

अपनी बीती कहत हूँ, सुन लो साधु सुजान।
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान।।

9. सकल शोकदायक अभिमाना।

10. दूसरों से कुछ चाहने वाला दूसरों के अधीन हो जाता है।

11. पराधीनता सब दोषों की जननी है। ममता, कामना, आसक्ति से पराधीनता बढ़ती है। अहंकृति से पराधीनता का विस्तार होता है। मिले हुये पदार्थो को, योग्यता को, सामर्थ्य को अपना मानने से मानव पराधीन तथा ममता अहंता से वह बंध जाता है।

12. अहंकार मान की चाह में, धन की तथा सुखोपभोग की चाह में पराधीन हो जाता है।

13. अहंकार सदा भिखारी और दरिद्र बना रहता है।

14. जो अहंकार की बलि देता है, शक्ति को समर्पित देखता है। वही आत्मा अहंकार से मुक्त हो जाता है। तन्त्र साधना में अहंकार की बलि का विधान है। अब लोग बकरे की बलि चढाते हैं। अधिक अकड़ना में–में चिल्लाते रहना यही बकरे का प्रतीक है, अहंकारी अकड़ता है, बकवादी होता है।

लगी आग संसार में, झरि झरि परत अंगार।
सन्त न होते जगत में, तो जरि जात्यो संसार।।

15. नारी के भीतर गुण भी पुरूष से कई गुना अधिक प्रकट होते हैं और

क्रोध, साहस, कामना, हिंसात्मक वृत्तियाँ आदि दुर्विचार भी कई गुना अधिक तीव्रता से प्रबल होते हैं।

न कुछ हम हंस कर सीखे हैं, न हम कुछ रो कर सीखे हैं।
जो थोड़ा भी सीखे हैं, किसी के होकर सीखे हैं।

16. वह शरीर, हाथ, पैर, वाणी, सौन्दर्य, शक्ति, सम्पत्ति आदि व्यर्थ है, जो किसी अधिकारी के काम नहीं आती।

17. जहाँ दैवी शक्तियों अथवा दिव्य भावों, विचारों का स्थान नहीं रहता वहाँ दुष्ट शक्तियां अथवा दुर्विचार स्वतः घुस जाते हैं। जिस भूमि में अच्छे बीजों को नहीं बोया जाता है वहाँ कांटेदार वृक्ष अपने आप ही उग आते हैं।

18. नारी को किसी न किसी के आश्रय में रहना हितप्रद है। स्वच्छन्द विचरना संकट में डालना है, शास्त्र मर्यादा के विरूद्ध है।

19. कोई कहीं भी जाये वही संसार सभी ओर होगा और अपना ही अशान्त दोषी मन एकान्त में भी कुछ समय बाद अशान्त बनायेगा।

20. किसी व्यक्ति के विषय, में स्थान के विषय में, कल्पना का चित्र बना लेना अपनी कृति है लेकिन प्रत्यक्ष जाकर देखना कुछ और ही परिणाम लाता है।

21. जो व्यक्ति गीता की, रामायण की अथवा अपने धर्मशास्त्र की, गुरूजनों की बातें नहीं मानता, वह मन मुखी होकर भ्रष्ट ही हो जाता है।

22. जितना अधिक मान की, आदर की, प्रतिष्ठा की अथवा अपने मन की अनुकूलता की चाह प्रबल होती है उतना ही अधिक अपमान का, अनादर का, प्रतिष्ठा अथवा प्रतिकूलता का आघात दुखदाई होता है।

23. जो भलाई या बुराई बार बार दुहराई जाती है उसका अभ्यास बढ़ जाता है फिर आसानी से नहीं छूटता। अभ्यास के विपरीत अभ्यास ही करना होता है।

24. केवल गुण के अभ्यास से ही दोष का नाश नहीं होता। दान करने मात्र से लोभ नहीं मिटता। दूर चले जाने से मोह, क्रोध, अभिमान नष्ट नहीं होते।

25. अहंकार आगे होने में प्रसन्न है। प्रेम पीछे रहकर संतुष्ट है। अहंकार

जड़ वस्तु से सम्बन्धित है। प्रेम नित्य चेतन आत्मा का बोध है। अहंकार दुख में ले जाता है। प्रेम आनन्द की अनुभूति में शान्त रहता है। अहंकार मन बुद्धि को लेकर चलता है। प्रेम प्रज्ञा में ठहरकर देखता है। अहंकार शून्य होने पर प्रेमपूर्ण होता है।

परमप्रेम पूरन दोउ भाई। मन मति चित अहिमति विसराई।

दम्भी, द्रोही, स्वार्थी, वादी मानी पाँच।।

यह खल नहिन सहि सके, प्रबल प्रेम की आँच।

सबकी औषधि जगत में, खल की औषधि नाहिं।

औषधि खल में परत ही, चूर चूर हो जाहि।।

26. हमें यह समझाया गया है कि भूतकाल किसी का कितना ही खराब क्यों न हो, परन्तु वर्तमान सदा शुद्ध है।

27. संग से ईर्ष्या, द्वेषादि दोष प्रबल होते हैं परन्तु यह सदा रहने वाले अविनाशी नहीं है।

28. पाप, अपराध का आरम्भ और अन्त होता है। अन्त होने का जो क्षण है वहीं पर वर्तमान में जब कर्ता नहीं रहता तब निर्दोष तत्व, आत्मा, नित्य ज्ञान स्वरूप है, वही दृष्टा है। कर्ता अहंकार बनता है, वही दोष का दुख भोगता है।

29. भूतकाल की स्मृति और भविष्य का चिन्तन ही निर्दोष वर्तमान तत्व के योगानुभूति में, अखण्ड आनन्द में, शाश्वत शान्ति में आवरण बनता है।

30. ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधावेग, निन्दा, घृणा के विचार बादल की भांति आनन्द को ढक लेते हैं, वह ज्ञान रूपी प्रकाश से ही छिन्न भिन्न होते हैं।

31. मुझे लोग साधु, महात्मा, पूज्य मानते हैं यह उनकी साधुता है, सरलता है, पवित्रता है। मै जैसा हूँ वह मुझे ही दीखता है। मुझे सर्वज्ञ ही जानता है।

32. भगवान का निर्णय है कि तुम अपना सुधार, उद्धार जब चाहोगी तभी होगा, जो कुछ करने दोगी वही कोई कर सकेगा।

33. भगवान कहते हैं कि तुम सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ, तभी मैं तुम्हें बन्धनों से मुक्त कर सकूँगा। जब तक जीव

संसार को पकड़े रहता है तब तक भगवान को नहीं पकड़ पाता। अहंकार ही त्यागी रागी बनता है, नर्क स्वर्ग का भोगी होता है।

34. सूखे गोले में गरी ज्यों की त्यों निकल आती है। गीली गरी को निकलने में बहुत कष्ट होता है क्योंकि वह चिपटी रहती है। कुछ बने रहना ही चिपटे रहना है।

35. अपनी मान्यता, अपनी स्वीकृति ही, पराधीन बनाती है। देह को, जाति को, नाम रूप को, पद उपाधि को अपना माने रहना पराधीन रहना है।

36. भगवान के मतानुसार मोही, अहंकारी, लोभी, कामी सदुपदेश को नहीं मान सकते। मूर्खता मूढ़ता को भी नहीं पहचान पाते।

37. भागवत में **'नमोकिन्चन वित्राय'** जिनके भीतर अपना कुछ दीखता ही नहीं, अपने प्रभु को ही जो देखता है, उस अकिन्चन के प्रभु ही परमधाम है। वह सांसारिक वस्तुओं का लोभी, मोही, अभिमानी नहीं होता।

38. जिसको अपने दुख का कारण अपने दोष दीखने लगते हैं, वही द्वेष, ईर्ष्या, क्रोधादि के सन्ताप से बच पाता है।

पथिक

*****

अपने परम प्रभु की प्रेममयी आत्मा को नामरूप में स्मरण!

पढ़ने सुनने से यह जाना जाता है कि :–

1. **गुरू के वचन प्रतीति न जेही।**
सपनेहु सुलभ न सुख सिधि तेही।।
जो श्रद्धा सम्बल रहित, नहिं सन्तन कर साथ।
तिन कह मानस अगम अति, जिनहित प्रिय रघुनाथ।।

2. श्रद्धालु ही अपने मनोमय कोष में मानस का अध्ययन कर सकता है, अश्रद्धालु नहीं।

जो धन चाहे वह निर्धन है, मान चाहता है अभिमानी।
पथिक जो न कुछ चाहे जग से, बन्धन मुक्त महान वही है।।

3. जब बुद्धि किसी के व्यक्तिव की, ज्ञान की थाह नहीं पाती, तब अहंकार समर्पित होता है तभी श्रद्धा जाग्रत होती है।

4. श्रद्धा से पाप उसी प्रकार छूट जाते हैं जिस प्रकार सांप से केचुल छूट जाती है।

5. जहाँ दोष दर्शन होने लगता है वहीं से श्रद्धा निर्बल होने लगती है। शरीर सदा अपवित्र है, ज्ञान स्वरूप आत्मा नित्य शुद्ध है।

6. श्रद्धा द्वारा ही ज्ञान स्वरूप गुरू से सम्बन्ध दृढ़ होता है।

7. भगवान के सामने होने पर भी यदि श्रद्धा न हो तो तब गुरूतत्व का दर्शन नहीं होता।

8. अश्रद्धा महापाप का प्रभाव है। श्रद्धा पुण्य का प्रभाव है। अश्रद्धालु जनों को भगवान भी नहीं समझा पाये। अश्रद्धावश दोषदर्शी लोगों का विनाश हुआ है, पर ज्ञान का प्रकाश नहीं हो सका।

9. जिस समय हित के वचन सुनने के लिये श्रद्धा न हो, जिस समय मन में ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध का उद्वेग हो, जिस समय किसी के प्रति मोहासक्ति प्रबल हो, जिस समय लोभ तथा अभिमान की मात्रा अधिक बढ़ी हुई हो, उस समय सदुपदेश का प्रभाव नहीं पड़ता।

10. जो पूर्ण दुखी हो, दीन हो, जिसका श्रद्धा से अहंकार समर्पित हो रहा हो, अपनी कृतियों पर पश्चाताप हो, वही उपदेश एवं गुरू सन्देश का अधिकारी होता है।

11. मनुष्य के भीतर जो कुछ छिपा होता है वह संग से प्रकट हो जाता है। विद्वान लोग सावधान होकर उसी प्रकार अपना निरीक्षण करते हैं जिस प्रकार दर्पण में मुख देखा जाता है।

12. **'कोउ न काहू सुख दुख कर दाता।'** जीवन में सुख दुख माना हुआ है, संसार के सभी सम्बन्ध माने हुये हैं और परमात्मा से दूरी मानी हुई है। ज्ञान में जान लेने पर माने हुये सुख दुख का प्रभाव तथा सम्बन्धाशक्ति एवं परमात्मा से मानी हुयी दूरी मिट जाती है। मानना तो अन्धे मन से होता है और जानना विवेकवती बुद्धि से होता है। तमोगुणी रजोगुणी, मोहान्ध बुद्धि यथार्थ दर्शी नहीं होती।

13. **होई न विमल विवेक, उर गुरू सन किये दुराव।**

14. गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहि। आरत अधिकारी जहँ पावहि।।

15. अनन्त ऐश्वर्य, असीम माधुर्य, अनुपम सौन्दर्य निधान भगवान भी अश्रद्धालु जनों का सुधार नहीं कर सके।

16. श्रद्धावान व्यक्ति, असाधु के प्रति भी श्रद्धा रखने के कारण अपना ही सुधार देखता रहता है लेकिन अश्रद्धालु व्यक्ति साधु की संगति में भी उन्नति नहीं कर पाता।

17. मनुष्य स्वयं ही अहंकार की कठोरता के कारण अपना शत्रु है, और विनम्रता अर्थात अहंकार की सरलता के कारण अपना मित्र है।

18. जब मानव शरीर मिला है, बुद्धि में विद्या सहायक है, साथ ही गुरू सन्देश मिल रहा है, प्रभु की कृपा से सत्संग सुलभ हो रहा है

तब :—

जो न तरै भव सागर, नर समाज अस पाय।
सो कृत निन्दक मन्द मति, आत्म हनन गति जाय।।
सो परत्र दुख पावई, सिर धुनि धुनि पछताय।
कालहिं, कर्महिं, ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाय।।

19. काम, क्रोध तथा भूख के वेग को जो रोक लेता है वह धीर वीर कहा जाता है। ऐसी वीरता धीरता भी कभी न कभी साधक में आती है।

वरूण कुवेर सुरेश समीरा। रण सन्मुख धरि काहु न धीरा।।

20. नारी जीवन, रानी का जीवन, माता का जीवन, दिव्य जीवन।

काहि न पावक जारि सक, का न समुद्र समाय।
का न करै अवला प्रबल, केहि जग काल न खाय।।

21. जिमि स्वतन्त्र ह्वो विगरहि नारी।

22. नारी को स्वतंत्र विचरने के लिये श्रुति शास्त्र में विरोध है।

23. नारी जब अपने मन पर, इन्द्रियों पर, अधिकार प्राप्त कर लेती है, तब रानी हो जाती है और रानी जब निष्काम प्रेम से, शक्ति, समय, योग्यता द्वारा सेवा करते हुये अपने आप में तृप्त रहकर माता पद में प्रतिष्ठित होती है, तब सबके लिये पूज्यास्पद हो जाती है।

24. किसी आश्रम में, दूर देश में, कन्याकुमारी तथा हिमालय की गुफा में शान्ति नहीं मिल सकती। कुछ देर के लिये अशान्ति हट सकती है।

कोई साधक जहाँ जायेगा वही तन, मन, संस्कार, विचार साथ ही होंगे।

25. स्थान परिवर्तन से हृदय परिवर्तन नहीं होता। हृदय परिवर्तन से स्थान का प्रभाव नहीं पड़ता। प्रेम में ही हृदय परिवर्तन सम्भव है।

26. प्रेम में ही समस्त पुण्य बढ़ते हैं। अप्रेम में सारे पाप, अपराध बढ़ते हैं। प्रेम में ही हृदय परिवर्तन सम्भव है। राग, द्वेष रहने तक त्याग, प्रेम, पूर्ण नहीं होता है।

27. किसी न किसी प्रकार की चाह, प्रेम के ऊपर कालिमा बन जाती है। अहंकार और प्रेम का सदा विरोध रहता है।

28. अहंकार में कठोरता है, दरिद्रता है। प्रेम में कोमलता है, उदारता है। अहंकार लेने की भाषा जानता है, प्रेम देने के अवसर पकड़ता है। अहंकार जहाँ गिरता है वहीं तोड़ता है। प्रेम बरसता है और जोड़ता है। अहंकार अपने लिये और प्रेम सबके लिये जीता है। अहंकार में शोषण है, प्रेम में सेवा है। अहंकार अकड़ने में संतुष्ट है। प्रेम झुकने में प्रसन्न है। अहंकार छाया छीनता है, प्रेम छाया देता है। अहंकार फल पाकर भी असंतुष्ट है, प्रेम फल छोड़ कर तृप्त है।

पथिक

*****

परमेश्वर की नित्य चेतन स्वरूप आत्मा को स्मरण!

1. स्वामी रामतीर्थ ने कहा– कि दुनिया में ऐसा कोई स्थान नहीं हो सकता, जहाँ कुछ न कुछ अनुकूल के साथ प्रतिकूल न हो। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जिसमें अनेक गुणों के साथ कोई दोष न हों। सर्वांश निर्दोष केवल परमात्मा ही है, ऐसा सभी ज्ञानी कहते हैं।

2. अनुकूलता तभी सम्भव है, जब तुम्हारा अहंकार विनम्र, सहिष्णु, मान, महत्वाकांक्षा का त्यागी और मान दान, अधिकार दान, में पूर्ण उदार होगा।

3. दरिद्र अहंकार जहाँ रहेगा, वहीं मान के पीछे, अधिकार के पीछे, अथवा अनुराग के, राग के पीछे स्वर्ग को भी नर्क बना देगा और किसी की अपेक्षा न रह जाये, कोई कामना न रहे केवल निरभिमान पूर्वक सेवा में ही आनन्दित रहे तो मन के लिये यहीं स्वर्ग हो सकता है।

4. विवेक कहता है, प्राप्त परिस्थितियों का सदुपयोग करो। सेवा, दोषों

का त्याग और निष्काम प्रेम के द्वारा ही प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग सम्भव है, साथ ही अप्राप्त की कामना को छोड़ दो। जो नहीं मिले उसकी चाह छोड़ दो। जो मिल गया है उसमें संतुष्ट रहो। यदि शक्ति सेवा में व्यय होने लगे व आत्म साक्षात्कार अथवा भक्ति के साधन में लग जाये तब ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधादि सम्बन्धित व्यर्थ चिन्तन से मुक्ति मिल सकती है।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी आत्मन्!

ज्ञान दृष्टि खुलने पर तुम ज्ञान स्वरूप ही हो, परन्तु अपने स्वरूप के आगे देहरूप में अटके रहने के कारण जो नहीं हो, वही अपने को मानकर, अपने स्वरूप की महिमा को भूलि हुई हो। हम सभी अविद्याग्रस्त हैं, भूले ही हैं। सन्त के वाक्यों से ही हम लोग अपने बन्धन के कारण को जान सकते हैं। तुम तो विदुषी देवी हो, बहुत सरलता से समझ सकती हो। रामायण का निर्णय है कि :–

कोउ न काहु दुख सुख कर दाता।

निज कृत कर्म भोग सब भ्राता।।

इस सत्य को सुनते पढ़ते हुये भी दुखी होकर अनेक लोग अपने भीतर के लोभ, मोह, अभिमान और कामादि दोषों को न देखकर दूसरों को दोषी ठहराते हैं, दूसरों को ही कोसते हैं और अपने भीतर ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध को बढ़ाते रहते हैं। कभी कभी तो गाँव के लोग ईश्वर को ही कोसते हैं। आपने भी स्त्रियों को कहीं कहीं कहते सुना होगा कि भगवान ने हमारा यह ले लिया। कोई कोई अपने घर के लोगों को पत्नि पति को, पिता पुत्र को, पुत्र पिता को दुखदाता मानकर ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध, निन्दा, घृणा आदि पाप में से कोई न कोई पाप करते ही रहते है।

काम कोध की अग्नि में, जलत सकल संसार।

विरले बचते सन्त जन, केवल शान्ति आधार।।

धन, मान, भोग चाहने वाले तो अशान्ति से बच ही नहीं पाते, दूसरों को देने वाले ही बच पाते हैं। मनुष्य के भीतर सूक्ष्म शरीर में पशु शक्ति, राक्षसी शक्ति रहा करती है। उसी के द्वारा बहुत शक्ति नष्ट होती है। शरीर के भीतर काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष की ग्रन्थियाँ ही बहुत मोटी ओर

कहीं कहीं घटते घटते बहुत छोटी छोटी रहा करती हैं। वही ग्रन्थियाँ गर्मी पाकर आघात होने पर फूल जाती हैं, पिघलती हैं। उन ग्रन्थियों से एक प्रकार का विष निकलता है वही शरीर को विषाक्त बना देता है। जितनी बार क्रोध आता है उतनी ही बार विष एकत्रित होता है। लोभ मोह की प्रबलता में बात व्याधि बढ़ती है। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष की अधिकता में रक्त दोष, कैन्सर आदि दोष बढ़ते हैं, चर्म रोग भी होते हैं। भीतर ही भीतर स्नायु केन्द्र में गर्मी से पिघल पिघल कर विष फैलता है। सूक्ष्म शरीर के रंग भी गुण दोष के अनुसार भिन्न भिन्न काले, गहरे नीले, भूरे, मटमैले, लाल, कत्थई रंग के होते हैं और सद्‌गुण की प्रधानता में हल्के नीले, पीले, हरे, गुलाबी, सुनहले रंगो की प्रधानता होती है। दो कुत्ते क्रोध में होते हैं तब उनके थूक का परीक्षण किया गया तो विष की मात्रा बढ़ जाती है और जब दो प्रेमी प्रेम से मिलते हैं तब उनके अधरों में अमृत रस की प्रधानता होती है। धीरे धीरे या फिर विशेष सावधान रहकर दोषों से सावधान रहे तो गुण बढ़ने पर दोष घट जाते हैं। पुण्य बढ़ने पर पाप कट जाते हैं। यदि पाप बार बार बनते गये तो बढ़े हुये पुण्य एक दिन के पाप से तहस नहस हो जाते हैं। महीने भर की संचित शान्ति तीन मिनट के क्रोधावेग से बिखर जाती है। यदि वाणी का वेग न रूका तो महीनों, वर्षों और दूसरी पीढ़ियों तक शत्रुता का द्वेष, का सम्बन्ध बन जाता है। तभी तो कहा गया कि मनुष्य स्वयं ही अपने भाग्य का रचयिता है। अहंकार जब तक धन, मान, सुख का भिखारी है और दरिद्र की भांति अतृप्त है तब तक भजन, सेवा, त्याग, तप कुछ भी पूर्ण हो ही नहीं सकते। दूसरे जन्म तक पहले जन्मों के दोष प्रकट होते हैं।

संगति से बहुत सावधान रहो, जिस संगति से अशान्ति हो, दोष बढ़े, कलह, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष हो वह संगत छोड़ देना चाहिये। जिस संगति से सद्‌गुणों की वृद्धि हो, दोष घटते जायें, प्रेम निष्काम होता जाये, वही संग करना चाहिये। चलते चलते यात्रा बदल देनी चाहिये।

मुझे समझाया गया है कि जब तुम किसी की सेवा करो तो उसके बदले में मान न चाहो, प्यार न चाहो, अधिकार न चाहो, पुण्य बन जायेगा। यदि कोई बदले में कीमत ले ली, तब लोभ, मोह, अभिमान बढ़ेगा। मुझे समझाया गया है कि तुम अपनी ही कामना के कारण, पूर्ति न होने से दुखी अशान्त होते रहोगे। सन्त कहते हैं कि तुम ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध, निन्दा, घृणा के द्वारा न अपना हित साध सकोगे न दूसरों का। व्यर्थ ही समय

शक्ति बरबाद होती है। अधिकार का गर्व ही ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध करा लेता है। पाप पर विजय के लिये पुण्य बढ़ाओ। पुण्य बढ़ाने के लिये पापों से बचो। पाप प्रवृत्ति से बची हुई शक्ति पुण्य बढ़ाने में सहायक होगी। पुण्य के प्रताप से प्रेम पूर्वक सेवा करो। सेवा की कीमत न चाहो। सेवा में सुखासक्ति बाधा डालेगी। सेवा करने का, दान का गर्व न करो। गर्व होगा तभी अधिकार की मांग होगी, तभी मन की पूर्ति न होने से क्रोध आयेगा, यह तो महा दरिद्रता है, घोर पाप बन जाते हैं। दरिद्र ही पाप करता है और पाप के कारण पुनः दरिद्र होता है। हमें बताया गया है कि तुम किसी के आगे धन के लिये, मान के लिये, अधिकार के लिये, भिखारी न बनो, दरिद्र न बनो, जो पुण्य हीन है वही भिखारी दरिद्र होते हैं। पुण्यवान को बिना मांगे ही सब कुछ मिला करता है, न मिले तो समझ लो कि मैं अधिकारी नहीं हूँ। जिसका अधिकारी हूँ वह मिला है। जिससे पुण्य की रक्षा हो, आनन्द की रक्षा हो, पवित्रता की रक्षा हो, वही सद्‌बुद्धि है। जिससे सेवा का अभिमान बढ़े, लोभ बढ़े, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, कलह, निन्दा घृणा से जो न बचा सके वही दुर्बुद्धि है। हमें समझाया गया है कि कभी भूल हो जाये, पाप अपराध बन जाये उसे पुनः नहीं दुहराने के लिये सावधान रहो। आदत के कारण, असावधानी के कारण और सुखासक्ति के कारण, संयोग भोग तथा इच्छापूर्ति की आतुरता के कारण पाप अपराध बन जाते हैं। जिस संगति से दोषों का त्याग न हो, दान न हो, अभिमान, लोभ बढ़े, उसे अशुभ समझो, उसे छोड़ दो। हमें यह भी समझाया गया है कि हमारा मन ही नर्क को स्वर्ग और स्वर्ग को नर्क बना देता है। दैवी गुणों से हृदय में शीतलता बढ़ती है और ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधादि आसुरी वृत्तियों से हृदय में सन्ताप बढ़ता है। यह भी समझाया गया है कि अपने कारण किसी को दुख हो, अशान्ति हो, तो उस संग को छोड़ देना चाहिये। जिस संग से किसी में उदारता, सरलता, सहनशीलता, ज्ञान आदि सद्‌गुण बढ़े उसी की संगति करना चाहिये। मुझे जो समझाया गया है उसे तुम भी समझ सको तब बहुत हित होगा। मेरे सामने सैकड़ों व्यक्ति हैं वह अपने प्रेम के कारण, अपनी उदारता के कारण सन्तुष्ट हैं, प्रसन्न हैं, सेवापरायण हैं परन्तु जिसमें नम्रता, उदारता, सहिष्णुता एवं प्रेम की और निष्कामता की कमी है वही अशान्त दुखी हो जाते हैं। मैं किसी को कुछ दे नहीं सकता, ज्ञान में दिखाना चाहता हूँ परन्तु सब एक समान दृष्टि वाले नहीं है।

पथिक

*****

नाम रूप में प्रकाशित परम प्रेमास्पद परमात्मदेव को प्रणाम।

यह तो आप भी मानती होगी कि मनुष्य में जो मन है यह लाखों जन्मों पुराना है। मन के भीतर जन्मान्तरों के पशु देहों के संस्कार हैं। वही मानवता के विकास एवं दिव्यता के अवतरण में बाधक बनते हैं। गीता के निर्णयानुसार मनुष्य का मन शत्रुवत और मित्रवत काम करता है। हम में, आप में, अनेकों जन्मों की यात्रा से बुद्धि इतनी विकसित हो गयी है कि अपना निरीक्षण स्वयं कर सकते हैं। हम और आप स्वयं ही अपने नेता और गुरू हो सकते हैं। स्वतंत्रता का यही अर्थ है कि हम और आप जैसे पापी या पुण्यवान होना चाहें वैसे हो सकते हैं, हो रहे हैं। विवेक के आदर की आवश्यकता है। मनुष्य के मन में ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधादि विकार जितनी अधिक देर ठहरते हैं उतना भीतर विष की ग्रन्थियाँ बनती जाती हैं,वही शरीर को रोगी बना देती हैं। मानसविद् परिणामदर्शी जनों ने तो मोह की, लोभ की, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधादि की प्रबलता में भिन्न भिन्न रोगों का भी निर्णय दे दिया है और वह यथार्थ देखा जाता है। बाराबंकी में सीतापुर के एक भक्त बता रहे थे कि उनके भाई साठ साल से रोग ग्रस्त हैं, वे मेरे सर्वप्रथम श्रद्वालु थे, जैसे जैसे श्रद्वालु बढ़ते गये उनके अधिकार में हिस्सा बटांने लगे, उनके मन में ईर्ष्या बढ़ने लगी, बीच बीच में बहुत उत्तेजित होते रहे। फिर शान्त होते रहे लम्बी कथा है। पाली भी प्रति वर्ष जाते रहे हैं।

कुछ श्रद्धा, कुछ दुष्टता, कुछ संशय, कुछ ज्ञान।
घर का रहा न घाट का, ज्यों धोबी का श्वान।।

कवि ने ठीक कहा है कि मनोविकार के कारण उनकी बीमारी इतनी बढ़ गई कि दो तीन साल से विस्तर में पड़े रहते हैं, अब तो बहुत ही दुर्दशा है, बहुत दुखी हैं, पश्चाताप भी करते हैं। एक दिन तुलसीराम अपनी तरफ से उन्हें देखने गये बेचारे पैरों में गिरकर रोने लगे। एक सन्त के वाक्य मुझे स्मरण हैं कि अपने द्वारा यदि अपराध बना है तो क्षमा मांग लो, इससे क्षमा याचक संघर्ष से बच जाता है और क्षमा करने वाला भयानक हिंसात्मक प्रवृत्तियों से बच जाता है। अब सावधान हो जाओ, अपने में ही इस महात्मा के होने का विश्वास करो इसी महात्मा की शरण लो। अब कहीं बाहर न भटको। इस देह रूपी मन्दिर में हृदय सिंहासन में, इस नित्य, शुद्ध, बुद्ध, चेतन स्वरूप महात्मा का वास स्थान है, इसी में श्रद्धा, प्रेम, दृढ़ करो, प्रतीक्षा करो, उसकी दया, कृपा का अनुभव होगा। गीता रामायण उपनिषदों में यही संकेत है। हम और आप असत् को जानते हैं परन्तु असत् का त्याग नहीं कर पाते, फिर भी अपने को सत्संगी मानते हैं। अपने हाथ, पैर तथा इन्द्रियों पर, मन पर अधिकार नहीं है, यह जानते हुये भी दूसरों पर अपना अधिकार

जमाते हैं, इस मूर्खता को अब देख रहे हैं।

यदि अपना अधिकार न मानते तो हमें क्रोध आता ही नहीं। क्रोध रहित होने पर ही अपने कर्तव्य की, स्वरूप की एवं अपने प्रभु की स्मृति रहती है। हमने आपने कितनी बार सुना है, पढ़ा है कि वस्तु व्यक्ति को सुख दाता न मानो, तभी राग का नाश होगा, जब राग न रहे तभी द्वेष न होगा। राग–द्वेष न रहने पर ही त्याग, प्रेम की पूर्णता होती है, परन्तु हम रागी द्वेषी बन रहे हैं। सत्संग में लेश मात्र का श्रम नहीं है फिर भी हम असत् संगी बने हुये हैं।

हमें और आपको विचार करना चाहिये कि हम अशान्त क्यों है?दुखी क्यों है?क्योंकि ममता, आसक्ति, कामना से बुद्धि अन्धी हो रही है। हम सभी को धन, भूमि, सामान भले ही न दे सकें परन्तु प्रेम तो दे ही सकते हैं। यह तभी सम्भव है जब किसी को दुखदाता न माने। दुखदाता मानते ही, हम अन्धे बहरे की भांति गरजने, बरसने लगते हैं। हमें और आपको यह स्मरण रखना चाहिये :–

1. जीवन में जो कुछ मिला है वह अपना नहीं है।
2. सुख या दुख देने वाला दूसरा कोई नहीं है।
3. आसक्ति, कामना का त्याग ही विवेक का आदर है।
4. हम सबका वर्तमान विकास के लिये है चाहे सुखमय है या दुखमय। अनेक लोग हमें मान देते हैं, इससे पुण्य घटते हैं। कोई हमारा अपमान करता है, तब पाप घटते हैं। काम, क्रोधादि से जीव का नाश नहीं होता, बुद्धि नष्ट होने पर नाश होता है, यही गीता का मत है। हमारी आपकी बुद्धि शुद्ध रहे, यही आत्म देव से प्रार्थना है।

पथिक

*****

नित्यानन्द स्वरूप परमात्मा के अविनाशी नित्य चेतन स्वरूप अंश को प्रिय नाम रूप में स्मरण।

हमें स्मरण ही नहीं था कि जीवन की जब यात्रा का आरम्भ हुआ था, तब स्वंय से हुआ था, अब स्मरण रखना है कि यात्रा का अन्त जब होगा तब जीवन के परमाश्रय में ही होगा। संसार में कभी भी, कहीं भी विश्राम नहीं मिलेगा, परम में ही परम विश्राम मिलेगा।

जो दुख को स्वीकार कर ले, उसे कैसे कोई दुख देगा। जो गाली

को स्वीकार कर लेगा उसका अपमान कौन कर सकेगा। जो हार को स्वीकार कर लेगा, उसे कौन हरा पायेगा? जो अशान्ति को स्वीकार करेगा, उसे शान्ति का प्रयत्न न करना होगा। स्वीकृति ही नियति का आदेश है। अस्वीकृति नियति अर्थात् भगवद्विधान का विरोध है।

रंग महफिल जमा गया कोई, बात बिगडी बना गया कोई।
रस्में उलफत सिखा गया कोई, बज्में हस्ती बिछा गया कोई।।
या खुदा मस्त मस्त नजरों से, जो न पी थी पिला गया कोई।
तकयामत किसी तरह न बुझे, आग ऐसी लगा गया कोई।।
दिल की बस्ती उजाड़ सी क्यों है, क्या यहाँ से चला गया कोई।
बाद मुद्दत गले लगा के मुझे, हँसते हँसते रूला गया कोई।।

तुम्हें श्रुति वाक्यों का स्मरण दिला रहा हूँ।

याज्ञवलक्य उपनिषद में बताया गया है कि कोई पति हो, पिता हो, बन्धु हो, या पत्नि हो, पुत्र हो, गुरू हो या शिष्य हो, कोई भी किसी को चाहता है उसके लिये नहीं चाहता। पत्नी अपने लिये ही पति को चाहती है। माता पिता अपने लिये ही संतान को चाहते हैं। तुम किसी को आदर, प्रीति करती हो तो अपनी ही तृप्ति संतुष्टि के लिये करती हो। तुम्हें कोई चाहता है तो अपने लिये ही चाहता है, वह तुम्हारे लिये तुम्हें नहीं चाहता, जिसे तुमसे कुछ नहीं चाहिये वह तुम्हारा त्याग बहुत सरलता से कर देगा। जिससे तुम कुछ नहीं चाहती हो, उसका त्याग तुम बहुत आसानी से कर दोगी। यदि किसी का त्याग करने में तुम्हें कठिनाई है, तब तो तुम्हारे मन में अवश्य ही कोई चाह होना ही चाहिये। तुम्हें कुछ न कुछ सेवा करने की कामना है, कभी कुछ दान करने का उत्साह है, यदि कुछ भी चाह होती है तभी उसकी पूर्ति से सुख होता है और आपूर्ति से दुख होता है। तुम व्यर्थ ही किसी व्यक्ति के कारण अशान्त दुखी होती हो, यह अविवेक है। तुम तो अपने सम्बन्धितजनों को यथोचित बहुत कुछ दे सकती हो। देने के अवसर खोजते रहना चाहिये। कुछ पाने की, कुछ लेने की अर्थात् किसी के द्वारा मान पाने की अथवा मन की रूचि पूर्ति करने की आशा ही छोड़ देनी चाहिये।

तुम दक्षिण, उत्तर, पश्चिम जाओगी इससे पुण्य क्षीण होंगे, पैदल चल कर जाओ, तब तपस्या होगी। जो रेल में खर्च होगा, वह गरीब दुखी

की सेवा में लगा दो, इससे पुण्य बढ़ेगा। खर्च कर दोगी, तब पुण्य घट जायेगा, अशान्ति नहीं मिटेगी। ज्ञान में परिणाम देखो। जिस समय से, शक्ति से, सम्पत्ति से सेवा बन जाये, वही सार्थक है। सेवा न बनकर मन की इच्छा पूर्ति में सब निरर्थक है। मन ऊबे तो ऊबने दो, घुटने दो, शरीर को कष्ट होता है तब भोगना ही पड़ता है, भोग से भागते ही कष्ट दूर हो जाता है। मन की पूर्ति न करो, इसे सूखने दो। इच्छाओं की निवृत्ति से शान्ति मिलती है, पूर्ति से नहीं मिलती। दूसरों की पूर्ति कर दो, जो धर्मयुक्त हो। अपनी पूर्ति न चाहो। अभी तक जो पूर्ति हुई उसमें शक्ति, सम्पत्ति घटी, मिला कुछ नहीं। अहंकार का पक्ष न लो। इसका अपमान होने दो, इसकी दरिद्रता बनी ही रहेगी। तुम प्रेम से, ज्ञान से, गुणों से, तृप्त रहो। धन से, मान से, भोग से, तृप्ति से आशा न करो। भीड़ है, समय निकाल कर जल्दी में लिख रहा हूँ, ज्ञान रूप में अभी तुमसे मिला हूँ। शरीर से कभी योग नहीं होता, भोग ही होता है। आत्मा में ही प्रेम हो, तृप्ति हो, संतुष्टि हो, यह भगवान का आदेश है।

पथिक

*****

परम प्रियतम परमात्मा की स्नेहमयी आत्मा को स्मरण !

तुमने अपने मन के उद्वेग को रोक कर वहीं रहने का निश्चय किया है, यह बहुत ही शुभ है। समय व शक्ति को व्यर्थ भ्रमण में, व्यर्थ चिन्तन में, व्यर्थ वार्ता में, तथा क्रोधादि वेगों में नष्ट करना अपने प्रति शत्रुता है और सेवा में, स्वाध्याय में, परमात्मा के स्मरण में सार्थक करना अपने प्रति मित्रता है।

हम लोग इस शरीर में अकेले नहीं रहते, पहले जन्मों में जिन जीवों की सेवा बाकी है और जिन जीवों को सताया है उनके अधिकार का हनन किया है, जिन पशुओं को मारा है जिन्हें भूखे प्यासे रखकर काम लिया है वे भी सूक्ष्म देह से अपना बदला लेते हैं और देते हैं। हमारे भीतर इन्हीं सम्बन्धों के कारण कभी पशु वृत्तियाँ, कभी आसुरी तथा कभी दैवी वृत्तियाँ प्रबल होकर शुभ और कभी अशुभ कार्य की प्रेरक बनती हैं। इसीलिये भगवान ने साधकों को सावधान किया है कि अपने सन्चित पुण्यों को कामनाओं की पूर्ति में नष्ट न करो और नवीन पुण्यों को बढ़ाते चलो। इसी प्रकार पहले के पापों को प्रतिकूलताओं के रूप में प्रकट होने पर भोग

कर नष्ट कर दो लेकिन नये पापों को बढ़ने मत दो। अनुकूलता के भोग से पुण्य नष्ट होते हैं, प्रतिकूलता के भोग से पाप नष्ट होते हैं। दूसरों को धर्म, मर्यादापूर्वक अनुकूलता का संयोग देते रहने से पुण्य बढ़ते हैं और प्रतिकूलता बढ़ाते हुये कष्ट पहुँचाते रहने पर पाप बढ़ते हैं। अपने सुख के लिये मनुष्य हो या पशु, पक्षी को भी कष्ट न देना चाहिये।

विवेकी साधक को सावधान रहकर पुण्य से सुलभ अनुकूलता का भोग भी निर्वाह मात्र के लिये करना चाहिये। जिस अनुकूलता के लिये क्रोध, कलह, हिंसा करनी पड़े उसका पक्ष ही छोड़ देना चाहिये। एक व्यक्ति का बीड़ी पीना हमारे प्रतिकूल है, हमें उसे मना न करके स्वयं ही उठ जाना चाहिये, उसे उठाने के लिये संघर्ष नहीं करना चाहिये। लेकिन जब कोई मेरे सामान को लेकर भागना चाहता हो तब अवश्य समय शक्ति की अनुकूलता देखकर विरोध करना अधर्म नहीं है। लेकिन जब कोई चोरी कर ले जाये तब अपने हिस्से का न मानकर सन्तोष करना चाहिये और इतना सामान धन संग्रह न करना चाहिये जिसकी कमी से दूसरे श्रमी जन दुखी होते रहते हैं। तुम अपने दोषों को देख रही हो, इसलिये शान्त हो, विनम्र हो, जब दूसरों के दोषों को देखती हो, तब अशान्त हो जाती हो। दुखी होने पर अपने ही भीतर प्रकट होने वाले लोभ, मोह, अभिमान, काम को देखना चाहिये, क्योंकि इन्हीं दोषों के कारण हानि का, अपमान का, वियोग का, अभाव का, कष्ट होता है, और तभी ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधादि, विकारों का विष बढ़कर बुद्धि को आच्छादित कर देता है। अपने भीतर अहंकार के दोषों को देखना और दूसरों के भीतर जो गुण दीखें उन्हें भगवान के गुण समझ कर अपने भीतर भगवान के दिव्य गुणों को बढ़ाना बहुत ही शुभ है।

हम लोगो को जिस अवसर पर कोध आता है उसी समय क्षमा का आश्रय लिया जा सकता है। जिस प्रसंग पर ईर्ष्या, द्वेष प्रबल होते हैं उसी समय विनम्रतापूर्वक करूणा, प्रेम, सहिष्णुता का आश्रय लेकर शान्ति पूर्वक कर्तव्य का निर्णय लिया जा सकता है। प्रेम से ही अहंकार की कठोरता पिघलती है, नम्रता में ही सहिष्णुता बढ़ती है। श्रद्धा में ही ज्ञान को अनावृत्त किया जा सकता है। शुभ सुन्दर के दान से ही पुण्य बढ़ाये जा सकते हैं। ईर्ष्या, द्वेष कलह, क्रोध, निन्दा घृणा से पाप बढ़ते हैं।

जिस शक्ति, जिस वाणी से, जिस लोभी, मोही, कामी, अभिमानी

मन से पाप बढ़ते हैं, उसी उदार विवेकी, विनम्र, श्रद्धालु मन से पुण्य ही पुण्य बढ़ते हैं। जो अपना शत्रु है वह पाप बढ़ाता है, पुण्य घटाता है। जो अपना मित्र होता है वह पाप घटाता है, पुण्य बढ़ाता है। तुम अपने मित्र होकर सन्तोष, सहिष्णुता, नम्रता, उदारता, प्रसन्नता, श्रद्धा, विवेक का ही आश्रय लिये रहो। किसी को अपना शत्रु न मानो, विरोधी न मानो, दुखदाता न मानो। जब कभी पशुवृत्ति भीतर आक्रमण करे तब नम्र होकर उसे स्वीकार कर लो, कह दो कि आओ तुम्हारा स्वागत है। तुम मेरे ऊपर जो आघात करना हो कर लो, दुख देना हो, दे दो, परन्तु तुम सदा नहीं रह सकते। कुछ ही समय तक तुम्हारा प्रभाव रह सकता है, तुम शाश्वत् नहीं हो, अविनाशी नहीं हो।

समस्त पाप अज्ञान में अहंकार द्वारा बनते हैं। अज्ञान में ही अहंकार लोभी तथा सुखासक्त और प्रतिकूलता में क्रोधी बनता है। अपने स्वरूप को न जानकर देह के रूप को अपना रूप मानते रहना अज्ञान है। अज्ञानी को दान के तथा तप के एवं सेवा के बदले में चाहे जितना धन, मान, भोग, सुखों की अनुकूलता मिलती रहे फिर भी शान्ति सुलभ न होगी। ज्ञान से सत–असत् अथवा पदार्थ और परमात्मा को जानकर पदार्थों से विरक्त और परमात्मा में ही पूर्ण अनुरक्त रहे बिना दुख नहीं मिटेंगे। सुख तो मिलेगा परन्तु उसका अन्त दुख में ही होगा। आप लोंगो को अशान्ति मिटाने के लिये, आनन्द की अनुभूति के लिये, घर, भूमि, आदि कुछ नहीं छोड़ना होगा। अहंता, ममता, आसक्ति, कामना, छोड़ने के लिये केवल अपना मानना छोड़ना होता है। जो कुछ मिला है या आगे मिलेगा, वह कुछ भी अपना नहीं है, आगे भी अपना नहीं हो सकेगा। जो कुछ साथ है वह ऐसे दाता का है कि उसने दिया है पर अपने को प्रकट नहीं किया, इसीलिये जो कुछ मिला है उसका मालिक न दीखने के कारण अपना ही मालूम होता है।

आप लोगो की समझ ठीक होगी, तब अपना कुछ दीखेगा ही नहीं, जिसका कोई मालिक पहले से ही मौजूद है उसके मालिक आप लोग बनेंगे ही नहीं। तब दाता प्रभु से ही आत्मीयता होगी। जो जिज्ञासु ज्ञान में देखने लगता है वह यही मनन करता है कि जो कुछ भी संसार में मिला है वह अपना नहीं है सब कुछ परम प्रभु का ही है। वह अपना प्रभु स्वयं आनन्दमय है, शान्तिमय है, पूर्ण ज्ञान तथा पूर्ण प्रेममय है। तब हमें अब कुछ भी नहीं चाहिये, हम उसी प्रभु के हैं। यह सारा संसार प्रभु का ही है।

उमा जे राम चरण रत, विगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, कासन करहिं विरोध

आप लोग जब तक ज्ञान विवेक में नहीं जागेंगे, तब तक मोह, लोभ, अभिमान, नहीं मिटेगा और इनके मिटे बिना दुख का, अशान्ति का, बन्धनों का, भय एवं चिन्ता का अन्त नहीं होगा, कुछ दिनों में ही शक्ति घटने लगेगी, बुढ़ापा आ जायेगा, तब जिसको पाकर वाह वाह निकलती है उसी की आसाक्ति हाय हाय करायेगी। इसीलिए भीतर ज्ञान शक्ति को जगाते बढ़ाते हुये जीवन का सुन्दर निर्माण करो।

मनुष्य में जितनी अधिक बौद्धिक जड़ता होती है उतनी ही असत् अनित्य पदार्थों में ममता होती है। अपनी स्वीकृति तथा मान्यता ही बन्धन का हेतु है। मन से मान लेना बालक के लिये सरल है, लेकिन माने हुये को यथार्थ में जान लेना आप लोंगो के लिये कठिन है। जान लो कि सदा रहने वाला क्या है?सदा न रहने वाला अनित्य विनाशी क्या क्या है। यदि पथिक आप लोंगो के मध्य में आ जाता तो यही सब कहता। सुन सुनकर अपने को जानना है। ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध, मोह, लोभ, अभिमान से बचकर सेवा द्वारा दोषों का त्याग करके प्रेम को निष्काम कर लेना ही साधना की सिद्धि है।

पथिक

*****

भिन्न भिन्न नाम रूपों में अपने जीवन में पूर्णता चाहने वाली श्रद्धालु भक्तों को अपने सन्तोष के लिये सादर स्मरण करते हुये सभी में अविनाशी परमात्मा को नमस्कार है !

इस पथिक ने इतना अधिक लिख दिया है पुस्तकों में, जिसे जिज्ञासु जन ध्यान देकर पढ़ नहीं पाते और इस पथिक का सन्देश निर्देश पढ़ने की अपेक्षा, इसके द्वारा सुनने का मूल्य अधिक बढ़ाते हैं। करोड़ों व्यक्ति देखे हुये को तथा सुने हुये को मन से पकड़ लेने के अभ्यासी बने हुये हैं, लेकिन बुद्धि से विचारपूर्वक पकड़े हुये मिथ्या नाम रूपों को तथा

ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुखराशी।
अपने सुख स्वरूप का निरन्तर स्मरण रखना स्वधर्म है।
स्वयं में ठहरो। संसार को स्वप्नवत् समझो।

माने हुये सुख अथवा प्रतीत होने वाले सम्बन्धित पदार्थों एवं सम्बन्धियों को देख नहीं पाते। जीवन भर मिली हुई देहों को तथा वस्तुओं को प्रेम में भरकर मोही, लोभी बने रहकर अन्त में संसार के पदार्थों को लेकर नहीं बल्कि लोभ, मोह, अभिमान को साथ लेकर दूसरे जन्म के लिये यात्रा करते हैं। अब देख सको तो आप लोग अपने को देखो जिस वस्तु को, व्यक्ति को, देह को अपनी मानती हो, उस पर स्वतंत्र अधिकार नहीं है। तुम सदा कुछ भी अपने साथ रख न सकोगी और न सदा किसी के साथ रह सकोगी। जिसके साथ सुख मान रही हो उसी के पीछे दुखी होना पड़ेगा। सुख चाहते हुये भी छिन जायेगा और दुख न चाहते हुये भी आ ही जायेगा। मानने की आदत पड़ चुकी है उसके विपरीत अभ्यास दृढ़ करना होगा। जो लोभ या क्रोध अथवा अभिमान जितनी बार दुहराया जाता है उतना ही अभ्यास बढ़ जाता है। जो लोग क्षमा को, नम्रता को, मान को अथवा धन को, वस्तु को दान को बार बार दुहराते है उन्हें उसी की आदत बन जाती है।

आप लोग विदुषी हो इसलिये प्रत्येक कृत्य पर विचार करो, उसके तात्कालिक प्रभाव को देखो और दृष्टि से उसके आने वाले परिणाम को देखो। आप लोग अपने मित्र हो तो उन कृत्यों को न दुहराओ जिनसे कि अशान्त, दुखी होती हो। दुखी होकर अपने भीतर रहने वाले दुखदाता दोष को जानो, किसी अन्य को दुखदाता मानने की मूर्खता करके शत्रु न बनो। अपना मित्र बने रहना बहुत बड़ी घटना है, सर्वोपरि सफलता है। जो अपने से दुखी होकर दूसरों को दुखदाता मानता है वह महामूर्ख है। धनमद, रूपमद, जवानी का मद, विद्या का मद, पदाधिकार का मद, मनुष्य की बुद्धि को मूर्क्षित कर देता है। मूर्छित बुद्धि वाला मूर्ख सदा अहंकार को ही पुष्ट करता है, मोही, लोभी, अभिमानी सदा सुख का कामी बना रहता है। आप लोग इस दरिद्र भिखारी अहंकार को ज्ञान में देख सको तो विद्या सार्थक हो जाये। भगवान कृष्ण का निर्णय है कि जो अहंकार अपने ज्ञान के गर्व में किसी गुरू सन्देश को नहीं सुनता, समझता, उसे ही विनाश का दुख भोगना पड़ता है।

यदि आप सांसारिक सुखोपभोग ही चाहती हो, इसके लिये धन, संयोग, सम्मान पद, अधिकार की तृष्णा प्रबल है। तब सजग रहकर प्राप्त शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता के द्वारा दूसरों की सेवा करते हुये अधिक से अधिक पुण्य बढ़ाती जाओ, सदा पाप से बचती रहो। अपने मन के अनुसार सुखी रहने के लिये दूसरों को दुख पहुँचाना पाप है। जिससे लोभ, मोह, अभिमान, ईर्ष्या कलह, क्रोध बढ़े वही पाप है। जिससे सद्‌गुणों की वृद्धि

हो, वही पुण्य है। लाखों विद्वान, विदुषी विद्या द्वारा पाप से नहीं बच पाते और पुण्यों का उपार्जन करने में प्रमादी बने रहते हैं, वही अन्त में घोर अशान्त होते हैं। आप लोग भले ही मन्दिरों मे, तीर्थों में, दर्शन पूजा पाठ करती रहो, लेकिन अपने व्यवहार क्षेत्र मे यदि पाप से न बच पाई और पुण्यों का संचय न कर सकी तो याद रखना अशान्ति से, दुखों से मुक्त होना सम्भव न होगा, समस्त पापों से बचते रहना और पुण्यों का सन्चय करना सभी सन्त महात्माओं की शिक्षा है। तन से पाप, वाणी से पाप, और मन से पाप प्रायः बनते ही रहते हैं।

प्रायः प्रत्येक मानव परस्पर एक दूसरे से कभी धन चाहता है, कभी किसी प्रकार की मनोभिलिषित सुखद सामग्री चाहता है, कभी मान, प्यार अथवा अधिकार चाहता है, कभी समीप रह कर सेवा करना चाहता है या कभी सेवा लेना चाहता है। इस प्रकार जब कभी चाह की पूर्ति नहीं होती तभी दुखी होता है और जब मनोकामना की पूर्ति में किसी को बाधक देखता है तभी ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, प्रतिस्पर्धा से अशान्त सन्तापित होता है। जिस संग से दोष बढ़ते जायें वह संग त्याग देना है। जिस संग से अपने दोषों के त्याग की युक्तियाँ मिलती हों, वह संग करते रहना चाहिये।

सम्यक दर्शी सन्त कहते हैं कि कोई अन्य न सुखदाता है, न दुखदाता है। अपने अपने कर्मों का फल, भोग सामने आता है उसी में अज्ञानी कहीं सुख और कहीं दुख मान लेता है। मान लेने से सुखदाता के प्रति रागी व मोही बनता है और दुखदाता मानकर द्वेषी बनता है। यह राग–द्वेष ही सभी बुराईयों का तथा अनर्थ का मूल है। इसी का त्याग और सत्य से प्रेम सभी भलाई का मूल है। अहंकार की कठोरता प्रेम से ही पिघलती है, गलती है। अप्रेम की परिधि में ही किसी भी दोष का आधिपत्य रहा करता है। अहंकार भले ही स्वीकार न करे, प्रसन्न रहो, स्वस्थ्य होकर विचारो, तुम्ही महात्मा हो।

पथिक

*****

मैं हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ।
हम हैं, हम हैं अहं आत्मा यही मनन करो।।
कोई नाम रूप बीच में आये तो हटा दो,
आकार हटा देने से अहं, ज्ञान स्वरूप, नित्य मुक्त है।

परमात्मने नमः !

तुम अपना अध्ययन करो। विद्या का दुरूपयोग न करके सत्य के लिये उपयोग करो।

1. तमोगुण की अधिकता से आलस्य की, क्रोध की, ईर्ष्या, द्वेष की प्रबलता रहती है। रजोगुण की अधिकता में इच्छा, कामना तृष्णा प्रबल रहती है।
2. तुम में इच्छा की प्रबलता है, यह रजोगुण की प्रबलता है। रजोगुणी शक्ति, कामना की पूर्ति में व्यय होती है यदि बाधा पड़ती है तब क्रोध प्रबल होता है उसमें शक्ति नष्ट होती है।
3. यदि यह रजोगुणी शक्ति सेवा में लग जाये तब पुण्य बढ़ जाये और सतोगुण प्रबल हो जायें।
4. यदि तुम अपने मन की पूर्ति करोगी तो पुण्य घटते जायेंगे। संचित पुण्यों से ही तुम्हारे मन की पूर्ति होती है। जब इच्छा पूर्ति में बाधा पड़े तब समझना कि पुण्य रूपी पूंजी सहायक नहीं है। तुम्हारे पास जब तक धन है, तब तक बाजार से इच्छानुसार सामान खरीद सकती हो, लेकिन कुछ ऐसा सामान भी हो सकता है जिसकी कीमत तुम नहीं दे सकती हो।
5. जो संकल्प या कामना पूर्ति में बाधा या अड़चने आयें उसे छोड़ देना विवेकी की सामर्थ्य है। पुण्य का संचय करने से वह कामना भी पूरी होगी जो पुण्य की कमी से पूर्ण नहीं होती थी।
6. तुम्हें जो अनुकूलता मिली है वह लाखों लोंगो को नहीं मिली है। जो शक्ति व सम्पत्ति सुलभ है वह किसी जन्म में की गई सेवा का, दान का, तप का फल है। जो सुलभ नहीं है उसके लिये तुम न अपने को कोसो न ही उसके लिये तरसो या कलपो, बल्कि प्राप्त शक्ति सम्पत्ति का भोग न करके दूसरों का दुख हटाओ ऐसा करने से पुण्य बढेंगे, उन्ही पुण्यों से अनायास ही वह मिलेगा जो अभी प्रयत्न करने पर नहीं मिल रहा है।
7. तुम अज्ञानवश दुखी होती हो, जब दूसरों से कुछ मान, प्यार, अधिकार पाने की इच्छा करती हो। यदि तुम किसी से कुछ आशा न करो, कुछ न चाहो, अपने मन की अनुकूलता न चाहो तब तुम्हें अशान्ति अथवा दुख हो ही नहीं सकता।

8. तुम्हारे घर में एक कुत्ता भोजन मात्र पाकर पैर फैलाकर सुख से सो सकता है क्योंकि तुम्हारी तरह कामना नहीं करता। तुम भोजन, वस्त्र, धन, भवन के होने पर भी दुखी अशान्त होती हो, क्योंकि कुछ चाहती हो।

9. मन की दरिद्रता को, अहंकार की दरिद्रता को देखो, जो दुखी अशान्त हो जाता है। क्योंकि कभी मान चाहता है, या छोटी छोटी इच्छाओं की पूर्ति में सुख चाहता है। उसमें किसी के द्वारा बाधा पड़ती है या कोई कुछ कह देता है, तब एक व्यक्ति की बात मन में लेकर तुम दुखी अशान्त हो जाती हो।

10. तुम अपने मन के पाप से दुखी होती हो और नये पाप बढ़ा लेती हो।

11. लेकिन तुम सावधान होकर संचित पुण्यों को इच्छा पूर्ति के लिये अथवा दूसरों से मान, प्यार, अधिकार पाने के लिये नष्ट न करो।

12. संचित पापों से जो भी प्रतिकूलता आये उसे सहकर भोग डालो नये पाप न बढ़ने दो।

13. तुम प्राप्त पुण्य से अर्थात प्राप्त सम्पत्ति, शक्ति, योग्यता द्वारा अपनी पूर्ति करोगी तब पुण्य नष्ट होते जायेंगे। लेकिन प्राप्त सम्पत्ति, शक्ति, योग्यता द्वारा किसी का दुख हटाओगी तो पुण्य बढ़ जायेंगे। विचार करके तुम देख सकती हो, जिस समय तुम अपने अहंकार के दोष देखती हो तब कितनी सुन्दर, विनम्रता, सरलता, मधुरता से चारों ओर शीतलता का प्रसार होता है। जब तुम्हारा अहंकार ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधावेश से भरा होता है तब तुम तो सन्तापित होती ही हो बल्कि चारों तरफ तपन भी बढ़ जाती है। ऐसा सन्ताप से झुलसा हुआ व्यक्तित्व किसी को भी नहीं भाता।

14. तुम प्राप्त शक्ति से यही संकल्प करो कि जब कभी पशुशक्ति अपने हृदय पर आक्रमण करेगी तब उस समय किसी को मुख न दिखाकर एकान्त में रहना है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध के आक्रमण में स्वयं को देखो, उस समय दूसरों को न देखो। तुम्हारे साथ परमात्मा की शक्ति है। उससे शुभ सुन्दर संकल्प करो, अशुभ संकल्प न करो। तुम दूसरों के दोष न देखो, उनके दोष उन्हें ही तपायेंगे, जैसे तुम्हारे दोष तुम्हें तपाते हैं। अपने दोष तुम दूर कर सकती हो, मैं तुम्हारे दोषों को दूर नहीं कर सकता और तभी कोई दोष दूर कर सकता है, जब तुम करने दो।

भगवान अर्जुन से कहते हैं तुम सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण आ जाओ, तब मैं तुम्हें सब बन्धनों से मुक्त कर दूँगा। अर्जुन शरणागत होकर कहते हैं कि अब मोह दूर हो गया, स्मृति प्राप्त हो रही है, अब आप जो कह रहे हैं वही करूँगा। तुम यदि अभी से गुरू आज्ञानुसार ही सब कुछ करो, तब तो तुम्हारा कल्याण निश्चित है। गुरू आज्ञा वही है जहाँ कोई मांग नहीं है। गुरू आज्ञा से धन न देना होगा, दान अवश्य देना होगा। तन न देना होगा लेकिन सेवा में तन लगाना होगा। भूमि भवन न देना होगा लेकिन लोभ छोड़कर ममता रहित होना पड़ेगा। मन के द्वारा किसी गुरू की कामना पूर्ति नहीं करनी होगी लेकिन अपनी कामना पूर्ति का पक्ष छोड़ना होगा। गुरू आज्ञा, क्रोध, काम, अभिमान, छोड़ देने की नही होगी, बल्कि क्रोध, लोभ, अभिमान आदि विकार उमड़ जाता है इसलिये इन विकारों को छोड़ देना तुम्हारे वश में नहीं है, लेकिन इन विकारों के प्रबल होने पर तद्नुसार कर्म न करने की आज्ञा है। क्रोध उमड़े तब उससे प्रेरित होकर किसी के साथ कर्म न करो। यही देखो कि यह क्रोधादि विकार अपने से क्या कराना चाहता है? क्रोध, लोभ, अभिमान से प्रेरित होकर दूसरों के साथ कुछ न करो, अपने शरीर के साथ भी कुछ न करो, केवल देखती रहो कि क्या क्यों कराना चाहता है। देखते रहने से कुछ देर बाद या कुछ घण्टे बाद वही विलीन हो जायेगा।

अकेले नारी शरीर को घूमना निरापद नहीं है। एकाकी तो सम्बन्धी पुरूषों के बीच में भी नहीं रहना चाहिये, क्योंकि आसुरी आक्रमण की सम्भावना रहती है। मुझे अनेक घरों की घटनायें विदित हैं। नारी के लिये पुरूषों का संग असत संगी बना देता है। जिस नारी को काई पुरूष दीखता ही न हो जो अपने को नारी मानती ही न हो, उसे कहीं खतरा नहीं है। जो नारी नाम रूप के अभिमान से ऊपर आत्मा होगी उसमें कहीं जाने के संकल्प ही न होंगे, कोई इच्छा कामना न होगी। उसमें अपने आनन्द से तृप्त आत्मा द्वारा स्वयं चारों ओर प्रेम की सुगन्ध प्रसारित होती रहेगी।

तुम मन की प्रतिकूलता को सहन करो, बाहर दुख सहने की जगह भीतर मन की प्रतिकूलता को सह लो, यह तप तुम्हारे प्रतिकूल कर्मों को नष्ट करेगा, सहना तो पड़ेगा ही। बाहर सहने से पाप होगा, कहने से पाप होगा, घर में सहने से तप होगा। किसी क्रोधी, ईर्ष्यालु, द्वेषी, अभिमानी की सहने की अपेक्षा तुम भीतर क्रोध को, ईर्ष्या, द्वेष को सह लो, यह शुभ होगा। घर में रहकर तुम्हारे ही द्वारा तुम्हें कष्ट होगा, कोई शत्रु का सामना

न करना होगा। जप करो, अध्ययन करो, मौन रहो, प्रभु के समर्पण होकर देखो कि स्वतः क्या होता है। तुम कुछ न करो, अपने आप जो हो उसे प्रभु का विधान समझकर स्वीकार करो। वेग को रोक लो। किसी को देखने की आतुरता, सुनने की आतुरता, कहीं जाने की प्रबल उत्कण्ठा, कुछ पाने की उत्सुकता, यह सभी काम हैं। सभी कृतियों में वेग है, शक्ति का ह्रास है, पराधीनता है। अपनी प्रसन्नता अन्य पर निर्भर करना पराधीनता है। पराधीन कामी, क्रोध के आवेग से नहीं बच पाता है, प्रतिकूलता आने पर काम के साथ क्रोध प्रबल हो जाता है।

पथिक

*****

नाम रूप में प्रकाशित विराजमान महादेव परम आत्मा को सादर प्रणाम !

दम्भ, कपट, मद, मान नेहरूआ। अहंकार अति दुखद डमरूआ।।

सौभाग्य से मुझे अनेंको अखिल भारतीय हरिनाम संकीर्तन सम्मेलन, मानस प्रचार सम्मलेन, अखिल भारतीय सन्त सम्मेलन तथा अनेकों प्रकार के महायज्ञों में, सन्तों, महात्माओं, शास्त्रार्थ महारथियों के दर्शन का अवसर मिला। एक बार भारत की एक महानगरी में अखिल विश्व सनातन धर्म सम्मेलन आयोजित था। उसमें देश के राजा, महाराजा, काशी के प्रकाण्ड विद्वान, आचार्य तथा जगद्‌गुरू एवं अनेकों प्राचार्य जनों के विशाल सम्मेलन को ध्यान से देखा तो यही दिखाई दिया कि सम्मेलन की परिधि में असम्मेलन का आतंक छाया हुआ है।

यह भी देखा कि अहंकार किसी पण्डित से, किसी सन्त महात्मा से, जगद्‌गुरू से भी भयाता नहीं है, अहंकार नम्रता की चादर ओढ़कर सम्मान के आसन पर आसीन होकर सारी पूजा को स्वीकार कर रहा है। वेद शास्त्र का पाण्डित्य अहंकार की ही परिक्रमा कर रहा है। समस्त धर्मों का ज्ञान अहंकार को ही तृप्त कर रहा है। ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध, निन्दा, घृणा आदि शक्तियां अहंकार के समक्ष अपनी उपस्थिति का परिचय दे रही हैं। सत्य का साक्षात, शान्ति की अनुभूति, आनन्द का आस्वाद, प्रेम का माधुर्य इतना दूर हट गया है कि वहाँ की महासभा में उपस्थित आचार्य, प्राचार्य, सन्त महात्मा, गुरू, जगद्‌गुरू भी इन दिव्य विभूतियों के दर्शन से वंचित रहकर अतृप्त अशान्त हो रहे हैं। फिर भी अहंकार के

विशालकाय को, जो नाम रूप उपाधिमय बना था, उसे ज्ञान में सामने देख नहीं पा रहे थे। मैं भी तब देख सका जब तटस्थ होने पर गुरू ज्ञान में दृष्टि खुल सकी।

महार्षि वशिष्ठ का निर्णय है कि इस देह की रचना एक नियम से हुई है, उसका आश्रय अहंकार रूपी यक्ष ने ले रखा है। दुख कोई और को होता है, अन्त में भोक्ता कोई अन्य ही बनता है। इस प्रकार यह अज्ञान की प्रक्रिया चल रही है।

'अज्ञान मात्र संसिद्ध वस्तु ज्ञानेन नश्यति।'

जो वस्तु अज्ञान से उत्पन्न होती है उसका विनाश ज्ञान से ही हो जाता है। दृष्टि और दृश्य के बीच अहंकार है कौन किससे उत्पन्न हुआ है?यह कहना कठिन है, अर्थात अहंकार अनिर्वचनीय है। भगवान ने आठ प्रकार की प्रकृति को अपरा कहा है और जीवरूप चेतन प्रकृति को परा नाम दिया है। परा प्रकृति द्वारा ही सम्पूर्ण जगत धारण किया गया है। भगवान का निर्णय है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश तथा मन, बुद्धि अहंकार यह आठ प्रकार से विभक्त हाने वाली मेरी प्रकृति है।

परा और अपरा प्रकृति दोनों को लेकर परमेश्वर की नौ प्रकार की देह है। अव्यक्त परमात्मा नौ प्रकार के तत्वों द्वारा व्यक्त हो रहा है। यह समग्र विश्व परमेश्वर की ही विराट देह है। इस विराट रूप को जो देखता है वही दिव्य चक्षु से सम्पन्न है। बाह्य नेत्रों से पशु पक्षी भी दृश्याकार को देखते हैं। जो मनुष्य आंखो से दीखने वाले रूप में सम्मोहित होकर अटक जाता है उसे ही मूढ़ कहते हैं। साधक, सिद्ध, सुजान जिस दिव्य दृष्टि, ज्ञान दृष्टि, प्रज्ञा दृष्टि से दर्शन करते हैं वह दर्शन मूढ़ मनुष्य नहीं कर पाते हैं। यह भी गुरू निर्णय है— जिस प्रकार कोई कुली लोभवश, शक्ति से अधिक भार को सर में लेकर चलता है, उसी प्रकार मूढ़ अविवेक के भार को ढोता है। मूढ़ रागी, ज्ञान के भार को ढोता है। अशान्त व्यक्ति के लिये मन ही भार बन जाता है। देहाभिमानी अज्ञानी भार को कुली के समान ढोते हुये मृत्यु को जाता है।

पथिक

*****

**इच्छा मनुष्य को भिखारी और दरिद्र बनाती है,
इच्छा की उत्पत्ति में दुःख, इच्छा की पूर्ति में क्षणिक सुख, इच्छा के त्याग में शान्ति**

प्रेम स्वरूप, ज्ञान स्वरूप, सुख स्वरूप आत्मदेव को नमस्कार!

यह सन्त वचन सदैव स्मरणीय हैं :–

1. सभी प्राणी सदा सुखी रहना चाहते हैं परन्तु सदा न रहने वाले संयोग में सुख मानते हैं।
2. सन्त ने समझाया कि यदि तुम सदा सुखी रहना चाहते हो तो उसे जानो, जो सदा रहने वाला अविनाशी है। देह विनाशी है, चेतन अविनाशी हैं। विनाशी में अविनाशी को जान कर उसी में प्रीति स्थिर करो।
3. तुम सदा सुख रूवरूप ही हो, भ्रमवश अन्य वस्तु व्यक्ति में सुख मानते हो। परमात्मा अभी यहीं है तुम परमात्मा में हो। परमात्मा सत्चेतन है, तुम सच्चिदानन्द से भिन्न नहीं हो।
4. चाह रहित, प्रयत्नरहित, अकिंचन होकर चेतना में बुद्धि को स्थिर करो। दृष्टा चैतन्य ही सत्य है और सब कल्पना है।
5. परमात्मा तो बिना कुछ किये ही प्राप्त है।
6. चित के चेतन रहित होते ही चेतन आत्मा का बोध होता हैं।
7. आँख बन्द करके भीतर शून्यता को देखो, विचार शान्त रहें, कोई याद न आये तभी अविनाशी सत्चेतन की अनुभूति होती है।
8. मैं देह हूँ मेरी देह है। ऐसे देहाभिमानी की शुद्धि के लिये शास्त्र में कोई उपाय नहीं। तुम देह को अपना रूप न मानो।
9. अहंकार को प्रभु में समर्पित जानकर प्रभु की मर्जी से सब कुछ होते हुये देखो। सब स्वीकार करते जाओ, शान्त रहो, समस्थिर रहो।
10. अहंकार और विकारों के कारण चेतन आत्मा आवरण में है। अपना कुछ भी न मानो तभी अहं के आकार मिटेंगे।
11. प्रभु को सर्वमय जानकर सबमें प्रभु को प्रणाम करो। सत् परमात्मा तो क्षण में ही मिलेगा परन्तु असत् की सीढ़ी पार करने में बहुत समय लगेगा।
12. इसी क्षण परम चेतन का अनुभव करो, बार बार करते ही रहो। श्रद्धा वही सुन्दर है जहाँ अहंकार समर्पित है, जब तक मोह है तब तक लोभ नहीं छूटेगा। सद्गुरू के उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ेगा। अपना कुछ

न मानने से मोह लोभ नहीं रहेगा। अपना मानते रहना दाता प्रभु के साथ अन्याय है।

13. जब तक भगवान को अपने से दूर मानते हो। जब तक धन, मान, संयोग, भोग चाहते हो, तब तक भक्त नहीं हो सकोगे। जो अहंता ममता के त्यागी हैं, जो चाहों से रहित हैं, वही भगवद् भक्त हो सकते हैं।

14. अहं ज्ञान के साथ मेरा कुछ न रहने दो। जो कुछ तुम्हें सुन्दर प्रिय लगे उसके साथ चेतन तत्व का स्मरण करो।

15. अहंकार पाप है, अहंकार रहित होना पुण्य है। परमात्मा ही सर्वमय है, इसी से सब कुछ प्रकाशित हो रहा है। सत् चेतन आनन्द स्वरूप से चिपटे रहिये, भूलिये नहीं।

16. बीता हुआ भूत न चढ़ने दो और आगे की चिन्ता करने वाले को हटाते रहो।

17. ध्यान करो नहीं, ध्यान से देखो। मन, बुद्धि के पीछे चेतन की उपासना करो। चेतन स्वरूप से सन्तुष्ट तृप्त होना योगस्थ होना है, असंग होना है।

18. चेतन का स्मरण योग है। केवल चेतना में ठहरो तभी आसक्ति समाप्त होगी। वर्तमान के प्रति अन्धे न बनो, भविष्य का चिन्तन छोड़ो, जो अभी है उसे देखो। तार में विद्युत की तरह चेतन परमात्मा व्याप्त है परन्तु बुद्धि रूपी बल्ब में ही प्रकाशित होता है, तार में नहीं होता। शुद्ध बुद्धि में जब ज्ञान प्रकाशित होता है तब अहंकार का पता लगता है, स्वरूप का बोध होता है।

19. तुम्हें गुरू वाक्य श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, तो इस देह को देवालय समझकर इसमें चैतन्य देव, महादेव शिव की उपासना करो। ब्रह्म ऋषि वशिष्ठ जी ने समझाया है कि किसी भी साधना, आराधना, उपासना से जब वासना का क्षय तथा परमात्मा का बोध होता है तभी परम पद प्राप्त होता है। शान्त होकर, संकल्प रहित होकर सोचो, प्रत्युत जानो कि मैं नित्य निरन्तर चेतन स्वरूप हूँ, परमात्मा में ही हूँ।

20. सत् चेतन के सानिध्य का निरन्तर स्मरण ही सत्योपासना है।

21. अपने साथ रहने वाले आत्मदेव से ही निवृत्ति के लिये प्रार्थना करो।

22. यह देह माटी के दिये भाँति है, इसी में न अटके रहो। इसमें अविनाशी चेतन ज्योति को जान लो, वही तुम हो। इसी ज्योति को सभी देहों में पहचानते रहो। सत् आत्मा परमात्मा को पाने का कोई मार्ग नहीं है, क्योंकि वह तो वहीं है जहाँ तुम हो। तुम अपने को खोजो, तुम अपने में ही पूछो कि मैं कौन हूँ, पूछते रहो। मौन होकर उत्तर की प्रतिक्षा करो, भले महीनों लग जायें, धैर्य से उत्तर की प्रतीक्षा करो।

पथिक

*****

देह में व्याप्त, मन को स्मरण, मन में व्याप्त आत्मा को स्मरण, आत्मा के साथ परमात्मा को स्मरण करते हुये सर्वमय परमात्मा को सब ओर से प्रणाम।

सर्वोपरि पवित्र हृद्वय वही है जो शैतान में भगवान को ही देखता है और सर्वोपरि अपवित्र हृद्वय वह है जिसे भगवान में ही दुखदाता शत्रु शैतान प्रतीत होता है। भले ही कमल कीच से अदृश्य रूप से प्रगट होता है और कभी जब खिलता है तब पूर्ण निर्लिप्त ही होता है। जप से या मौन से कभी–कभी कुछ क्षणों के लिये विचार रहित, दृश्य रहित होने की घड़ी आती है तो बहुत शुभ है। कोई–कोई साधक नित्य मौन रहने के नियम से कुछ महीने बीतने पर बहुत अच्छी स्थिति का अनुभव कर रहे हैं। ध्यान से देखने के लिये मौन, शान्त, होने के लिये कुछ समय प्रातः या सांयकाल निर्धारित होना ही चाहिये। जितना भी पढ़ने बोलने से समय बचे, वह जप सुमिरन में लगाना चाहिये। बार बार सचेत होने पर ही जप सुमिरन का अभ्यास बढ़ेगा। स्वास के आने जाने को देखते रहना और गुदाद्वार को आकुंचित किये रहने से विचार शून्यता सरल हो जाती है।

1. विचार विलय होने पर निज स्वरूप में रहना ही आनन्दानुभूति है।
2. मन को अर्न्तमुख करने के लिये सीधा वहाँ देखो, जहाँ से अहं स्फुरित हो रहा है।
3. सभी विचारों में अहं व्याप्त है। अहं के श्रोत को ध्यान से जानो। ध्यान का प्रयास न करो, दृष्टा तो प्रत्यक्ष ही है, विचारों से, विकारों से, मुक्त हो जाओ। स्वरूप ही प्रेम का अधिष्ठान है, प्रेम में होना आनन्द है। विचार उत्पन्न होते ही चेतन स्वरूप आत्मा का स्मरण करो, यही आत्माभ्यास है।

तुम्हारी मनः स्थिति जैसी है ऐसी होनी ही चाहिये। सभी के साथ शरीर में जो सूक्ष्म देह है उसमें 6 केन्द्र हैं जिसमें शक्ति की गति भिन्न भिन्न रूप में उसी प्रकार प्रकट होती रहती है, जिस प्रकार बांसुरी में एक ही वायु सात स्वरों में प्रकट होती है। शक्ति का प्रवाह जिस इन्द्रिय से अधिक होता है वही विषय प्रबल बन जाता है। रूपाशक्ति, श्रवणाशक्ति, गन्धाशक्ति, स्वादाशक्ति, शक्ति की गतियाँ हैं। नाभिचक्र से शक्ति वासना, कामना, भोग इच्छाओं के पीछे व्यय होनी चाहिये। यदि उसके लिये कोई खुला मार्ग नहीं है इसलिये वह शक्ति कोई छिद्र खोज रही है। तब जिस प्रकार बांध में कोई थोड़ी भी दरार या छेद मिल जाये जो बड़ी तीव्रता से विस्फोट होता है, जो मुश्किल से काबू में आता है, वही दशा मन की है। नाभि केन्द्र के ऊपर हृदय केन्द्र में भावना का प्राबल्य होता है उसकी प्रबलता में शक्ति का प्रवाह क्रिया कर्म में न होकर भाव में होता है। यदि भाव प्रबल होता तब कहीं जाने की प्रबल इच्छा न होती। शक्ति संचयावस्था में काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, मोह, लोभादि दोषों में जो भी उमड़ता है, वही बहुत तीव्रता से होता है। यदि उस संकल्प में बाधा पड़ी, तब ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध प्रबल होता है। शक्ति के लिये कोई मार्ग चाहिये। काम से यदि शक्ति बच गई तब मीरा की भांति भाव प्राबल्य में भक्ति की साधना पूर्ण होती है या फिर व्यक्ति के मोह में परिवार की सेवा, जाति सेवा, देश सेवा में लग जाती है। यदि कोई दिशा नहीं मिलती तब छोटे संकल्पो को तीव्र बनाकर उसी में व्यय होती है। भगवान से सम्बन्ध जुड़ जाता तब ऐसी दशा न होती। किसी के प्रति आत्मीयता होने पर सेवा का अवसर मिल जाता, तब भी मन वेग प्रबल न होता। जिस प्रकार बाहर कहीं जाने के लिये शक्ति, समय, सम्पत्ति सब कुछ लगाने का साहस है इस साहस के पीछे आराम, विश्राम तथा सुख की प्राप्ति नहीं होगी बल्कि ह्रास होगा, थकावट होगी, आत्म ग्लानि बढ़ेगी, प्राप्त कुछ न होगा, फिर भी साहस है।

यदि यही साहस अन्तर साधना का होता तब शक्ति का प्रवाह अधोमुखी होने की जगह ऊर्ध्वमुखी हो जाता। लेकिन इस अन्तर यात्रा की साधना में मन की मांग ही बाधक बनती है। बुद्धि की सहायता से अन्तर यात्रा की साधना चल सकती है। यदि शक्ति द्वारा दृढ़ संकल्प हो जाय, कि चाहे शरीर छूट जाये पर एक ही जगह में रहना है। घूमते घूमते मरने खपने की अपेक्षा बैठे बैठे मन को सुखा लेना बड़ा सौभाग्य है। मन की

पूर्ति से मन हरा भरा गीला रहता है। मन की पूर्ति न करने से कुछ दिनों में वह सूख जाता है। शक्ति को प्रवाहित होने देना अधोगामी होना है। शक्ति के प्रवाह में बांध बांधना उसे ऊर्ध्वमुखी बना लेना है। एकान्त में जप, ध्यान, अध्ययन में समय लगाया जाता, मौन रहा जाता, मंत्र, जप प्रातः व सायं दो घण्टा किया जाता तब तो शान्ति उपलब्ध हो जाती है।

पथिक

*****

नाम रूप में चेतन स्वरूप आत्मा को स्मरण!

मन गतिशील है, जो पहले नहीं था वह अब है। जो अब मन है वह आगे न रहेगा। सदा कुछ भी नहीं रहता, परमात्मा की नित्य चेतन स्वरूप आत्मा सदा ही रहती है। मन ही अनेक संगमय हो जाता है मन ही लोभमय, मोहमय बनता बिगड़ता रहता है। यदि साहस हो, तो मन की पूर्ति में तृप्ति की कल्पना छोड़कर अपने सम्बन्धित जनों की पूर्ति चाहो तो बहुत शीघ्र ही मोह, लोभ की सीमा को पार कर लोगी। अपनी पूर्ति पुण्य से होती है, पूर्ति के सुखोपभोग में पुण्य घटते हैं, दूसरों की पूर्ति से पुण्य बढ़ते हैं। मन के प्रत्येक संकल्प पर, इच्छाओं पर बुद्धि से परिणाम का निर्णय करो या फिर अपने से अधिक अनुभवी जनों की सम्मति से निर्णय करो।

जो अपने आप आये अथवा जाये उसे प्रभु का विधान जानकर स्वीकार करो। अपनी ओर से कुछ पाने का संकल्प न करो, न छोड़ने का संकल्प करो। जो है उससे सेवा करो और कुछ छूटे उसकी चाह का त्याग करो। प्राप्त का सेवा द्वारा सदुपयोग और अप्राप्त की चाह का त्याग करने में स्वतन्त्र हो। चाह की पूर्ति का सुख क्षणिक ही रहता है, परन्तु मन नहीं मानता, तब अपने आप ही पूर्ति होती है उसकी ही प्रतीक्षा करो। जब स्वतः पूर्ति हो, तब ठीक है। प्रयत्न करके पूर्ति में बहुत समय, शक्ति खर्च होती है। अभी तक तुममें लोभ का त्याग तो रहा है परन्तु मोह सिमट कर केन्द्रित हो रहा है, वह बहुत प्रबल है, तब जिससे मोह है उसकी सेवा का व्रत लिये रहो। जिसकी याद आये उससे लेने की कामना न रखकर देने का संकल्प करो। जो लेना है उसे छोड़ सकती हो, देने में स्वतंत्र हो, लेने में नहीं हो। सर्विस गई तब तो समय बिताना कठिन होगा। सौभाग्य के स्थान पर दुर्भाग्य का भोग होगा। तुम्हारी शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता का उपयोग सेवा में हो सकता है, इससे रहित शरीर तो भूमि का भार होगा। जिसे चाहती हो उसकी सेवा के अवसर खोजती रहो, चाहे वह व्यक्ति हो

या समाज हो या देश हो, या भगवान हो, किसी से अपनी पूर्ति न चाहो। तुम अपने साथ सद्‌गुणों को लेकर सौभाग्यशालिनी हो। दोषों के साथ दुर्भाग्य है। सदैव गुणों का ही आश्रय लो, दोषों का नहीं, तुम प्रेम, दया, करूणा, उदारता, सरलता, नम्रता से ही हृदय को सुसज्जित रक्खो।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी ज्ञान स्वरूप आत्मा को नाम रूप में स्मरण!

आप मौन सत्संग अपने कमरे में ही बन्द करके किया करो। 6.50 से 7.15 तक मौन होकर चेतन स्वरूप परमात्मा में विश्रास करो, कुछ भी न करो, शरीर में सब कुछ उसी की शक्ति से हो रहा है उसे होते हुये अनुभव करो। दृष्टा होकर देखो, कर्ता न बनो। साधना में एकाग्रता आने पर कभी कभी तन्द्रा आ जाती है, उसमें न सोना होता न जागना ही रहता है। क्षण क्षण बेखबरी हो जाती है वह तन्द्रा अच्छी नहीं होती। तुम सजग होकर स्वांस को निरन्तर देखती रहो, केवल सजग रहो, कोई प्रयत्न न करो, जो कुछ हो रहा है वह तुम्हारी स्मृति में रहना चाहिये। यदि हाथ मक्खी उड़ाने को उठे या कहीं खुजलाने को हाथ जाये उसे तुम देखती रहो। यह क्रिया, यही साधना जारी रक्खो अन्य पूजा पाठ की आवश्यकता नहीं है। इससे शान्ति व शक्ति का अनुभव होगा। सदा निर्विकार चेतन आनन्द स्वरूप आत्मा की स्मृति में प्रसन्न रहो। चिन्ता, भय, शोक, दुख के भी दृष्टा बनो, अपने ऊपर न लादो। वह सब आने जाने वाले वेग हैं तुम आत्मस्वरूप में सदा स्थिर व शान्त हो। देहाभिमान, देहाध्यासन से ऊपर उठो। प्रेमास्पद प्रभु से दूरी न मानो। स्वांस गहरे लिया करो, पूरी भरो, पूरी निकालो। हल्की स्वांस होने से खून कम बनता है, शरीर कमजोर हो जाता है, लम्बे स्वांस का ध्यान रक्खो। शरीर की दूरी होने पर भी चेतना की दूरी न समझो। कभी क्रोधादि विकार प्रबल हों तो उसको देखते रहने के लिये सावधान रहो, कर्म, क्रिया, न होने दो। दोष के अनुसार क्रिया न हो, तो फल नहीं बनता। तुम अपने प्रभु के प्रेम में तृप्त रहो, सन्तुष्ट, प्रसन्न रहो, प्रेम में दूरी नहीं होती। क्षमा का अभ्यास बढाओं, अज्ञान में भूल होती ही रहती है। लोभ, मोह, अभिमान, कामना के पीछे शक्ति नष्ट होती रहती है।

तुम पुस्तक पढ़ती हो, सो मुझे बहुत अच्छा लगा, समय व्यर्थ खोकर

जप या अध्ययन या सेवा में ही लगे रहना उत्तम है। बहुत सीखना है, बहुत अज्ञान है, बहुत जानना बाकी है बहुत पर्दे हैं। जहाँ अंधकार है सब खोल खोल कर देखना है। सेवा की पूर्णता, त्याग की, प्रेम की पूर्णता ही तो साधना की सिद्धि है। अहंकार जब तक कुछ भी चाहेगा, तब तक प्रेम पूर्ण नहीं हो सकता। जब तक कुछ भी अपना समझकर बचायेगा तब तक सेवा पूर्ण नहीं हो सकती। अहंकार मिटाने पर प्रेम अनावृत्त होता है और अपना सर्वस्य समर्पण करने पर सेवा पूर्ण होती है। अपना कुछ मानने पर, ममता, आसक्ति रहित होने पर त्याग पूर्ण होता है। कहीं जाओ तो सोचना चाहिये मन की पूर्ति के लिये गये या सेवा के लिये। यदि जाये बिना रहा नहीं जाता तब समझना चाहिये यह कामना पूर्ति है, मोह है, न सेवा है, न सत्संग है, या तो कुछ देने आये या फिर लेने आये, तो ठीक है। मन की इच्छा पूर्ति की जाय तब तो भोग में पुण्य क्षीण होते हैं। 40 रू0 आने जाने में खर्च किये, यह न अपना दर्शन है न गुरू दर्शन है। अहंकार की पूजा है। यदि पुस्तकों का अध्ययन नित्य नियम से किया जाये तो बुद्धि सूक्ष्म होती जाती है।

गुरू पशु, नर पशु, नारि पशु, वेद पशु संसार।
मानव सोई सराहिये, जहाँ विवेक विचार।।

अपने त्याग से, प्रेम से, सेवा से सन्तुष्ट रहो, तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।

पथिक

*****

परमात्मने नमः
पौत्रि स्वरूप आत्मन्,

1. इच्छाओं की पूर्ति कभी हो ही नहीं सकती।
2. भगवान भी इच्छाओं की पूर्ति दशरथ की नहीं कर सके।
3. किसी को सदा प्रसन्न नहीं किया जा सकता।
4. अपने अधिकार के त्याग में तो स्वतन्त्रता है, दूसरों को त्यागी बनाने में नहीं।
5. देखते रहना है कि संग से कब क्या गुण या दोष प्रगट होता है।
6. अहंकार ही कर्ता भोक्ता है। ज्ञान स्वरूप ही दृष्टा है, वह कर्ता भोक्ता नहीं है।

पथिक

*****

नमो परमात्मन,

तुम सब कुछ सुन लो या सुनो ही नहीं। लोगों के कहने की परवाह करने वाला सबको सन्तुष्ट कर ही नहीं सकता। व्यर्थ–अनर्थ से बचकर अपना अध्ययन करो, जब जहॉ बुद्धि कहे वैसा करो। मन की बात अवश्य नहीं माननी चाहिए। न बहुत बोलो, न चुप ही रहो, न बहुत खाओ न भूखे रहो। ऐसे उदासी न बनो कि मनहूस हो जाओ। ऐसे दृढ़ प्रतिज्ञ न बनो कि हटी हो जाओ। ऐसे सत्संगी न बनो कि रूप से नफरत करने लगो। ऐसे भक्त न बनो कि माला लिए बैठे रहो। समय अनुसार व्यवहार करो।

जैनी लोगों का मत है कि सभी जीवों पर दया करनी चाहिए। जो काम विवेक द्वारा परिणाम को देखकर किया जाता है वह ठीक रहता है। जड़ भरत ने हिरन पर ऐसी दया की कि उसके चले जाने पर मोह से पागल बन पने। जो तुम पाना चाहती हो वही दो, यदि तुम कुछ नहीं चाहती हो तो कुछ न करो। दया, मान, प्यार, अधिकार, सुख सम्पत्ति चाहती हो, तो वही सब दूसरों को दो।

व्यर्य बात, व्यर्थ चेष्टा, व्यर्थ चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष के विचारों से शक्ति को बचाकर कर्तव्य पालन करना चाहिए। 5–7 मिनट मेरी पुस्तक पढ़ लिया करो, अपने आप प्रश्न हल होते रहेंगे। अधिक देर न पढ़ना चाहिए। बल्कि दो–दो मिनट करके दिन में दो–चार बार पढ़ लो।

पथिक

*****

प्रिय आत्मन,

समझ में आए तो मेरी पुस्तक का प्रत्येक पृष्ठ पत्र है। पढ़कर आसक्ति, ममता, कामना का त्याग कोई भी कर सकता है। तीर्थ यात्रा से, हजारों महात्माओं के दर्शन से शान्ति, मुक्ति, भक्ति सुलभ नहीं होती। सारे दोष अहंकार में बनते हैं। मान की चाह, धन की चाह, सामान की चाह में ही राग–द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध आदि विकार रहते हैं।

जो बार–बार दोहराया जाता है उसी का अभ्यास बढ़ जाता है। बुद्धि तीव्र हो, सेवा भाव प्रबल हो, कामना पूर्ति का पक्ष न हो, तभी कोई सही काम कर सकता है। लोभ, मोह, कामना से सनी हुई बुद्धि सही निर्णय नहीं कर पाती। संग का प्रभाव पड़ जाता है। हर व्यक्ति लोभी, मोही, अभिमानी को प्रसन्न करना चाहता है, ज्ञानी की बात मानता ही

नहीं। जाने कितने पर्त छिपे हैं, धीरे–धीरे खुलते रहते हैं। लोभ, मोह, ममता अभिमान ही बढ़ाता है। सन्तोष, दया, करूणा, उदारता, नम्रता, सहनशीलता, निष्काम प्रति से विवेक की वृद्धि होती है।

पथिक

*****

श्रद्धामयी देवी,

तुम तीनों देवियों के श्रद्धा पूर्ण वाक्यों को पढ़कर आश्चर्य हुआ। मन बहुत ही हर्षित हुआ। तुम लोगों पर कथा का, सत्संग का इतना प्रभाव पड़ा कि भीतर उदारता बढ़ी। सेवा करने में तुम लोग मन्दिर जाते हुए आलस्य नहीं करती थी। तुम लोग अभी से समझ लो कि इस जीवन में तुम्हारे तन पर मन पर तथा तुम्हारी वस्तुओं पर, तुम्हारे समय पर, कोई न कोई अधिकार करता ही रहेगा। तुम कुछ बचा नहीं सकती, कोई भी नहीं बचा पाता। जिनके संस्कार अच्छे हों, वही अच्छी संगति में पड़कर अपने मन में अच्छे भावों एवं अच्छे विचारों को बढ़ा पाते हैं। हजारों बालिकायें हैं, जिन्हे सत्संग में जाने का, सत्चर्चा, भगवद कथा वार्ता सुनने का अवसर ही नहीं मिलता, लेकिन तुम लोगों को मिल रहा है और संग मिलने से श्रद्धा जाग्रत हो रही है। उसी श्रद्धा के कारण तुम्हारे भीतर उदारता पूर्वक अपने अधिकार की वस्तु देने में प्रसन्नता होती है।

तुम लोगों ने पहले जन्म में अच्छी सेवाएँ की है, किसी को मान दिया है, प्यार दिया है साथ ही जितने अंश में अन्नदान, धनदान किया है उतने अंश में मिल रहा है। अच्छे घर में जन्म हुआ और इतने अच्छे सत्संगी माता–पिता मिले हैं। साथ ही बड़े भाग्य की बात है कि तुम्हारे हृदय में किसी के प्रति पूज्य भाव जाग्रत होने के कारण श्रद्धा हो रही है। हर एक के मन में बीती हुई बातें याद आती रहती हैं। तुम्हारे मन में सत्कथा की, सत्चर्चा, साधु सन्त की याद आती है। कोई भी बिना कुछ सुने रह ही नहीं सकता। लेकिन सबके भाग्य में भगवान की चर्चा सुनने को नहीं वदी होती है, तुम्हें यह अवसर सुलभ हो सका है। सांसरिक सुख तो तुम्हें अपने सम्बन्धित परिवार से पुण्य होने पर मिलते ही रहेंगे लेकिन जीवन में निष्काम सेवा तथा बिना बदले के मान का दान एवं परिवार में रहते हुए विनाशी वस्तुओं और व्यक्तियों की ममता, आसक्ति छोड़ने की प्रेरणा सभी से नहीं मिलेगी। दोषों के त्याग की प्रेरणा तो सन्त संगति में ही मिलती है। जीवन में किसी को चाहे जितनी सम्पदा मिल जाए, कितनी

ही अच्छी कोठी, मोटर मिल जाए, चाहे जिनता सुख मिले, फिर भी दुःख नहीं मिटता।

सब कुछ के होने पर भी कभी अपमान का दुःख अभिमान के कारण या हानि का दुःख लोभ के कारण अथवा वियोग का दुःख कामनाओं, इच्छाओं के कारण सभी को घेरे ही रहता है। सभी प्रकार के दुःखों का अन्त ज्ञान विवेक से ही होता है। वह ज्ञान विवेक लाखों लोगों को नहीं है। श्रद्धा के द्वारा बुद्धि धीरे–धीरे सूक्ष्म होती जाएगी। तुम लोगों की सेवा का तथा श्रद्धा सहित सम्मान, आदर देते रहने का स्मरण आ रहा है। अभी से मधुर शब्द बोलने का, अच्छे साहित्यक वाक्यों को बोलने का अभ्यास बढ़ाओ। लड़ने–झगड़ने की आदत तथा कलह, क्रोध, निन्दा, ईर्ष्या, घृणा, द्वेषादि इन विकारों को भीतर बढ़ने ही न दो। जो गलत आदत पड़ जाती है वह आसानी से नहीं छूटती। तुम लोगों की आदतें तथा भावना श्रद्धा, सरलता, नम्रता, उदारता बहुत सुन्दर है।

पथिक

*****

प्रिय आत्मन,

घर में सभी की श्रद्धा सेवा को स्मरण करते हुए यही अभिलाशा है कि आप सभी लोग अब इतनी श्रद्धा रखती हो। तब जिस प्रकार परिवार के लोगों की बातें सुनती हो, मानती हो और करती हो। इसी प्रकार जो गुरूजनों के संदेश उपदेश यह पथिक बताता है उन्हें भी स्मरण रखो और वैसा ही भाव विचार दृढ़ करो। परिवार की सेवा में शरीर को लगाये रहो परन्तु बदले में कुछ पाने की दरिद्रता छोड़ दो। आदतें बदलने में देर लगेगी, कोशिश करो। सेवा के बदले में मान, प्यार, अधिकार, धन आदि चाहने से जब कुछ मिलेगा तब अभिमान, मोह, लोभ, आसक्ति आदि दोष बढ़ेंगे और जब न मिलेगा तब प्रेम के स्थान में कटुता बढ़ेगी, द्वेष, क्रोध उमड़ेगा। अभी अपना भाव विचार बदलना आसान है। जितना किसी से अधिक मोह होगा, यदि किसी वस्तु का लोभ होगा या काम करने का अभिमान होगा, उतना अधिक मन के प्रतिकूल होने पर क्रोध आएगा और अशान्ति बढ़ेगी, पाप बनेंगे।

तुम अपने में ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, अभिमान न बढ़ने दो, दूसरों में बढ़ रहे हों तो उसकी दशा पर तरस खाओ, उसकी अशान्ति पर मन ही मन

दया भाव रखो। अपने मन को दुखी न बनाओ, मौन रहो। भगवान की दया से जो तुम्हें मिल रहा है, उसे देखकर प्रसन्न रहो। पॉच–सात मिनट पथिक साहित्य अवश्य नित्य पढ़ लिया करो, इसका प्रभाव बुद्धि पर पड़ेगा। ऐसा करने से तुम लोगों की श्रद्धा सेवा परायणता बढ़ेगी। सबकी बुद्धि शुद्ध होना चाहिए।

पथिक

*****

पुण्यमयी देवी,

तुम्हारा पत्र अभी मिला, प्रश्नोत्तर में इतना ही है कि जो तुम्हारा अपमान करे, हानि पहुंचाए, कटु वाक्य कहे तो उसका बदला न दो। मौन रह जाओ। जो भलाई करे, उसी प्रकार तुम भी दूसरे के साथ भलाई करो। क्रोध आने पर मौन रहना उचित है और जहॉ उत्तर देना उचित हो, वहॉ मौन रहना पाप है। शरीर में रोग आना भी अशुभ योग है। मच्छरों से बहुत बचना चाहिए। अंग्रेजी दवा तो परिणाम में हानिप्रद है।

पथिक

*****

परमप्रभु की ज्ञान स्वरूप आत्माओं को नामरूपों में स्मरण,

भागलपुर में तुम्हारा पत्र मिला था। उत्तर देने का अवसर नहीं मिला। बहुत अच्छा है तुम लोगों की हिन्दी भी शुद्ध हो रही है। तुम जितना अधिक मन लगाकर पढ़ोगी और व्यर्थ वार्ता से समय बचाकर मनन करोगी उतनी बुद्धि तीव्र होती जाएगी। आगे चलकर उतना अवसर नहीं मिलेगा। इतना ज्ञान बढ़ा लो कि परिवार में रहते हुए, सबकी सेवा करते हुए, मोह न बढ़ने पाए। अपना मानने से ममता होती है। तुम लोग अभी से मन ही मन बार–बार सोचो कि जो सम्बन्धी है वह मेरे नहीं है। क्योंकि सब मिले हैं और छूट जाऍगे। इसलिए जो देह मिली है इससे उनकी सेवा सार्थक करती रहो।

अभी से जो अभ्यास करोगी वह दृढ़ हो जाएगा, चाहे भला हो या बुरा। वही अभ्यास दोहराओ जिससे लोभ, मोह अभिमान न बढ़े। ममता, लोभ, मोह, अभिमान ही दुःख देता है। लोभी के भीतर सदा दरिद्रता बढ़ती

है। मोही की बुद्धि में जड़ता बढ़ती है, अभिमान से मादकता बढ़ती है। ज्ञान में देखने से असंगता रहती है। तुम लोग बहुत ही सरल, विनम्र और श्रद्धावान हो। अब ज्ञान बढ़े तब सत्संग सार्थक है। अज्ञान बना रहा तब सब निरर्थक है।

पथिक

****

प्रिय आत्मन,

तुम्हारा पत्र पच्चीस पत्रों के बीच में पढ़कर हृदय सन्तुष्ट हुआ कि अभी तुम्हारे हृदय में श्रद्धा सुरक्षित है। जब तक मोह, लोभ नहीं बढ़ता तब तक ऐसा ही रहता है। बहुत अंशों में अभी ज्ञान भी खाली है। प्रीति भी खाली है तभी तक श्रद्धा प्रश्न करती है। हृदय में सत्संग की अभिलाषा है। खाली जगह भरते ही फिर यह भावना नहीं रहती। सत्य, आत्मा, परमात्मा तो निरन्तर सुलभ है, ऐसा कोई क्षण नहीं जब न हो। बिना कुछ किए ही आत्मा परमात्मा प्राप्त है परन्तु हम लोग उसके लिए उपस्थित नहीं होते।

हम लोग अपने को भूले ही रहते हैं उसकी याद करते रहते हैं, जो नहीं होता। अपने आप को भूलना ही निद्रा है, अपना स्मरण ही जाग्रति है। मैं हूँ—यह चेतना, यह होश सदा रहे, तो यही जागरण है।

हम सबमें ज्ञान में वस्तु व्यक्ति के नाम रूप भर गए हैं तभी तो हम लोग लोभी तथा कामना से ग्रसित हैं। प्रसन्न रहो, सबको अपनी सेवा से प्रसन्न रखो।

पथिक

****

इच्छा मनुष्य को भिखारी और दरिद्र बनाती है,
इच्छा की उत्पत्ति में दुःख, इच्छा की पूर्ति में क्षणिक सुख,
इच्छा के त्याग में शान्ति

प्रिय आत्मन,

तुम बहुत भली हो। सहनशीलता तो जीवन संग्राम में कवच का काम करती है। कोई गाली देने लगे, अपमान करे, तब तुम्हें उसके भीतर विद्यमान राम याद आ जाएँ और यही सोच लो कि जब राम देख रहा है तो मैं क्यों फिकर करूँ। राम जैसा चाहे वैसे मुझे गढ़े, संवारे, ठोक पीटकर सुन्दर बनाए, मुझे तो कुछ पता नहीं लेकिन प्रभु राम को मेरे हित का पता है। जब न सहन कर पाओ तो देखो कि आखिर मिला क्या ? दरिद्र–अहंकार, धन, संयोग, सम्मान व सुखोपभोग के लिए जीवन की सम्पदा समाप्त करके प्रायः अतृप्त अशान्त दुःखी हो जाता है। लेकिन मोही, लोभी, अभिमानी, अहंकार दरिद्र ही बना रहता है। संसार तुम्हारी ज्ञान शक्ति एवं प्रेम शक्ति नहीं छीन सकता है। तुम विनाशी देह में अविनाशी प्रेम को, ज्ञान को सम्हालो। ज्ञान को संसारिक पदार्थों से न ढकने दो। प्रेम को सुखद के पीछे न लगाओ। आत्म चेतन स्वयं सुख स्वरूप है, परमात्मा आनन्दमय है। संसार में तो उसी सुख का आभास होता है जो मन के अनुकूल होता है। सारी दुनिया, धन, मान, संयोग, भोग के पीछे पागल है। ऐसा कोई क्षण नहीं जब सुख स्वरूप आत्मा सुलभ न हो। बिना कुछ किए ही प्राप्त है। हमेशा उस भगवान की, परमात्मा की लोग याद करते हैं जो दूर हैं, लेकिन जो हमसे भी अधिक निकट हमारे साथ है, उसकी याद नहीं आती।

पथिक

*****

प्रिय नाम रूपों में प्रकाशित ज्ञान स्वरूप को सप्रेम स्मरण,

तुम्हारा पत्र पढ़कर आश्चर्य हुआ कि अभी जिज्ञासा की तृप्ति के लिए श्रद्धा जाग्रत है। तुम शरीर द्वारा किसी को कष्ट न दो। कभी मन दुःखी होता है उसकी फिकर न करो। रामायण की बात याद कर लो **'कोऊ न काहु सुख–दुःख कर दाता'**। कोई किसी को न सुख देता है, न दुःख देता है। मन ही सुख–दुःख मान लेता है। मन सुख न माने तो रागाशक्ति नहीं हो सकती और दुःख न माने तो ईर्ष्या द्वेष, निन्दा, घृणा, कलह, क्रोध नहीं हो सकता है। जब तक मन में लोभ है, मोह है, कामना है, मान की चाह है तब तक दुःख मिलेगा ही। मन ही रागी–द्वेषी बनाता है। मन से ही सारे बन्धन है, यदि मन में कोई चाह न रहे, तो मन मुक्त ही हैं। चाह रहते, कामना रहते किसी को शान्ति नहीं मिल सकती। चाहों के

रहते कोई निष्काम नहीं हो सकता। ममता के पीछे ही कामनाएँ रहा करती हैं। निष्काम ही असंग होता है, असंग ही मुक्त होता है। मुक्त ही परमात्मा का अभिन्न भक्त होता है।

पथिक

*****

प्रिय आत्मन्,

कार्तिक पूर्णिमा में पाली सम्मेलन में अपने श्रद्धालु जन नहीं जायेंगे। जहाँ जो कोई है, वहीं गुरू ज्ञान में बुद्धि को स्थिर करें। अपने श्रद्धा युक्त प्रेमी जनों को यह गुरू सन्देश, उपदेश लिखा गया है। इस पर आप सभी श्रद्धावान बुद्धि युक्त होकर विचार करें।

1. इस देश में 60–70 करोड़ की जनसंख्या में आप लोग जिस नगर या ग्राम में रहते हैं उनमें देखें कितने श्रद्धालु निकलेंगे?बहुत ही कम। दस हजार जनों के बीच में दस श्रद्धालु मिलना कठिन है।
2. तुम भी इसे अनुभव करो कि जो श्रद्धा हमारे हृदय में जाग्रत हुई है यह आत्मदेव की कृपा से हुई है। यह कृपा तभी हुई है जब कि तुम्हारे कई जन्मों की निष्काम सेवा द्वारा पुण्य संचित हुए है। पुण्य तभी संचित हुए है जब तुमने किसी सेवा के बदले कुछ नहीं लिया है। जब सेवा करते हुए तुम्हारा हृदय प्रेम में ही तृप्त सन्तुष्ट हो गया है। श्रद्धा के साथ सभी दिव्य गुण रहा करते हैं।
3. यदि श्रद्धा के द्वारा आत्मज्ञान अथवा परमात्मा की भक्ति प्राप्त न हुई तब अहंकार श्रद्धा एवं दैवी गुणों का भोगी बन जाता है। इसीलिए भय से मुक्ति तथा दुःखों की निवृत्ति नहीं होती।
4. अहंकार अपने को मुक्त भक्त मान लेता है परन्तु कभी भय से, कभी चिन्ता से, अशान्ति से, कभी दुःख से घिरा रहता है। यही अज्ञान है, असत संग है।
5. सच्चा आत्मज्ञानी अथवा भगवत् भक्त वही है जो भय से, चिन्ता से, अशान्ति से, और अन्त में दुःख से मुक्त हो तथा जो निरन्तर शान्ति व आनन्द से भरपूर हो। तुम भगवान के बचन पर ध्यान दो :–

श्रद्धावान लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्धवा परां शान्तिमचिरेणाधि गच्छति।।

जो मनुष्य श्रद्धा से युक्त है, जिसने अपने मन और इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया है वह अपनी सम्पूर्ण चेतन सत्ता में स्थिरता के द्वारा

ज्ञानोपलब्धि के लिए तत्पर रहकर ही ज्ञान प्राप्त करता है। इस ज्ञान का अर्थ यह नहीं लगा लेना है कि वह देश–देशान्तर या लोक–लोकान्तर को जान लेता है।

6. यह वह ज्ञान है जो नित्य है, निरन्तर है, सत्य है और अपना स्वरूप है लेकिन अनेक आकारों से ढका हुआ है। इस ज्ञान को आकारों से मुक्त करते ही तत्काल परम शान्ति का अनुभव होता है। श्रद्धावान ही अज्ञान से मुक्त, इस नित्य सत्य तत्व ज्ञान स्वरूप में स्थिर होता है। इसलिए श्रद्धावान प्रेमियों से निवेदन है कि तुम अपने हृदय की श्रद्धा को देह में, मन में या विनाशी नाम रूप में सीमित न करके ज्ञान को प्राप्त करो।

7. ध्यान रखना? गुरू नित्य ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान स्वरूप के निकट बुद्धि को रखना ही गुणोपासना है। इसके विपरीत देह के निकट रखना देहोपासना है। गुरू देहमय है परन्तु देह नहीं है। गुरू इन्द्रियमय, मनोमय है लेकिन इन्द्रियॉ, मन तथा बुद्धि नहीं है। गुरू सबको सत्ता देते हुए, गति देते हुए, सबसे असंग नित्य चेतन ज्ञान स्वरूप है।

8. कठिन समस्या यह है कि जो श्रद्धावान, सन्त–सदगुरू के प्रवचन सुनते हुए भी अपने को देह मान रहे हैं, जिनकी बुद्धि सूक्ष्म विचार को नहीं ग्रहण कर पाती वह तो गुरू की देह में ही श्रद्धा करेंगे। ऐसे लोगों के लिए तो यही उत्तम उपाय है कि गुरू की देह में उतनी ही ममता दृढ़ करें जितनी ममता अपने प्रिय सम्बन्धी जन की देह में रखते हैं। ऐसे ममतावान व्यक्ति अपने प्रिय सम्बन्धी की सेवा करते हुए ममता के कारण, देह के तथा मन के रागी होने पर भी घृणा नहीं करते, उनका त्याग नहीं करते और दोष की निवृत्ति के लिए उपचार करते हुए प्रीति सहित सेवा ही करते रहते हैं। उसी तरह गुरू की देह की सेवा करते हुए, आज्ञा का पालन करते हुए पुण्य के भागी होते हैं। भगवान का निर्णय है कि जो पुण्य कर्मों के द्वारा पापों को नष्ट करके शुद्ध हुई बुद्धि द्वारा हानि–लाभ, मान–अपमान, सुख–दुःख आदि द्वन्द्वों के प्रभाव से मुक्त रहते हैं वही दृढ़वृत्ती होकर भजन कर पाते हैं। प्रेम में ही समस्त पुण्य बनते हैं, द्वेष घृणा में पाप बनते हैं।

9. ममता एवं प्रीति पूर्वक गुरू की सेवा का यह अर्थ नहीं लगाना है कि गुरू किसी पाप कर्म में अथवा हिंसा चोरी करने को प्रेरित करेगा। सर्वहितकारी कर्मों द्वारा ही गुरू सेवा होगी। जो विचारवान धर्मात्मा हैं,

वह माता–पिता, पति–पत्नी से ममता करते हुए किसी के प्रति हिंसा, चोरी को स्वीकार नहीं करते। श्रद्धावान पाप कर्म नहीं करता।

10. सच्ची ममता रखने वाला व्यक्ति अपने प्रीति पात्र से कभी घृणा, द्वेष नहीं करता। इसी प्रकार गुरू के प्रति श्रद्धा रखने वाला श्रद्धालु गुरू में दोष नहीं देखता। गुणों का अभिमानी, अहंकारी ही दोष दर्शी होता है।

11. दोष दृष्टि से रहित श्रद्धा द्वारा और द्वेष घृणा रहित ममता प्रीति द्वारा सेवा पूर्ण होती है। जहाँ प्रेम नहीं वहाँ पाप बढ़ते हैं।

12. धन तथा सुखोपभोग एवं मान चाहने वाला अहंकार ही निर्दोष श्रद्धा एवं निष्काम ममता नहीं कर पाता। प्रेम में ही अहंकार गलता है।

13. हम अपने विचारवान, विद्वान श्रद्धालु प्रेमियों को सदगुरू वाक्यों द्वारा सावधान करते हैं। तुम भाग–दौड़ बन्द करके जिन गुरू वाक्यों को सुन चुके हो या पढ़ रहे हो उनके अनुसार जो कुछ देहादिक पदार्थ असत्य हैं, मिथ्या हैं, अनित्य हैं उनसे अनासक्त रहो, जो कुछ अथवा जिस व्यक्ति या वस्तु को मन से पकड़े हुए हो उसे ज्ञान से हटा दो। विनाशी देहादिक पदार्थों से असंग रहकर मुक्ति का आनन्द लूटो और परमात्मा से आत्मा द्वारा अभिन्नता का अनुभव करते हुए भक्ति का आनन्द भी अनुभव करो। पूजा–पाठ, तीर्थ यात्रा, सन्त सम्मेलन, प्रवचन श्रवण कथन आदि में कहाँ तक मन लगाते रहोगे?कब तक अहंकार को तृप्त करते रहोगे? अब अपने में ठहरो, ज्ञान में देखो, आत्मस्थ होकर रहो। बाहर की यात्रा छोड़कर अन्तर आत्मा को परमात्मा में, सूर्य में किरण की भाँति अनुभव करो।

14. मैने जो अनेक सन्तों के गुरू वाक्यों को पुस्तकों में लिखा है। उसे मनन करो, उसी में मेरा दर्शन करो और अपने को भी देखो।

पथिक

*****

स्वयं में होना ही सर्वोपरि साधना है
विचार रहित, इच्छा रहित,
संकल्प रहित, चेतना को साधो।
शान्त एवं मौन से अर्न्तदृष्टि खुलती है।

नाम रूप में परमेश्वर की प्रिय आत्मा को सप्रेम स्मरण,

पाँच मिनट नित्य मेरी पुस्तक पढ़ने से बुद्धि को खुराक मिलते रहने से बुद्धि बलवती हो जाती है और सभी प्रश्नों के उत्तर भी मिल जाते हैं।

1. तुम्हें जप करना आवश्यक नहीं हैं, यदि व्यर्थ वार्ता न करो और व्यर्थ चिन्तन में समय नष्ट न करो। बहुत सावधान संयमी साधक भूत–भविष्य से अपने समय को बचाकर केवल वर्तमान में दृष्टा बन सकता है। केवल वर्तमान में रहने से ही सत्योपासना हो जाती है, क्योंकि निरन्तर वर्तमान वही है जो भूत भविष्य न हो, वह है केवल अपना चेतन स्वरूप।
2. व्यवहार में ज्ञान का ध्यान रखो, तो हो सकता है कि अज्ञान में कर्म न हो। केवल दृष्टा बने रहना है, कर्ता नहीं होना है।
3. जितने दोष हैं, पाप हैं, वह अहंकार में ही हैं और सबसे बढ़ा पाप है अज्ञान, में जो सत्य नहीं है अपना नहीं है उसे ही अपना मानना और सत्य मानना। जो स्वयं है उसे न जानना यही पाप है। अहंकार ही दुखी–सुखी होता है। अहंकार झूठा है, छाया है परन्तु सत्य सा प्रतीत होता है।
4. निन्दा करना, सुनना, पाप ही है। पाप को देखना, कहना, सुनना भी मन को अशुद्ध कर देता है। न बुरा देखो, न बुरा कहो, न बुरा सुनो। यह भी सम्भव है जब अपने भीतर लोभ, मोह, अभिमान न हो। मान की, धन की, अधिकार की चाह न हो।
5. तुम सभी सत्संगी नित्य कुछ समय निकालकर सत्संग की पुस्तक पढ़ लिया करो। तब नित्य सत्संग हो जाए, परन्तु आलस्यवश नहीं होता।

मैं अभी यही ठहरूँगा। यहॉ एकान्त मौन की अच्दी सुविधा है। अब तो शायद अपने प्रेमियों से कतिकी में ही भेंट हो, कहा नहीं जा सकता, भविष्य का क्या पता। तुम लोग अधिक दिन नहीं मिलोगी तो श्रद्धा भी ढक जाएगी, जिनकी सुनोगी उसी का प्रभाव पड़ेगा, इधर का प्रभाव दबता जाएगा। अभी जो ज्ञान, ध्यान, साधन, विचार, विवेक बढ़ जाता तो आगे कुछ बना भी रहता परन्तु अपने सभी संगी सुस्त हैं, परवाह नहीं है, मन की पूर्ति का ही पक्ष है। सुख मिले, दुख न मिले, यही चाह है, परन्तु बुढ़ापे में पता लगेगा कि बड़ी दौड़ लगाई सुख के लिए परन्तु अन्त में दुख ही पल्ले पड़ा। सुख तो सरकता ही गया। सबको स्मरण।

तुम पत्र लिखा करो तो जवाबी कार्ड उत्तर के लिए रखा करो। 30 पैसे का लिफाफा न रखा करो। फिजूल खर्च भी न करना चाहिए।

पथिक

*****

नाम रूप में प्रभु की आत्मा को सप्रेम स्मरण,

जो व्यर्थ अनर्थकारी चिन्तन मनन और कर्मों से परे विचार रखते हैं उनकी बुद्धि तीव्र होती जाती है। तुम्हें समझने की क्षमता है, इसे प्रभु कृपा समझना गर्व न आने देना। जो भय, पाप कर्म से बचाता है वह बहुत शुभ है, जो भय सेवा में, समर्पण में, दान में, त्याग में, तप में, प्रेम की पूर्णता में बाधक बनता है वह अशुभ है। जो भय चोरी से बचाए, जिस भय से लोभ, काम क्रोध न किया जाए वह भय बहुत सुन्दर है, क्योंकि काम, क्रोध, लोभ नरक के द्वार है। जिससे परमात्मा से विमुखता बढ़े वही पाप है। जिससे सद्‌गुण न बढ़कर दोष बढ़े, जिससे पतन हो, वही पाप है। ऐसे पाप से भय रखना चाहिए।

1. लेकिन जिसे पाप का ज्ञान नहीं होता वह सरलता पूर्वक तन, मन, धन का दान करता है, बदले में कुछ नहीं चाहता, उसे भय नहीं लगता है। एक बालक को पाप का ज्ञान नहीं है, उसे लोभी आदमी ठग सकता है पर उसे भय नहीं लगेगा, क्योंकि निष्पाप है। उसे सेवा का पुण्य होगा, पाप नहीं होगा। दूसरे के अधिकार की वस्तु को देने में भय रखना उचित है।
2. मितव्ययी होना चाहिए लेकिन कन्जूस नहीं। तुम्हारी मितत्ययता शुभ है कन्जूसी नहीं। जोड़ते रहना खर्च न करना कन्जूसी है।
3. व्यर्थ प्रपन्च चर्चा न सुनना चाहिए, न ही करना चाहिए। किसी की बुराई नहीं करनी चाहिए, न ही सुननी चाहिए। नम्रतापूर्वक कह देना चाहिए कि रामायण में लिखा है– **पर निन्दा सम अध न गिरीसा।**
4. प्राप्त परिस्थिति प्राकृतिक न्याय है उसमें अनुकूल हो तो सेवा करनी चाहिए। प्रतिकूल हो तो इच्छाओं का त्याग करना चाहिए।
5. कर्म करते रहना, भगवान का स्मरण करते रहना अधिक उत्तम है। सब प्राणी परमात्मा के हैं। सब ज्ञान, सब शक्ति परमात्मा की है। इस भाव से सेवा करना भजन हो जाता है। तुम्हारे मन में कामनाऍं,

इच्छाएँ जितनी कम होगी उतना ही तुम वस्तु व्यक्ति के मोह से, भोगाशक्ति से बचती रहोगी। इच्छाएँ मनुष्य को दरिद्र बनाती है। तुम्हारे भीतर भगवान के अच्छे गुण हैं।

पथिक

*****

प्रिय आत्मन,

हमें यह भी समझाया गया है कि तुम्हें जो देह, इन्द्रियॉ और चार प्रकार के मन चित्त आदि अन्तःकरण मिले हैं इनकी शुद्धि के लिए आरम्भ से ही 12 प्रकार के यम का पालन करो।

1. अहिंसा अर्थात मन, वाणी व शरीर से किसी को अपनी प्रसन्नता के लिए कष्ट न दो।
2. विनाशी पदार्थों में अविनाशी सत्य, चेतन–तत्व को स्मरण रखो।
3. ब्रह्म को सुनकर उसी में सब कुछ हो रहा है, ऐसा स्मरण रखते हुए ब्रह्मचारी बनो।
4. संचय के लोभी न बनो।
5. विनाशी पदार्थों से असंग रहो, उन्हें मेरा मानकर ममता आसक्ति में न बंधो।
6. बुरे कार्यों में लज्जा धारण करो।
7. जो निरन्तर है उसी पर निर्भर होकर आस्तिक बने रहो।
8. मौन रहकर व्यर्थ, अनर्थ से शक्ति बचाओ।
9. अस्त–व्यस्त न रहकर स्थिरता का पक्ष लो।
10. प्रतिकूलता में क्षमा धारण करो।
11. भय का त्याग करो।
12. किसी प्रकार की वस्तु जो दूसरे के अधिकार में है, उसे अपनी बनाकर चोरी न करो।

इन 12 यमों के साथ 12 प्रकार के नियम भी व्यास भगवान ने बताये है।

नियम में सर्वप्रथम

1. शौच सर्वान्गों को नित्य शुद्ध रखना न भूलो।
2. जो भी प्रारब्ध से स्वतः प्राप्त है उसमें सन्तोष धारण किए रहो।
3. प्रतिकूलता आने पर सहनशीलता रूपी तप को पकड़े रहो।
4. नियम से अपने भीतर जो कुछ घटित हो रहा है, उस स्वाध्याय के लिए गुरूवाणी का अध्ययन करो।
5. नियमित अनियमित जप करते रहो।

6. भोजन के प्रथम वेश्वानरअग्नि में हवन के भाव से ग्रास डालो।
7. श्रद्धा को दृढ़ रखो।
8. अतिथि सेवा न भूलो।
9. पूज्य की प्रार्थना करो।
10. तीर्थ सेवन।
11. परोपकार।
12. गुरू उपासना नियम से करो।

पथिक

*****

नाम रूप में परमेश्वर की प्रिय आत्मा को स्मरण,

जहॉ प्रेम से भरा हृदय मिलता है वहॉ अद्भुत तृप्ति है। प्रेम में पुण्य ही पुण्य है और अप्रेम में पाप ही पाप है। प्रेम से भरे हृदय की सरलता, उदारता, प्रसन्नता से बहुत ही तृप्ति होती है। अभी वहॉ परस्पर तुम लोग कितने प्रसन्न सन्तुष्ट तृप्त थे। इस समय वही याद आ रहा है। तुम आनन्द को, सुख को किसी पर निर्भर करती हो, तभी भ्रमवश पराधीनता बढ़ जाती है। तुम स्वयं ही आनन्द हो, उसी की छाया सुख है। वही सुख अपने से भिन्न में प्रतीत होता है।

तुम अपने प्रेम में ही सन्तुष्ट रहो। किसी को सुखदाता मानने पर पराधीन हो जाती हो। तुम अपने को प्रेमस्वरूप और ज्ञानस्वरूप, शक्तिस्वरूप अनुभव करो। तुम देह नहीं हो, परन्तु देहमय हो, मनोमय हो। तुम्हीं काममय, क्रोधमय, लोभमय और दयामय, करूणामय बनकर पाप पुण्य की कर्ता बन जाती हो। व्यर्थ वार्ता, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, कलह के साथ ही पराधीनता से बचकर शान्त, प्रसन्न रहो। दुखी होने पर भीतर दोष को पकड़ो। लोभ से, कामना से, आसक्ति से अभिमान व मोहादि से दुख होता है।

तुम्हारी श्रद्धा, उदारता, सरलता और बेवकूफी का स्मरण करते हुए सम्बन्धित सभी साथियों का स्मरण।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी ज्ञान स्वरूप, प्रेम स्वरूप आत्माओं को भिन्न–भिन्न नाम रूप में स्मरण।

तुम लोगों के पत्र मिले। किसी पत्र में बहुत अच्छे वाक्य हैं और भाव को गम्भीरता के साथ व्यक्त किया गया है। यह भी सुन्दर कला है। धीरे–धीरे बुद्धि के विकसित होने पर कलाएँ बढ़ती जाती हैं। अपने से अधिक विद्वानों की संगति से साथ ही अच्छी आध्यात्मिक पुस्तकों के अध्ययन से लिखने की बोलने की सुन्दर कला आती है। तुम लोग सभी बहुत उदार हो, साथ ही अभिमान रहित हो, सरल हो। जितने भी गुण बढ़ते हैं उनके साथ गुरू विवेक होना अत्यन्त आवश्यक है। विवेक होने पर गुणों द्वारा सही सेवा हो पाती है।

एक व्यक्ति जो लेना ही जानता है, लेने के मौके खोजता है। एक व्यक्ति लेता भी है, देता भी है, पर मांगने पर देता है। एक व्यक्ति देता है पर कन्जूसी करता है, छिपाता है, बचाता है। एक व्यक्ति देने के अवसर खोजता है। कोई व्यक्ति देता है पर बाद में पछताता है। एक व्यक्ति देकर अपने को धन्य मानता है और जितना दे पाता है उतने को सार्थक समझता है। एक व्यक्ति देता है परन्तु मधुर वाक्यों का प्रयोग नहीं कर पाता, संकोच करता है। एक व्यक्ति इतना सरल और प्रेम से भरा हुआ होता है कि कुछ देता है, वह मधुर वाक्यों के साथ, आदर सम्मान के साथ देता है और अपना सौभाग्य मानता है। एक व्यक्ति सेवाव्रत में चलकर थोड़ी प्रतिकूलताओं के आने पर पीछे हट जाता है। एक व्यक्ति बड़ी गम्भीरता के साथ सहिष्णुता द्वारा अपनी निर्बलता में बल साहस प्राप्त करके दानी बना रहता है। दोषों का त्यागी होता जाता है।

जिसमें जितने गुण बढ़ते जाते हैं, दोष घटते जाते हैं, उतनी ही सेवा में वह सफल हो पाता है। दोषों के त्याग में तथा आदतों के बदलने में, प्रेम को कामना रहित बनाने में और ज्ञान के अनुसार जीवन को सुन्दर बनाने में अनेक जन्म लग जाते हैं।

तुम लोग पहले जन्म में जितनी निष्कामता बढ़ा सकी हो जितनी उदारता, नम्रता, सरलता बढ़ा सकी हो, वहीं से अब आगे उन्नति होनी है। यदि समय को, शक्ति को व्यर्थ बरबाद न करो तब बहुत उन्नति हो सकती है। श्रद्धा बिना कोई ज्ञान प्राप्त नहीं करता। तुम लोगों में श्रद्धा जाग्रत है परन्तु मन में कामनाएँ, वासनायें भी है, सभी में होती हैं। अभी तो लोभ, मोह, अभिमान ही बढ़ेंगे। जो जितना सावधान रहेगा उतना ही अपने प्रेम को शक्ति को दोषों के पीछे नष्ट न करेगा। प्रेम को, शक्ति को, सेवा में ही

लगाएगा।

इच्छायें न बढ़ने दो, जो अपने आप पूरी हो जाएँ उतने में ही सन्तोष करो। व्यर्थ चिन्तन मनन से बचती रहो। अध्ययन में समय सार्थक करो। सेवा में शक्ति सार्थक करो। सद्‌गुणों को बढ़ाने में श्रद्धा और ज्ञान सार्थक करो। भोजन का ज्ञान आवश्यक है, तुम लोगों में किसी–किसी शरीर में रोग चल रहे हैं यह भोजन की गड़बड़ी से ही हैं। सब प्रकार का ज्ञान आवश्यक है। कुछ बीमारी लोग छिपाते हैं वह बढ़ती जाती हैं। रात को सोते समय परमात्मा का स्मरण अवश्य कर लो, अभ्यास बन जाएगा।

तुम लोग पुण्य प्रताप से जो चर्चा सुन रही हो, जो बातें पढ़ रही हो, यह हजारों बालिकाओं को पढ़ने सुनने को नहीं मिलती। चारों ओर वही सुनने देखने को मिलता है जिससे इच्छाएँ, कामनाएँ जागती हैं। कुछ सुनने की इच्छा, देखने की इच्छा तथा किसी प्रिय से मिलने की जितनी अधिक कामना बढ़ती है उतना ही मन अशान्त दुखी होता है परन्तु सुख से तृप्ति, शान्ति कभी नहीं मिलती। इसीलिए जो विवेकी देवियाँ हैं जिनकी बुद्धि में परिणाम देखने की शक्ति बढ़ जाती है वह अपने मन की पूर्ति का पक्ष न लेकर अपने प्रिय माता–पिता, भाई–बहिन अथवा परिवार के प्रिय पति, सास–ससुर की सेवा करते हुए सन्तुष्ट रहती हैं। तुम अभी से अपने मन की पूर्ति का पक्ष न लेकर सेवा करो। जिससे परिवार वालों को दुख हो, वह काम न करो। मन को किसी रूप में अथवा वस्त्राभूषण में या किसी की बातों में या स्नेह में मोहित होने से बहुत बचाओ।

जो सदा सर्वदा सर्वत्र है वही सत् परमात्मा है। जो निरन्तर बना रहता है उसे ही नित्य कहते हैं। जीवात्मा नित्य है शरीर अनित्य है। दुःख की पूर्णता में ही कोई ज्ञान, दान व सत्य का अनुभव कर सकता है। अनित्य सुख से विरक्त होकर नित्य आनन्द को प्राप्त कर सकता है।

एक सयानी शिक्षित बालिका धनी परिवार में रहकर अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होने से अनेकों प्रकार की सुविधाओं के साथ भी दुखी होती रहती है क्योंकि इच्छाएँ उसे भिखारी एवं दरिद्र बनाये रहती है। तुम इच्छाएँ न बढ़ने दो। कोई ऐसी बालिका भी देखी जाती है जो निर्धन परिवार के साथ रहते हुए शान्त है, प्रसन्न है, क्योंकि वह इच्छाओं को बढ़ने नहीं देती। प्रारब्धवश जो कुछ सुलभ है उतने से ही सन्तुष्ट है और प्रेम भाव से सेवा को ही सौभाग्य समझती है। कष्ट उसे कहते है जो शरीर

के द्वारा भोगा जाता है। दुख उसे कहते हैं जो मन के द्वारा भोगा जाता है। आनन्द उसे कहते हैं जो भीतर आत्मा में रहता है।

पथिक

****

नाम रूप में चेतन स्वरूप आत्मन,

तुम अहंकार को लपेटकर देह में बैठकर देहमय बन रही हो, वास्तव में आत्मा न नर है न नारी है। वह ज्ञान स्वरूप ही है, वही तुम हो। गलत अभ्यास के बदले में सही मनन करो। शरीर से, मन से, वाणी से, सेवा कर्म करते हुए नहीं बल्कि होते हुए देखो। कर्ता, भोक्ता न बने रहो। दैवी गुण ही आदर्श प्रेम का परिचय देते हैं। दैवी गुणों के द्वारा ही मनुष्य पुण्यों में वृद्धि कर पाता है और पापों को नष्ट कर लेता है। लोभ, अभिमान के कारण ही अनेक पाप बनते हैं। भय, चिन्ता, अशान्ति अपने को देह के साथ मिला देने से ही होती है। देह से, मन से, बुद्धि से, अहंकार के दृष्टा बनकर सब कर्म देखते रहने से संग का प्रभाव भी नहीं पड़ता है। जो कुछ बार–बार दोहराया जाता है उसी का अभ्यास हो जाता है। तुम स्वयं सत् चेतन आत्मा हो। देहमय बनने से ही विमुखता है, मौन शान्त होकर चेतना में मन बुद्धि को कुछ क्षण स्थिर करके देखो, तुम स्वयं ही ज्ञानमय हो, शान्तिमय हो, आनन्दमय हो।

पथिक

****

विनाशी और क्षण–क्षण परिवर्तनशील देह के लिए हुए अविनाशी और सदा एक रस चेतन स्वरूप आत्माओं को भिन्न–भिन्न नाम रूपों में स्मरण।

अच्छी जिज्ञासा के लिए हुए तुम्हारा पत्र पढ़ने में अच्छा लगा। मनुष्य को जो कुछ मिला है वही उसके कर्मों का फल है। आगे वही मिलेगा जिसके लिए विधिवत कर्म करेगा। मनुष्य अपनी समझ के अनुसार ही कर्म करता है। समझ अथवा बुद्धि भी तीन प्रकार की होती है। उत्तम बुद्धि वह है जो प्रत्येक कर्म के अन्तिम परिणाम को देखती है। जो संयोग के आगे वियोग को देखती है। लाभ के साथ ही चलने वाली हानि को देखती है। जो सम्मान के पीछे कभी होने वाले अपमान को देखती है, जवानी के पीछे बुढ़ापा को देखती है, शरीर के साथ मृत्यु को देखती है। मध्यम बुद्धि वह है जो लाभ को ही देखती है लेकिन साथ बढ़ने वाले लोभ

को नहीं देखती है। प्रिय सुखद संयोग के साथ वियोग को नहीं देखती है अर्थात परिणाम को नहीं देखती है। अधम बुद्धि वह है जो देह में ही अटकी रहती है, उसी की चिन्ता, रक्षा व भय से कम्पित रहती है।

मोही, लोभी, अभिमानी की संगति से लोभ, मोह, अभिमान ही बढ़ता है। श्रद्धा होने पर ज्ञानी, निर्लोभी, निर्मोही, त्यागी, दानी की संगति व प्रीति होने पर वही गुण बढ़ते हैं। जैसा पढ़ोगी, जैसा सुनोगी उसी के अनुसार बुद्धि में विचार बनेंगे। सद्बुद्धि की सहायता से सत्–असत्, पाप–पुण्य, कर्तव्य–अकर्तव्य का विवेक होता है। जीवन में जो सुख–सुविधा, सन्तोष–शान्ति थोड़ी बहुत सुलभ है वह बुद्धि का ही प्रताप है। अच्छी बुद्धि के साथ मन नर्क को स्वर्ग बना लेता है। खराब बुद्धि के साथ यही मन स्वर्ग को नर्क बना देता है। तुम लोग बुद्धि को सूक्ष्मदर्शी, सत्यदर्शी, परिणामदर्शी बनाओ। फैशन की नकल, चंचलता की नकल, अभिमानी की नकल करना, किसी भी विचारहीन मूर्ख–मूढ़ के लिए आसान है, लेकिन अच्छे शब्दों का अभ्यास, सहनशीलता, नम्रता का अभ्यास, दूसरों को उनके अधिकार मर्यादानुसार मान देने का तथा सेवा करने का अभ्यास, सादगी का अभ्यास, हाथ पैर के नाखून, वस्त्र, स्थान, बिस्तर तथा पात्रों की स्वच्छता का अभ्यास विरली ही विदुषी देवी को होता है। तुम लोग विचार शक्ति बढ़ाओ, अच्छी पुस्तकों का पॉच मिनट नित्य अध्ययन का नियम बना लो। नित्य नियम से अध्ययन करते–करते हजारों लाखों नर–नारी विद्धान बन जाते हैं। गीता प्रेस में 2–3 बालिकाओं ने नित्य गीता का पाठ नियम से किया तो कुछ दिनों में गीता 18 अध्याय कण्ठस्थ हो गया। तुम यदि नियम से 5–7 मिनट मेरी पुस्तकें पढ़ती रहो तो 2–3 साल में इतना जान जाओगी कि दूसरों को बता सकोगी।

श्रद्धा, प्रीति की पूर्णता में ही आज्ञा पालन की शक्ति रहा करती है। तुम लोगों की श्रद्धा में अभी से जो कुछ भर जायगा वह आगे अंधेरे में प्रकाश का काम करेगा। बुढ़ापा में वह न हो पाएगा जो अभी हो जाएगा, आगे चलकर यह लगन न रहेगी, इतना आदर न रहेगा, प्रीति में अनेक नाम, रूप भर जायेंगे तब आज जो कुछ है वह ढक जाएगा। इतनी उदारता, नम्रता रहना मुश्किल है। कोई बिरले ही ज्ञान को प्राप्त करते हैं, श्रद्धा से ही ज्ञान सुलभ होता है।

पथिक

*****

नाम रूप में चेतन स्वरूप आत्मन,

संग से मन में वही प्रगट होता है जो पहले से छिपा होता है, उसे देखना चाहिए। शुभ सुन्दर के अनुसार सेवा, त्याग, दान करना चाहिए लेकिन मन जो अपनी पूर्ति चाहता है उसे नहीं मानना चाहिए।

मन को अपना न मानो और न मन की मानो। ज्ञान में देखो, परिणाम को देखते हुए सत्–असत् को जान कर असत अनित्य में प्रीति न फॅसने दो। विकार भीतर हैं तो संग से उमड़ेंगे ही। संग के प्रभाव से ही काम, क्रोध, लोभ, मोह उमड़ते हैं। श्रद्धा, दया, करूणा, उदारता, निष्कामता, सेवा भावना भी जाग्रत होती है। उदार, दानी, आत्मज्ञानी, संतोषी, विनम्र, सेवापरायण श्रद्धालु भक्त की संगति से दैवीगुण जाग्रत होते हैं।

संगति से बहुत बचना चाहिए। एकान्त में अध्ययन, भजन और परिवार की सेवा में लगे रहना उत्तम है। व्यर्थ वार्ता, व्यर्थ भ्रमण तथा विकार बढ़ाने वाली संगति से बचना चाहिए।

पथिक

*****

परम प्रेम स्वरूप परमात्मा की आत्मा को विभिन्न नाम रूप से स्मरण,

तुम्हारे प्रश्न जीवन सम्बन्धी रहते हैं इसीलिए उत्तर देना आवश्यक हो जाता है। संकल्प–शुभ, अशुभ और शिव संकल्प तीन कोटि के होते हैं। अशुभ संकल्प जिनसे दूसरों को हानि हो, दुख हो। शुभ संकल्प वे हैं, जिनसे दूसरों का और अपना लाभ हो। शिव संकल्प वे है जिनसे दोषों का नाश हो, गुणों का विकास हो और परमात्मा की भक्ति हो, बन्धनों से मुक्ति हो। प्रायः शुभ संकल्प में ही मन की पूर्ति रहा करती है जैसे–तीर्थ जाना, मन्दिर दर्शन करना, मन्दिर बनवाना, यज्ञ करना, सम्मेलन करना यह शुभ संकल्प है परन्तु इनसे भी अहंकार को, मान प्रतिष्ठा का लालच रहा करता है। राग–द्वेष, निन्दा–घृणा भी साथ चलते हैं।

उत्तम तो यह है कि अपने मन की पूर्ति के लिए कोई संकल्प न हो किन्तु दूसरों के शुभ हितकर संकल्प की पूर्ति हो, इससे सेवा बन जाती है। किसी की बुराई करने से, बुरा सोचने से बचती रहो, यहॉ तक कि बुराई देख लो, तब भी किसी दूसरे से न कहो। कोई बुराई करे, तो तुम

बुराई सुनकर उसे बुरा न समझो, परमात्मा सब जानता है, उसी में सबका कल्याण है। सत्य तो यह है कि बुरा सोचना ही अज्ञान है। अपने भीतर के क्रोध, लोभ, अभिमान, ईर्ष्या, द्वेष, आदि को देखना चाहिए, दूसरों के नहीं। तुमने सत्संग में आने को पूछा तो अम्मा, बाबू यदि लाएं तो अवश्य आओ। अभी तुम्हारी बुद्धि में जो बैठ जाएगा वही आगे सहायक बनेगा। आगे चलकर पता नहीं अवसर मिले या न मिले। भागवत में लिखा है कि युवावस्था के आरम्भ से ही धर्मज्ञान व परमार्थ लाभ का प्रयत्न करना चाहिए। वृद्धावस्था में फिर कुछ नहीं हो पाता, बाबू लायें तो अवश्य आना। जो लोग मुझे याद करते है, मैं उन्हे स्मरण में आते देखता हूॅ।

पथिक

*****

पावन श्रद्धा से अपने श्रद्धास्पद को सन्तुष्ट प्रसन्न रखने वाली देवियों।

तुम्हारे बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न हैं। आयु भले ही शरीर की अभी अधिक नहीं है, लेकिन भावों, विचारों में तुम अनेक वृद्ध माताओं से आगे हो। धन, कुल, रूप, माता–पिता, पति, पुत्र आदि भाग्यानुसार मिलना निश्चित है। बुद्धि, मन इन्द्रियॉ मिल चुकी हैं अब इनके द्वारा पुण्य बढ़ाना और पुण्य के लिए सद्विवेक प्राप्त करना तुम्हारे प्रयत्न व पुरूषार्थ पर निर्भर हैं।

भाग्य से तन मिला है। अब चाहे सेवा करके पुण्य करो या फिर सेवा लेकर पुण्य नष्ट कर दो। मन–वाणी से चाहे पाप बढ़ाओ या फिर पुण्य बढ़ा लो। बुद्धि को धन भोग में लगाये रहो या फिर ज्ञान को बढ़ाकर अपने जीवन को बन्धन मुक्त बना लो। समस्त पाप असावधानी से, लोभ, अभिमान से प्रगट होने वाले क्रोध से, ईर्ष्या, द्वेष से बढ़ते हैं। समस्त पुण्य ज्ञान में कर्म के परिणाम को देखते हुए प्रेम के द्वारा बढ़ते हैं। जितनी देर प्रेम से, किसी को अपना मानती हो उतनी देर दान करना, सेवा करना, प्यार करना, मान देना सब कुछ सुगम हो जाता है। प्रेम घटा या हटा वहीं से पाप आरम्भ हो जाते हैं। वस्तु तथा व्यक्ति में सीमित प्रेम मोही, लोभी, अभिमानी बना देता है। प्रेम की सीमा तभी समाप्त होती है जब व्यक्ति असीम परमात्मा तक पहॅुच जाता है। फिर भी प्रेम में ही पुण्य बनते हैं, अप्रेम में पाप बढ़ते हैं। श्रद्धा में पुण्य बढ़ते हैं। अश्रद्धा होते ही पाप बढ़ते

हैं। अप्रेमी ही दूसरों को कष्ट देता है। जो अपने तन की, मन की पूर्ति चाहता है उसी से दूसरों को कष्ट होता है। जो तन का मोही है, धन का तथा वस्तु का लोभी है उससे दूसरों को कष्ट ही होगा।

1. तुम लोग माता–पिता आदि जिसे चाहती हो, उसे सुख ही दोगी और माता–पिता, पति–पत्नी आदि से जो अपने मन की पूर्ति चाहेगा वह कष्ट ही देगा।
2. तुम लोग जब कभी दुःखी होती हो, तो मन के दोषों की खोज करो। हानि का दुख है तो भीतर लोभ है। अपमान का दुख है तो भीतर अभिमान है। मन की आपूर्ति अर्थात सुख न मिलने का दुख है तो मन में कामना है। यही सब दोष हैं।
3. रामायण में लिखा है कि **''कोउ न काहु सुख–दुख कर दाता''** अनुकूलता प्रतिकूलता कर्म अनुसार आती है और उसमें सुख–दुःख मान लेने पर होता है। दूसरा कोई न सुखदाता है न दुखदाता है। हम सुख–दुख मान लेते हैं।
4. तुम्हें आराधना करने पर सन्तोष इसलिए होता है, क्योंकि जितनी देर करना था उतनी देर कर चुकती हो। निश्चित समय के बाद यदि करना पड़े तो मन ऊब जाएगा, परेशानी होगी।
5. अहंकार जो कुछ करता है उसी में सन्तुष्ट होता है, जो नहीं कर पाता उसमें असन्तोष होता है।

तीन ठौर सन्तोष कर, धन भोजन सुख माहि।
दान, अध्ययन, भजन में, कबहु न करिए नाहि।।

सुखोपभोग में, भोजन में, धन में सन्तोष करो, जितना भाग्य में था मिल रहा है, मिल चुका है, आगे मिलता रहेगा। भजन, आराधना, दान में, स्वाध्याय में, गुणों की वृद्धि में, ज्ञान की वृद्धि में, प्रेम को निष्काम बनाने में सन्तोष नहीं करना चाहिए।

6. तुम लोग जितनी लगन के साथ तत्पर रहकर ज्ञान बढ़ा लोगी, वही आगे काम आएगा। सेवा के बिना शक्ति, दान के बिना धन, ज्ञान के बिना विद्या, प्रेमास्पद प्रभु के प्रति समर्पण बिना जीवन व्यर्थ है। तुम लोग योग्यता, विवेक, ज्ञान और सद्गुण बढ़ाते रहने के लिए सावधान रहो।

सद्‌शिक्षा और स्मरणीय किताब के दोनों भाग नित्य पॉच मिनट पढ़ लिया करो। भले ही अभी समझ में न आए, परन्तु पढ़ते–पढ़ते हिन्दी अच्छी हो जाएगी और समझ में आने लगेगा। जितनी अच्छी पैनी बुद्धि होगी, उतनी ही अच्छी तरह जल्दी समझ में आएगा। जिसने इस जन्म से शुरू किया है उसे समझने में देर लगेगी। शरीर बदल जाता है लेकिन पहले जन्म का अभ्यास बना रहता है, वही सात वर्ष से प्रकट होने लगता है। तुम लोग बहुत अच्छी श्रद्धालु हो। दोष बताने पर भी तुम्हारे भीतर आत्मीयता का भाव कम नहीं हुआ। तुम सबकी उदारता, सरलता, नमृता, दानशीलता, प्रसन्नता और ज्ञान की प्यास याद करके बहुत प्रसन्नता है। अब देखना है कि तुमसे कितनी जल्दी दोषों का त्याग तथा सद्‌गुणों का विकास होता है। देखने में आएगा कि कौन कितनी निष्काम सेवा की तैयारी करता है। लेने की दरिद्रता छोड़कर देने में तत्पर रहता है। मेरे लिए तो तुम लोग बहुत ही विनम्र हो, उदार हो, दानी हो, कामना रहित हो, धनी हो, दरिद्र नहीं हो।

पथिक

*****

दयामयी, श्रद्धामयी, ज्ञानमयी प्रीति को प्रिय नाम रूप में स्मरण।

1. क्रोध किया नहीं जाता वह तो मन पर प्रबल हो जाता है, तब मनुष्य जो न करना चाहिए वह करने लगता है। मनुष्य क्रोध में, लोभ में, काम में, मोह में होकर ही शक्ति का दुरूपयोग करता है। तुमसे अचानक कोई कहे कि क्रोध करो तब नहीं कर सकोगी। लेकिन प्रतिकूलता में जब लोभ सवार होगा तब कहा जाए कि क्रोध न करो उस समय रूकना कठिन होगा। लोभी को तो कुछ मिल भी जाता है लेकिन क्रोधी को तो उस समय कुछ नहीं मिलता, शक्ति अवश्य व्यय हो जाती है। यदि क्रोध करने से विजय मिलती है तो ठीक है लेकिन विजय भाग्याधीन है। क्रोध में शक्ति का प्रयोग अवश्य तीव्रता से होता है।

2. सत चर्चा–ज्ञान चर्चा यदि किसी को प्रिय नहीं है, श्रद्धा नहीं हैं, तो नहीं करनी चाहिए। लेकिन जब बोले, तो विवेक की ही बात, गुरू ज्ञान सम्मत बात करना चाहिए। उपदेश न देना चाहिए, बल्कि यह

कहना चाहिए कि मैंने पढ़ा है या सुना है।

3. **"आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।"** जो अपनी ही समझ से सेवा करेगा वह या तो महाज्ञानी होगा या मूर्ख होगा।

4. तुम्हारे भीतर जो अभी नहीं है। वह सब संग से प्रकट हो जाएगा। जो दोष या गुण भीतर छिपे हैं वह संग से ही जाग्रत होंगे। जो दोष पहले जन्म में समाप्त हो गया है वही नहीं जागेगा। बुद्धि से जानते हुए भी मन में द्वेष, काम, क्रोध, लोभ आदि प्रबल होते रहते हैं। प्रेम के द्वारा ही दोषों का त्याग सुगम होता है। मोही अपनी पूर्ति के लिए किसी को चाहता है, लेकिन प्रेमी अपने प्रेमपात्र की सन्तुष्टि के लिए अपने तन–धन को देना चाहता है। प्रेमी देकर सन्तुष्ट होता है, मोही लेकर सन्तुष्ट होता है।

5. पशु प्रकृति, राक्षसी, दानवी प्रकृति पर क्रोध से विजय मिलती है। यदि शक्ति नहीं है तो क्रोध से बड़ी पराजय होती है। सर्वोपरि सफलता प्रेम में ही है। लेकिन लोभी, अभिमानी कामी प्रेम मय नहीं होता है।

पथिक

*****

ज्ञान स्वरूप आत्माओं को प्रिय नाम रूप में स्मरण।

1. सुख के कारण दुख नहीं होता, बल्कि सुख का भोगी जब कामना करता है तब दुख होता है।
2. अनुकूलता के राग से प्रतिकूलता में द्वेष होगा।
3. क्रोध प्रगट हो तो क्रोध पर तुम चढ़ जाओ, क्रोध तुम्हारे ऊपर न चढ़ने पावे, फिर देखो कि वह क्या करना चाहता है।
4. दिन में अनेंको बार यह याद रखो कि यह देह मैं नहीं हूँ देह मेरी नहीं है। अहंकार मिली हुई देहादिक वस्तुओं का भोगी होता है और विवेकी मिली हुई वस्तुओं से निष्काम सेवा करता है।
5. न तुम पापी हो, न गरीब हो, न अमीर हो, तुम तो ज्ञान स्वरूप हो।
6. जितनी देर ज्ञान में कुछ पदार्थ न होगा, तब तक तुम मुक्त रहोगी।

7. दुखी की सहायता कर देनी चाहिए, इसे सेवा न समझना चाहिए, दान तो विद्वान को करना चाहिए।

8. जिस देवता का स्मरण चिन्तन करो वही तुम्हारे ज्ञान स्वरूप गुरू हैं।

पथिक

*****

प्रश्नोत्तर : –

1. पारस्परिक व्यवहार में सम्बन्ध के अनुसार देह से व्यवहार बर्ताव चलेगा। लेकिन ध्यान में, एकान्त में बार–बार यही विचार दृढ़ करना है कि यह देह एक मकान की भाँति है, वस्त्र की भाँति है, मैं केवल चेतन हूॅं, केवल ज्ञान ही हूॅं। ज्ञान में जो कुछ वस्तु व्यक्ति स्वीकार कर लिए जाते हैं वह अपने लगते हैं।

   रंगमंच में एक ही व्यक्ति कई रूप बदल कर, वस्त्र बदलकर अपना पाठ (रोल) पूरा करता है लेकिन कपड़े उतार कर जो होता है वही अपने को जानता है। तुम बेटी, बहिन, पत्नी, सास, देवरानी, जिठानी जो कुछ बनो या बनायी जाओ, उसके अनुसार व्यवहार करो। अपने अधिकार की रक्षा करो, पर एकान्त में चेतन स्वरूप आत्मभाव का अभ्यास दृढ़ करो।

2. अहंकार ही अपने को निर्दोष तथा दूसरे को दोषी साबित करना चाहता है। इसे अपना सम्मान अतिप्रिय है।

3. मूर्खता पूर्ण कार्य करना अभ्यास के कारण है। बुद्धि में जानने की शक्ति है। मन में आदत के अनुसार करने का अभ्यास है।

4. जो लोग कम बोलते हैं विचार करने के अभ्यासी होते हैं, उन्हें गलती करने के प्रथम ही गलती दिख जाती है। कम बोलने की आदत बढ़ानी चाहिए।

5. अहंकार में ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान की अधिकता के कारण बदले की भावना रहती है। प्रेम की अधिकता में या ज्ञान में सब अपने ही समान आत्मा है, ऐसा निश्चय होने से बदले की भावना नहीं रहती। व्यवहार में, राजनीति में दुष्ट के साथ (दुष्टता) वैसा ही व्यवहार करना ठीक है। साधु नीति में असाधु के सामने साधु रहना, झूठ को सत्य से

जीतना व कन्जूस को दान से जीतना लिखा है।

6. तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति कर्म करता है।
7. लाखों करोड़ो में कोई अहंकार को देख पाता है फिर अहंकार से मुक्त होने का यत्न करता है। यत्न करते–करते कोई–कोई मुक्त हो पाता है।
8. अभी तो तुम मन से, तन से वाणी से, अपने सुख के पीछे किसी को दुख न दो, यही बहुत बड़ी समझदारी है, फिर अपने सम्बन्धियों को मान देकर, प्यार देकर, सेवा के द्वारा सन्तुष्ट रखो, यही बहुत बड़ा पुण्य है।
9. ज्ञान में जाग्रत रहने पर अभिमान, लोभ, मोह, ममता से छुटकारा मिल सकता है।

पथिक

*****

प्रिय आत्मन,

विनाशी देहों में अविनाशी प्रेम स्वरूप, ज्ञान स्वरूप, शक्ति स्वरूप आत्मा को नाम रूप में अति मधुर, श्रद्धा एवं प्रीति को स्मरण करते हुए यह हृदय सन्तुष्ट है, प्रसन्न है।

तुम सभी लोग श्रद्धा पूर्वक सेवा करते हुए श्रमदान में बहुत ही उदार हो, तुम लोगों में अहंकार अब इतना पिघल रहा है, कठोरता गल रही है कि आघात होता ही नहीं। कटुता, कर्कशता, क्रोध, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, कृपणता, अश्रद्धा आदि दोष कठोर अहंकार में ही रहते हैं।

जितने भी प्रभाव होते हैं वह रागी और दोषी बनाते हैं। अनुकूलता के संग से राग बढ़ता है प्रतिकूलता में द्वेष बढ़ता है। कामना युक्त मन कभी सुन्दर रूप में सम्मोहित होता है। कभी रूप में नहीं, तो अच्छे गुणों में, अच्छे स्वभाव वाले व्यक्ति में सम्मोहित होता है और कभी ज्ञान से प्रभावित होता है। अज्ञान में कोई वस्तु, व्यक्ति, सुन्दर, गुणवान महान प्रतीत होता है परन्तु ज्ञान में देखने पर अनन्त नाम रूपों के पीछे सौन्दर्य तो प्रेम स्वरूप परमात्मा का ही है। समस्त सद्गुण एवं ज्ञान परमात्मा का ही है, किसी व्यक्ति का नहीं है। लेकिन कामना युक्त मन व्यक्ति व वस्तु में

अटक जाता है, परन्तु विवेकमयी बुद्धि वस्तु के आश्रय तत्व को जानकर सौन्दर्य निधान माधुर्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, प्रेमस्वरूप परमात्मा में सम्मोहित होती है।

पथिक

*****

प्रिय आत्मन,

तुम मेरे लिए तो बहुत उदार हो, कंजूस भी हो, विचारशील हो और मूर्ख भी हो। विवेकी हो, कहीं मूढ़ भी हो। तुम बहुत आत्मीयता को लिए हो। श्रद्धालु, परन्तु अश्रद्धालु कहीं नहीं, तो यह बहुत विशेषता है। तुम जिस किसी में गुण देखो वह भगवान के ही देखो। व्यक्ति को गुणवान मानकर व्यक्ति के पुजारी बनने से सावधान रहो और दोष देखो तब अहंकार के देखो। अहंकार की उपेक्षा करो, उदासीन रहो।

मन से मन का सम्बन्ध जोड़ो। वर्तमान में जो करना है, उसे ही पूर्ण करो, आगे पीछे का मनन न करो। किसी की कीमत बढ़ाकर, अपनी कीमत घटाकर मनुष्य पराधीन हो जाता है। भोगी बन जाता है। तुम अपने साथ परमात्मा के प्रेम का तथा अखण्ड ज्ञान का एवं प्रत्येक गति के पीछे परमात्मा की शक्ति की महिमा में सम्मोहित रहो। व्यक्ति को महिमावान न मानो।

जो दोष दिखाई दें उन्हें अहंकार के समझकर तटस्थ रहो। दोषों के अनुसार (कर्म न करो) कर्ता न बनकर दृष्टा बनो। किसी के मान–दान को, प्रीति दान को, अधिकार दान को स्वीकार ही न करो, जो कोई भला–बुरा दे उसे ही लौटाती रहो। भगवान का दिया हुआ ही देखो। व्यक्ति को दाता न मानो, इस विज्ञान में सभी का हित है। तुम सबकी निकटता का आनन्द ले रहा हूँ।

पथिक

*****

पुण्यवती श्रद्धालु सद्गुण सम्पन्न देवी!

तुम दो–तीन मिनट दिव्य मन्त्रणा पढ़ लिया करो, अधिक देर न

पढ़ना, बल्कि कई बार पॉच–पॉच मिनट भले ही पढ़ना, लेकिन एक साथ आधे घण्टा, पन्द्रह मिनट न पढ़ना। उससे समाधान होता रहेगा। जब प्रश्न उठे शान्त हो जाओ, जहॉ से प्रश्न उठते हैं वहीं से उत्तर मिल जायेगा। जो कुछ करो पूरा मन लगाकर प्रेम भाव से करो। सम्बन्धित जनों की सेवा का अवसर मिले तब उनके अधिकार के अनुसार श्रम में आलस्य न आने दो। वाणी पर संयम रखकर बहुत मधुर–मधुर शब्दों का प्रयोग करते हुए मान देकर या प्यार देकर उसे सन्तुष्ट करो। वाणी को बेकाबू न होने दो, बहुत कम बोलो। अभिमान, गर्व न आने दो, किसी को सम्मान देकर उसका अपमान न करना। कर्कश, कठोर वाक्यों का कभी प्रयोग न करना, जिससे प्रीति करना उससे घृणा न करना। जो कुछ किसी को देना प्रेम से देना, खीझ कर न देना। बाल्यकाल में संग के प्रभाव से यदि मन में, वाणी में गलत संस्कार दृढ़ हो गए हैं तो उन्हें सही अभ्यास से बदला जा सकता है। मन में जहॉ तक कामना पूर्ति का पक्ष रहता है वह भी प्रेम पात्र की सेवा करते हुए जहॉ कहीं दोषों का पता चले उस दोष का त्याग करते हुए प्रेम को निष्काम बनाया जा सकता है। किसी से प्रीति तभी होती है जब उससे मन की पूर्ति होती है और ऐसी भी प्रीति होती है कि प्रेमास्पद के मन की पूर्ति में ही सुख व सन्तोष मिलता है। उस पूर्ति में इतनी सावधानी रखनी होती है कि किसी के अधिकार का विरोध न हो और कोई अहितकारी प्रवृत्ति न हो। अपने मन की पूर्ति के पक्ष में ही हिंसा, अपराध, पाप बनते रहते हैं।

श्रद्धा में ही ज्ञान द्वारा मुक्ति पाना और प्रेम द्वारा भक्ति पाना साथ ही सेवा व दान द्वारा पुण्यों की पूॅजी बढ़ाते जाना सरल सुगम हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के मन पर अनुकूलता–प्रतिकूलता का प्रभाव पड़ता ही है। आरम्भ में सभी की प्रीति जिस वस्तु से या व्यक्ति से सम्बन्धित होती है वह बहुत ही सुखद प्रतीत होती है इसलिए उसी का चिन्तन मनन चलता रहता है। प्रीति बिखरते रहने पर फिर वह प्रगाढ़ता नहीं रह जाती। आपको बताया गया है कि जिस प्रकार शक्कर जिस पदार्थ में मिल जाती है वही मीठा लगता है चाहे पानी हो या आटा हो, खोया हो, जो कुछ भी हो, सब मीठा लगता है। उसी प्रकार प्रीति जिससे मिलती है वही सुखद प्रतीत होता है, प्रीति हटने पर वही घृणास्पद हो जाता है।

मन पर उसी का प्रभाव पड़ता है जो मन को सुखद प्रतीत होता है। जिस पर मन सम्मोहित हो जाता है, यह सम्मोहन कामना के कारण होता है। निष्कामना में नहीं होता।

प्रीति ही सुखमय है। आरम्भ में प्रीति सुख पाने के लिए होती है और विशेष पुण्य बढ़ने पर वही प्रीति सुख देने के लिए होती है। प्रीति के कारण ही संयोग का सुख और उसी के अनुपात में वियोग का दुख भोगना पड़ता है। जिस प्रीति के साथ श्रद्धा का योग होता है वह उत्तरोत्तर पवित्र व निष्काम होती जाती है। अपने श्रद्धालुओं का मुझे पता है कि श्रद्धा के कारण मेरी बात बहुत ध्यान से सुनते हैं और प्रीति के बल से बहुत सुन्दर दानी हैं साथ ही उसके बदले में कुछ नहीं चाहते हैं। ऐसे श्रद्धालु प्रेमी अपनी सेवा के द्वारा ही तृप्त सन्तुष्ट रहते हैं।

तुम लोग श्रद्धा से कितने तृप्त हो, मान देना कितना अच्छा लगता है। इसी प्रकार जिससे भी भाग्यवश सम्बन्ध हो, उसकी सेवा में ही सन्तुष्ट रहना। जब किसी का प्रभाव पड़े तब सोचो इससे सुख लेने की मांग है या देने की। यदि सुख की चाह है तो दोष दर्शन करते हुए उस चाह का त्याग करो और देने के अवसर आने पर आलस्य, प्रमाद, असावधानी व कन्जूसी न आने दो। यही पुण्य वृद्धि की साधना है। तुम्हारी प्रीति मन की पूर्ति के लिए होगी तब तो पुण्य घटेंगे और सेवा के लिए होगी तो पुण्य बढ़ेंगे। आगे पीछे का चिन्तन अवश्य छोड़ती रहो। वर्तमान समय को, सेवा में, साधना में, अध्ययन में ही लगाती रहो।

उमा भोग, जप, दान, तप, नाना व्रत भर नेम।
राम कृपा नहिं करत तस, जस निश्केवल प्रेम।।
एकहि मनन एकहि चिन्तन, एकहि छवि मन भाई है।
सकल विश्व में इस सुन्दर की शुचि सुन्दरता छाई है।।

अनन्य प्रीति में ही प्रेमास्पद का वास है। प्रेम चिन्मय तत्व है। उसमें जब जड़ वस्तुएं भर जाती हैं तब चिन्मयता ढक जाती है, भेद में भिन्नता आ जाती है। एक के सिवाय किसी अन्य वस्तु के लिए स्थान न हो तब केवल प्रेम में प्रेमास्पद प्रभु की भक्ति सुगम हो जाती है।

पथिक

****

सप्रेम स्मरण,

सत्संग की अभिलाषा हो तो मौन होकर बुद्धि को चेतन तत्व में स्थिर करो। व्यर्थ की बातें स्मरण न करो। मन की स्थिरता के लिए स्वास के आने जाने को ध्यान से देखो। सुख का मूल्य न बढ़ाओ, तभी दुख से बचना आसान होगा। पुस्तकों के अध्ययन से भी विचार बल बढ़ता है और सहायक होता है। सुख–दुख माने हुए हैं सत्य नहीं है। अस्तित्व ही सत्य है। व्यक्ति अनेक हैं, अस्तित्व एक है।

शरीर, इन्द्रियॉ, मन, बुद्धि सम्बन्धित जन कोई भी अपने नहीं है पर अपने प्रतीत होते हैं। इसीलिए लोभ, मोह, अभिमान, दोष बढ़ गए हैं और तभी चिन्ता, भय, क्रोधादि दोष दुख देते रहते हैं।

सब कुछ प्रकृति में हो रहा है किन्तु लगता है हम ही कर रहे हैं। यही अशान्ति का कारण है। अन्त में अपना कहीं अधिकार नहीं रहता, सब कुछ छूट ही जाता है। लोभ, मोहादि विकार साथ रहते हैं, वही दूसरे जन्म में जन्म से ही जाग्रत होने लगते हैं। हृदय में आनन्द हो, बाहर सभी के प्रति प्रेमामृत हो, सबकी मंगल कामना हो, अशान्ति न हो, तब जीवन सार्थक होता है।

पथिक

*****

प्रिय आत्मन,

इतना तो मानना होगा कि प्रत्येक संग का प्रभाव भिन्न–भिन्न स्तरों पर पड़ता है तन की खुराक इन्द्रियॉ व मन के द्वारा मिलती रहती है परन्तु बुद्धि की खुराक या तो सद्ग्रन्थों के अवलोकन से मिलती है या आध्यात्मिक सत्चर्चा से मिलती है। इससे बुद्धि मंजती है, शुद्ध होती है।

तन सुखाय पंजर करे, धरै रैन दिन ध्यान।
तुलसी मिटे न वासना, बिना विचारे ज्ञान।।

ज्ञान पूर्वक विचार के द्वारा ही असत संग का प्रभाव मिटता है। हमारी मान्यताऍं, स्वीकृतियॉ ही हमें बॉधे हुए हैं। हम सब लोभी, मोही, अभिमानी, अनित्य पदार्थों को अपना मान करके ही बंधे हैं। जो प्रीति

परमात्मा के लिए होकर भक्ति का रूप लेती है, जो प्रीति ज्ञान के प्रति मुढ़कर श्रद्धामय हो जाती है, वही प्रीति लोभमय, मोहमय, ममता मय बनी हुई है। विनाशी देहादिक वस्तुओं में प्रीति होने से ही आसक्तियॉ बढ़ गई हैं। आसक्तियों ने ही पराधीन बना रखा है। पराधीनता में ही समस्त दोष बढ़ गए है। अब सत्संग से प्राप्त विवेक द्वारा दोष मिट सकते हैं। यद्यपि सत् के संग के लिए किसी असत् अनित्य सहारे की जरूरत नहीं है। कहीं जाने में केवल सत् की चर्चा सुनने में आती है, सत् का संग तो नित्य सुलभ है।

सवहिं सुलभ, सब दिन, सब देशा। सेवत सादर, शमन कलेशा।।

सत्य नित्य प्राप्त चेतन स्वरूप आत्मा ही है। परन्तु अहंकार उसी प्रकार हमारी दृष्टि को ढक रहा है जिस प्रकार बादल से ऑख ढक जाती है और सूर्य नहीं दिखता है।

पथिक

****

श्रद्धामयी आत्मन्,

यह विशेष पुण्य का सुयोग है जो कि तुम्हारे हृदय में श्रद्धा है। श्रद्धा द्वारा ही ज्ञान स्वरूप आत्मा का बोध होता हे, अज्ञान की निवृत्ति होती है। श्रद्धा न होने तक अहंकार समर्पित होता ही नहीं और ज्ञान बिना अहंकार का पता चलता ही नहीं। अहंकार गले बिना मुक्ति नहीं, अहंकार समर्पित हुए बिना भक्ति नहीं और कामना वासना छोड़े बिना शान्ति नहीं, सत्संग बिना असत्संग का विवेक नहीं, विवेक हुए बिना लोभ, मोह, अभिमान के दुष्परिणाम का परिचय नहीं होता।

अभी जैसा चाहिए वैसा तुम लोग समय व शक्ति का सदुपयोग नहीं कर पा रही हो। खूब समझ लो कि जो कुछ तुम्हें नहीं मिला है वह तभी तक बहुत सुन्दर, आकर्षण, सुखद प्रतीत होगा, जब तक मिलता नहीं। मिलने पर देखते ही ऑखें बन्द हो जाएगी फिर अंधें बनकर उसका भोग चलेगा। फिर उस दिन ऑखें खुलेगीं जब शक्ति का ह्रास और विनाश चोट पहुँचाएगा। प्रायः चाह की पूर्ति के बाद देखना नहीं रहता है, भोगने का स्वाद रहता है। उसी रसास्वाद में भोगी का जीवन समाप्त हो जाता है। जो श्रद्धालु गुरूज्ञान में जाग जाता है, वही परिणाम दर्शी होकर ह्रास–विनाश के भोगने के प्रथम ही सावधान होकर अपनी ओर लौटता है,

पराश्रय छोड़कर आत्माश्रम, सत्याश्रय लेता है। परन्तु होश आ जाए तो छोड़ना कुछ नहीं है। प्राप्त का सेवा में सदुपयोग करते हुए मिले हुए को छूटते हुए देखना है। शरीर, सौन्दर्य, सुयश, सम्पति, संयोग जो भी मिलेगा, सब छूटने के लिए ही मिलेगा। अहंकार से मुक्ति न पायी तो यह दरिद्र भिखारी रहकर अन्त में दुख ही देगा। अपने को जानो, तुम देह नहीं हो, नित्य अविनाशी चेतन स्वरूप हो। निरन्तर परमात्मा से युक्त हो, तुम निरन्तर चेतन स्वरूप हो। सुख–दुख, भय, चिन्ता, शोक, हर्ष सब मन के धर्म है, तुम्हारे नहीं है। जन्म–मृत्यु, जवानी, बुढ़ापा सब शरीर का होना है। तुम तो निरन्तर अविनाशी, ज्ञान, स्वरूप, चेतन हो। देहभाव को छोड़ते हुए आत्मभाव से रहो। तुम सावधान रहोगी, तभी सब होगा। तुमने इस शरीर को बहुत मान दिया है, बहुत आदर दिया है, अपना माना है। इसीलिए यह बातें भी मानो इस ज्ञान के अनुसार चलो। भय, चिन्ता से मुक्त होकर संसार में रहो। बाहर कुछ नहीं छोड़ना है, कहीं नहीं भागना है, अहंकार की दरिद्रता को जानना है, मन के अंधत्व से ऊपर उठना है। विनाशी देहों को, क्षणिक सुख–स्वाद को सत्य न मानकर अविनाशी आत्मा को जानकर प्रेम को चिन्मय बनाना है।

तुम सभी के हृदय में जितना आदर है, श्रद्धा है, आत्मीयता है उसके बदले में कुछ दे नहीं सकता। इतना ही कहता हूँ कि संसार में रहना ही है तो मोही, लोभी, अभिमानी, कामी बनकर पराधीन न बनो। निर्लोभी, निर्मोही, निष्कामी, निराभिमानी, ज्ञानी होकर आनन्द से रहो। स्वाधीन, स्वस्थ, आत्मस्थ होकर रहो।

पथिक

*****

प्रिय आत्मन,

जितने पुण्य बनते हैं वह प्रेम के द्वारा ही बन पाते हैं, जितने पाप बढ़ते हैं वह अप्रेम में ही बनते रहते हैं। जहॉ तक किसी के प्रति आप लोग मान का दान, अधिकार का दान तथा वस्तु दान, धन, भूमि, भवन का दान कर पाते हैं वह प्रेम के द्वारा ही कर पाते हैं। जहॉ नहीं दे पाते हैं, वहीं अप्रेम है। यदि हृदय में प्रेम है, तो सेवा करना, सम्मान करना कितना सरल हो जाता है, अप्रेम में हर किसी के लिए कितना कठिन है। दोष हो या सद्गुण जो बार–बार दोहराया जाता है, वही अभ्यास हो जाता है।

संगति के प्रभाव से सद्‌गुण, सद्‌भाव, सद्‌विचार बढ़ते है। जब विपरीत संग मिलता है तब विपरीत भाव भी जाग्रत हो जाते हैं। संग से श्रद्धा जाग्रत होती है और विपरीत संग से अश्रद्धा भी प्रबल हो जाती है। संग से मुनष्य उदारता पूर्वक दानी बनता है और संग से लोभी भी हो जाता है। संग से प्रेम प्रबल होता है और संग से दोष–घृणा भी प्रबल हो जाते हैं। अपना निरीक्षण करते रहना चाहिए। आरम्भिक जीवन यात्रा में बहुत परिवर्तन होते हैं। ज्ञान द्वारा अपनी शक्ति को और प्रेम को सुरक्षित रखना चाहिए। मनुष्य के साथ गुण–दोष, विष–अमृत सभी कुछ रहा करते हैं। संग के प्रभाव से भीतर जो छिपा होता है वही प्रगट हो जाता है। ऐसे संग बाल्यकाल से ही सुलभ रहते हैं, जो हमारे भीतर, छिपे हुए मोह, लोभ, काम, क्रोध को जाग्रत करते हैं। लेकिन सौभाग्य से जब सुसंग, साधु संगति मिलती है तब छिपी हुई श्रद्धा अथवा निष्काम प्रीति, उदारता, सरलता, नम्रता आदि दिव्य गुणों की जाग्रति होती है।

तुम्हारा हृदय तो बहुत ही पवित्र है, किन्तु संग सुलभ न होने से सारी दिव्यता सोई हुई है और सांसरिक संग के प्रभाव से मोह, ममता, अभिमान, लोभ आदि वृत्तियों का पोषण होता चला आ रहा है। श्रद्धा, विवेक, निष्कामता, उदारता बढ़ाने की खुराक कभी–कभी मिलती है। जो कुछ बार–बार दोहराया जाता है उसी का अभ्यास हो जाता है। पहले से अभ्यास चला आ रहा है। तुम बहुत ही पुण्यवती हो जो संकल्प कल्याण के लिए करोगी वही पूर्ण होगा। इसी पुण्य के प्रभाव से इतनी दुलर्भ सत्चर्चा सुलभ हो पाई। जो कुछ नहीं मिला है उसे न चाहो। जो शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता, संयोग, सामग्री सुलभ है उसी को अपने परमार्थ लाभ के लिए सदुपयोग करती रहो। ऐसा करने से जो होना है वह स्वतः होता जाएगा और जो नहीं होना चाहिए वह पुण्य प्रताप से अपने आप हटता जाएगा। घर में अध्ययन अवश्य दस–पॉच मिनट कर लिया करो, इससे बुद्धि बलवती, विवेकवती होती जाएगी। शक्ति को व्यर्थ की वार्ता से व व्यर्थ की चिन्ता से बचाती रहो और सार्थक सेवा कार्यों में तथा साधना में, आत्मा के चिन्तन में लगाती रहो।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी आत्मा को विभिन्न नाम रूपों में स्मरण,

बहुत ही अच्छी बात स्मरण रखना। तुम्हें देह, इन्द्रियॉ, मन, बुद्धि

आदि जो कुछ भी प्राप्त है, यह सब साधन है। जिन साधनों से किसी की सेवा बन जाए वही साधन सार्थक है।

शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता, सद्‌गुण, सद्‌भाव प्रीति आदि भी सब साधन हैं। जो साधन किसी की सेवा में लगे उस साधन को उसी का समझो, जिसकी सेवा कर रही हो। जितनी देर हाथ पैर अर्थात जो अंग किसी की सेवा में लगे उतनी देर उसी के अधिकार की वस्तु समझकर सेवा को पूर्ण करो। अपना तो कुछ मानो ही नहीं। सब कुछ उसी दाता से मिला है। जो वस्तु किसी के हाथ में दो, उसे उसी की समझ कर दो, अपनी समझ कर देने से अहंकार बदला चाहेगा। किसी को अन्न भी दो तब यही समझ लो कि उसके हिस्से का था। आज उसे देकर भार हल्का हो गया। जिसे मान दो, प्यार दो उसी के अधिकार की वस्तु समझो। होश रहे तो बदले में धन्यवाद भी न चाहो बल्कि तुम ही उस लेने वाले को मन ही मन धन्यवाद दो, कि मेरे पास जो धरोहर है, उसे स्वीकार कर रहा है। मुझसे लेकर मेरा उद्धार कर रहा है।

अभी से सत्वर्चा के प्रति तुम्हारे हृदय में श्रद्धा जाग्रत हो चुकी है। तुम्हारे श्रद्धास्पद ज्ञान स्वरूप भगवान ही हैं। तुम किसी भी साधु महात्मा में श्रद्धा के माध्यम से ज्ञान स्वरूप परम प्रभु को ही देखो और अपने प्रेम को उन्हीं प्रभुमय होने दो। क्योंकि समग्र प्रेम प्रभु से ही मिला है, उन्हीं के लिए होना चाहिए। देहादिक वस्तुओं को प्रेम में न भरकर नित्य चेतन आत्मा को प्रेमास्पद जानो। किसी को त्याग और दान की बात समझाने पर भी समझ में नहीं आती। समझाने पर जहाँ जो देना है वह अहंकार की कठोरता वश लोग दे नहीं पाते और जो त्यागना चाहिए वह त्याग नहीं पाते। श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, भाव के सहारे ही आत्मीयता दृढ़ होती है, वह तुममें सहज सुलभ है। यदि तुम सभी से श्रद्धा पूर्वक विवेक के सहारे सेवा को पूर्ण करने के लिए दोषों के त्याग का और शुभ सुन्दर के दान को पूर्ण करने का व्रत ले रही हो तब तो बहुत सुन्दर जीवन का निर्माण हो सकता है। दूसरों को देखकर अपने भीतर इच्छाओं को न बढ़ाओ। जो भी परिस्थिति है उसी में सन्तुष्ट प्रसन्न रहो। इच्छाएँ सभी को भिखारी व दरिद्र बनाती हैं।

पथिक

*****

सप्रेम नारायण स्मरण,

आने से मन प्रसन्न होता है, वह प्रसन्नता पराधीनता से ही है। वास्तव में स्वाधीन प्रसन्नता ही सत्य है, क्योंकि वह सत्याधीन है। जो प्रसन्नता दूसरी वस्तु, व्यक्ति के संयोग पर निर्भर है वही पराधीनता लाती है। गुरू वाक्य है कि **ज्ञान और प्रेम को स्वयं में केन्द्रित करो** तभी परमाश्रय का बोध होगा। प्रेम ही वस्तु, व्यक्ति में अटक कर लोभ, मोह बन गया है। प्रेम ही वस्तु–व्यक्ति की सीमा को पार कर असीम परमात्मा का हो जाता है।

पथिक

*****

प्रेम स्वरूप परमात्मा की श्रद्धामयी आत्माओं को सादर स्मरण!

जीवन का एक छोर पशुता को पकड़े रहता है और दूसरा छोर प्रेम स्वरूप प्रभु से सम्बन्धित रहता है। पशु से प्रभु तक पहुॅचने के लिए ही साधना की अपेक्षा रहती है। प्रेम ही नीचे उतरते उतरते काममय हो जाता है। वही काम ऊपर उठते हुए प्रेम स्वरूप प्रभुमय अनुभूत होता है। वह प्रेम ही उच्चकोष में अब श्रद्धारूप में प्रकट हो रहा है।

तुम्हारे हृदय में सरलता, उदारता, सेवा की उत्सुकता श्रद्धा के साथ पूज्यभाव यह सब उच्चकोष में दिव्यगुणों के रूप में विकसित हो रहे हैं। अवसर पाकर ही संग सम्बन्ध से भीतर छिपे हुए दोष भी प्रकट होते हैं और गुण भी प्रकट होते हैं। यह बहुत ही शुभ है कि तुम्हारे हृदय में प्रेमस्वरूप प्रभु के प्रति अभिलाषा प्रबल होती जाए। प्रेम ही तो सुखमय है। प्रेम ही वस्तु के साथ लोभमय है, वह व्यक्ति के साथ मोहमय है, वह प्रेम गुरू के साथ श्रद्धामय है और अन्य में वही प्रेम प्रभुमय होना है। तुम्हारे तन पर, मन पर, भाक्ति पर कोई न कोई अधिकार जमाता ही रहेगा। तुम कुछ भी खाली नहीं रख सकती। उसमें उतना ही सार्थक है जो परमात्मा के लिए निकाल सको। किसी की सुनती ही रहती हो, उसमें कभी मेरे भी सुन लेती हो। किसी न किसी की याद आती रहती है उसमें से तुम जब सावधान होती हो तब अपने प्रभु का भी स्मरण कर लेती हो। आ चर्य है कि श्रद्धा के साथ उच्च भाव भी जाग्रत हो जाते हैं। कभी–कभी पत्र का उत्तर देने से भी एक प्रभाव पड़ता है यदि इधर का प्रभाव न रहा, तो किसी का तो रहेगा ही।

पथिक

*****

नमो परमात्मन्,

तुम यह निर्णय कर लो, कि जन्म के साथ ही संसार में प्रकृति से क्या–क्या मिला। 5 तत्व, 5 कामेन्द्रियॉ, 5 ज्ञानेन्द्रियॉ–मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, विशय ग्रहण की क्षमता सब प्रकृति प्रदत्त है। ज्ञान, प्रेम, शक्ति, परमात्मा की निधि है, स्वाधीनता, प्रसन्नता, भाान्ति, आनन्द यह परमात्मा से उपलब्ध है। इसमें से शक्ति, क्रियामय और अहंकार में होकर कर्ममय बन रही है। प्रेम ही सुखस्वरूप है। जब उसे सम्बन्धित वस्तु, व्यक्ति में मिला देते हैं तभी वह सुखमय प्रतीत होती है। उस समय हम प्रेम के माधुर्य को भूल जाते हैं और वस्तु–व्यक्ति को सुखद मानने लगते हैं। कभी वस्तु व्यक्ति से जब हम प्रेम को हटा लेते हैं तब वह सुखद नहीं दिखती। प्रेम किसी से मिलकर सुखमय है। क्योंकि मधुरता तो प्रेम की है। व्यक्ति के प्रति प्रीति का प्रवाह मोह बन जाता है। वस्तु के प्रति प्रीति का प्रवाह लोभ बन जाता है। भगवान के प्रति प्रीति का प्रवाह भक्ति बन जाता है। प्रीति में अनुकूलता और अप्रीति में प्रतिकूलता का एहसास होता है। सुख के प्रति राग ही काम है। विराग में ही निष्कामता आती है। मनोमय कोष में सुखद के प्रति ही राग रहता है। विज्ञानमय कोश के जाग्रत होने पर व आनन्द की अनुभूति होने पर वही राग परम प्रभु के प्रति अनुराग बन जाता है।

जिसे अपना मानो, उसकी सेवा में अपने सर्वस्व का दान करते रहने से विरक्ति आती है। उससे मन की पूर्ति का सुख भोगने से आसक्ति बढ़ती है। इसीलिए जिनसे तुम्हारा सम्बन्ध है, उन्हें देने में उदार रहो और उनसे स्वयं लेने में कंजूस रहो। मैंने देखा कि तुम सेवा में बहुत उदार हो, पहले जन्म से उदार हो। सोच करके देखो यदि साथी व सामान में सुख होता तो उन साथी सामान से ही हमें दुख क्यों होता।

अशान्ति तो तब तक चलती है जब तक कामना, तृश्णा, दोश, आसक्तियाँ चलती रहती हैं। दोश न रहे तब शान्ति ही शान्ति है। शरीर, इन्द्रियॉ, मन, बुद्धि, सम्बन्धित जन, जब कोई भी तो अपने नहीं है, परन्तु सभी कुछ अपने प्रतीत होते हैं। इसीलिए लोभ, मोह, अभिमान, दोश बढ़ गये हैं और तभी उनकी रक्षा की चिन्ता, भय, क्रोध, द्वेश दुख देते हैं।

सब कुछ प्रकृति में हो रहा है लेकिन लगता है कि हम कर रहे हैं। यही अशान्ति का कारण है। अन्त में कहीं भी अपना अधिकार नहीं रहता। सब कुछ छूट जाता है, लोभ, मोह, आदि विकार साथ रहते हैं, वही दूसरे जन्म में जन्म से जाग्रत होने लगते हैं। हृदय में आनन्द हो, बाहर सभी के प्रति प्रेम भाव हो, सबके प्रति मंगल कामना हो तब जीवन सार्थक होता है।

पथिक

*****

नमो परमात्मने,

अवसर मिले तब शान्त प्रसन्न होकर, मौन होकर दृश्टा बनो। कुछ न चाहो, बल्कि देखो कि परम प्रभु ने कितना दिया है। जिसका अभी तक ठीक–ठीक पूरा–पूरा उपयोग नहीं हो रहा है। जो भी आए उसे स्वीकार कर लो, भले ही प्रतिकूल हो, क्योंकि प्रभु के विधान से आया है। जो भी आए उसे अपना न मानो, जो नहीं मिला है उसकी कामना न करो। पुण्य करो, स्वतः वही मिलेगा जो तुम चाहोगी।

पथिक

*****

अपने परम प्रभु की श्रद्धालु आत्माओं को सप्रेम स्मरण!

सावधान होकर एक बात समझ लो, तुम इस पथिक को उतने ही अंश में चाहती हो, जितने अंश में ज्ञान अथवा प्रेम, दया, कृपा, उदारता का तुम्हें दर्शन मिलता है और यह स्मरण रखना जितने भी सद्‌गुण हैं या ज्ञान हैं, प्रेम है वह इस व्यक्ति का नहीं है, वह सब भगवान के ही गुण हैं, उन्हीं का ज्ञान है, उन्हीं का ही प्रेम है, धोखा यही होता है कि श्रद्धालुजन वह सब कुछ व्यक्ति का ही मानकर अर्थात पथिक नाम रूप को मान कर नाम रूप को चाहने लगते हैं। आप लोग पथिक नाम रूप के मोही न बनकर भगवान को स्मरण करो। भगवान के ज्ञान को, सद्‌गुणों को नमस्कार करो। उन्हीं की कृपा, दया, करूणा का अनुभव करो। विनाशी में अविनाशी को देखो। उसी प्रकार आप लोगों के भीतर जो श्रद्धा, प्रीति, उदारता, नम्रता, सरलता, दानशीलता, अभेदन, अभिन्नता आदि दिव्य गुण मुझे दीख रहे हैं वह तो गुणनिधान, प्रेमसिन्धु, ज्ञानसिन्धु भगवान के ही हैं। तुम्हारे नाम रूप द्वारा वह इसे सन्तुष्ट कर रहे हैं और इस नाम रूप द्वारा

तुम्हारे अहंकार को वे समर्थ परम प्रभु तृप्त कर रहे हैं। अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। तुम व्यक्ति में न अटको। सबमें भगवान के दिव्य गुणों का अनुरूक्त हूँ इसीलिए अपने प्रभु को सबमें नमस्कार कर रहा हूँ और सबमें अपने प्रभु की दया व कृपा का आस्वादन करने के लिए समत्सुक हूँ। मुझे अनेक नाम रूपों में प्रभु ही सन्तुष्ट एवं तृप्त कर रहे हैं और अपनी महान महिमा का दर्शन देते जा रहे हैं। आनन्द ही आनन्द है।

पथिक

****

प्रिय आत्मन्,

जीव के जन्म तब तक चलते ही रहेंगे, जब तक यह अहंकार पककर प्रेम की मधुरता से स्वतः गल न जाएगा। अहंकार का पिघलना, गलना, प्रेम की पूर्णता में ही सम्भव है। तुम्हारा जन्म तुम्हारे द्वारा नहीं हो रहा है यह तो प्राकृतिक विधान से जड़त्व से शिवत्व तक पहुँचाने का क्रम है। सरलता, सरसता की चिन्ता भी व्यर्थ ही है। वह तो स्वतः ही आती है और अब भी है। जो कुछ तुम हो बिल्कुल ठीक हो। तुम्हें किसी जैसा नहीं बनना है। जो होना है वह तो हो ही रहा है। यह अच्छा है कि तुम अन्य जैसी नहीं हो। बस अपना कुछ न मानो। सब परमात्मा में है, परमात्मा का ही है।

दृश्य का प्रभाव ही रागी या द्वेषी बनाता है। प्रतिकूल के प्रति द्वेश हो जाता है और अनुकूल के प्रति राग हो जाता है। जो दृश्य के पीछे अदृश्य को जानता है वही दृश्य के प्रभाव से बच जाता है क्योंकि दृश्य इन्द्रियों के द्वारा स्थिर प्रतीत होता है किन्तु बुद्धि द्वारा देखने पर मिथ्या दिखता है। जिस प्रकार सिनेमा दृश्य रूप में सत्य सा लगता है पर बुद्धि से वहाँ कुछ नहीं होता। जिस पर दृश्य का प्रभाव न पड़े वही सच्चा विरागी है। रागी, विरागी, योगी, त्यागी, आसक्त, विरक्त यह अहंकार के ही रूप हैं। तुम सब कुछ प्रेममय परमात्मा पर छोड़कर जो हो रहा है, उसे देखती रहो और यही मनन करो कि सब कुछ प्रभु के विधान से स्वतः हो रहा है, आगे भी होता रहेगा। यदि बुद्धि भाुद्ध हो सके तो दृश्टा होकर देखो, सब कुछ देह के साथ, मन के साथ अहंकार के साथ हो रहा है। प्रभु का विधान मंगलमय है। चाहो कुछ नहीं, फिर भी जो स्वतः हो उसे देखते

हुए परमात्मा की भाक्ति का अनुभव करो, ज्ञान में उसे देखो, प्रेम को रिक्त रखो। ज्ञान में, प्रेम में, कुछ न रहे, तभी मुक्ति, भक्ति पूर्ण होती है, लेकिन निरन्तर सजगता की आव यकता है। यदि कर्ता बनेगी तो भोक्ता भी बनना होगा।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी आत्माओं को प्रिय नाम रूपों में स्मरण,

जितने अंश में भगवान के गुण जाग्रत रहते हैं उतने ही अंश में सेवा, दान व पुण्य बन पाते हैं। अहंकार के दोष ही पुण्य में बाधक होते हैं। पुण्य से ही अनुकूलता का सुख मिलता है। पुण्य से ही स्वतः इच्छाओं की पूर्ति होती है।

देह से जो पुण्य बनते हैं उससे देह की सुविधा, सामग्री मिलती है। वाणी से जो पुण्य बनते हैं उससे यश सम्मान सुलभ होता है। मन से जो पुण्य कर्म पवित्र भाव से किए जाते हैं उनसे मन के संकल्प पूरे होते हैं। जिसका मन प्रेम भाव से, श्रृद्धा से, सरलता व उदारता से आपूरित है, जिनकी वाणी से नम्रता व मधुरता से सने सुन्दर वाक्य निकलते हैं उन्ही के तन, मन, वाणी द्वारा पुण्य बनते हैं। तुम लोगों में से किसी–किसी में बहुत अच्छी विशेषताएं हैं।

कर्तव्य परायणता, आत्मीयता, उदारता व निश्कामता, मानवता के वाह्य चिन्ह हैं। योगानुभूति, असंगता, आत्मज्ञान, बोध, सेवा, त्याग व प्रेम की पूर्णता अन्तरंग दिव्यता के रूप हैं। आप लोगों में विवेक की जाग्रति होती जाए। मोह, ममता, अभिमान, सुखासक्ति सम्बन्धाशक्ति मिटती जाए, यही सत्संग का लाभ है।

वस्तुओं तथा व्यक्तियों के संयोग का मूल्य बढ़ा देने से ही हम लोग कहीं दीन होते हैं, कहीं अभिमानी बनते हैं। ममता–मोह के कारण ही भय, चिन्ता व भेदभाव आदि अनेक दोश बढ़ जाते हैं। देहाशक्ति, सुखासक्ति, धनाशक्ति, सम्बन्धाशक्ति ने हम सबको पराधीन बना दिया है। जो शक्ति और योग्यता शरीर को प्राप्त है उसके द्वारा सेवा करते रहने से वह सुलभ होता है जो दुर्लभ है।

ईर्ष्या, द्वेश, कलह, क्रोधादि विकारों में शक्ति के दुरूपयोग से एवं

विवेक का आदर न करने से मानव पराधीन हो गया है। संत कहते हैं कि जिससे प्रेम करो उससे कुछ न चाहो और जिसकी सेवा करो उससे ममता न होने दो। ममता मोह के रहते दुख नहीं मिटते। विनाशी देहों में ज्ञान स्वरूप, प्रेम स्वरूप आत्मा को ही सत्य जानकर प्रेम का वर्ताव करते रहो। देहों को अपनी मानकर मोह न करो। मोह–ममता के रहते हुए बन्धन न मिटेंगे। सब कुछ परमात्मा का जानोगे तब मोह हटेगा। निर्लोभी ही उदार होता है। निर्मोही ही विवेकी होता है। जो नहीं मिला है कामनावश उसी की स्मृति है और जो मिला है उसी की ममता चित्त को निर्भय भ्राान्त नहीं होने देती। ममतावश ही प्रश्न उठता है कि परस्पर आप लोग अब कब मिलोगे। जो मिलेगा वही बिछड़ेगा।

पथिक

*****

परमात्मा के चेतन अंश अतिप्रिय आत्माओं को सप्रेम स्मरण,

आप लोग जब कभी स्मरण करते हो तब इस पथिक को अचानक स्मरण आ जाता है। शरीर तो दूर ही रहते हैं पर चेतना तो सर्वत्र विद्युत शक्ति की भॉंति व्यापक है।

जो लोग शरीर से श्रम और सेवा नहीं करते साथ ही भोजन बढ़िया करते हैं, भोजन का चतुर्थांश कुत्ता व पक्षी को नहीं निकालते, उनके भोजन द्वारा पुण्य कम होते रहते हैं। पुण्य क्षीण होते ही फिर शरीर रोगी हो जाता है। मन की इच्छा पूर्ति करते हुए जो अपने सुख का हिस्सा दूसरे सम्बन्धितजनों को नहीं देते, जो अकेले ही सम्मान का, त्याग का, अधिकार का सुख भोगते हैं उनके ही पुण्य घटने पर मानसिक प्रतिकूलता का दुख भोगना पड़ता है। इसीलिए धन का हिस्सा निर्धन की सेवा में, शक्ति का हिस्सा शरीरों की सेवा में, समय का हिस्सा साधना में और परमात्मा को स्मरण में लगाना चाहिए। जो लोग समय, सम्पत्ति, प्रीति, परमार्थ लाभ के लिए नहीं निकालते, उनका सब कुछ संसार ही छीन लेता है। वे कुछ भी नहीं बचा पाते।

पथिक

*****

अविनाशी आत्माओं को सप्रेम स्मरण,

जीवन में मनुष्य जो कुछ हजारों बार चाहता है, जिसके लिए व्याकुल एवं दुखी होता है वही मिलता है। जो आज तुम्हें सुलभ है उसे भी कभी अत्यधिक चाहा है। आज भी, आगे भी, वही मिलेगा जिसे प्यासे भूखे की शांति चाहोगी। जब कभी जितनी देर कुछ न चाहो तभी तक शान्ति सुलभ रहेगी। परन्तु भाान्ति का अनुभव नहीं होता, प्रायः बीते हुए का या भविष्य का चिन्तन चलता रहता है। हजारों जन्मों में सत्संग की प्यास तथा श्रद्धा जाग्रत होती है। लाखों मनुष्य ऐसे हैं जिनमें सत्संग व श्रद्धा का पता ही नहीं है।

जिसके प्रति आत्मीयता होती है, अपनत्व भाव से प्रीति होती है उसी के साथ संकोच नहीं होता। उससे अपने मन की भूख, प्यास, आवश्यकता प्रकट करने में संकोच नहीं होता। प्रीति के मध्य में इतनी सरलता होती है कि अपमान का भय नहीं होता, मान की तृष्णा नहीं होती, इसीलिए संकोच नहीं रहता। अपने प्रीति पात्र के अतिरिक्त जब किसी को इच्छानुसार कुछ देना हो, तब देने में संकोच नहीं करना चाहिए। उदारता पूर्वक अपने अधिकार के भीतर सेवा भाव से देने का अवसर पकड़ना चाहिए। जो अपने अधिकार में न हो उसे किसी स्नेही के मांगने पर भी क्षमा मांग लेनी चाहिए। साथ ही जब कुछ लेना हो तो अपनी रूचि पूर्ति में संकोच करना चाहिए। दूसरे की धरोहर, प्रीति पात्र प्रेमास्पद को भी नहीं देना चाहिए। क्योंकि आगे चलकर अधिकारी को दुख होता है। कोई भूखा तुमसे रोटी मांग रहा हो तो अपनी थाली की रोटी देना तो ठीक है किन्तु घर से आटा सामान देने का अधिकार तुम्हें नहीं है। अपने मन की पूर्ति में संकोच करना ठीक है। जिस तन पर, मन पर, धन पर, वस्तु पर अपना अधिकार नहीं हैं वह कोई मांगे तो देने में संकोच करो। देने में उदार रहो, लेने में संकोच करो। जिससे किसी को कष्ट हो उसको लेने में संकोच करो। शरीर के सम्बन्धियों के प्रति तुम्हारा स्वतन्त्र अधिकार नहीं है। किन्तु शरीर द्वारा सेवा करते हुए, शक्ति के सदुपयोग करने का अधिकार है। शरीर के द्वारा हिंसा न होने पाए, व्यर्थ चेष्टा में भाक्ति का दुरूपयोग न होने पाए, किसी की वस्तु की चोरी न होने पाए, व्यभिचार न होने पाए यह अधिकार है। शरीर अपना इसलिए मालूम पड़ता है, क्योंकि बचपन से अपना मानने का अभ्यास दृढ़ हो गया है। शरीर में अपने आप को रखकर

तन्मय बना लिया है। इसीलिए मैं शरीर हूँ, ऐसा प्रतीत होता है और जो पदार्थ अपने में रख लिए हैं वही अपने मालूम पड़ते हैं। तुम्हारा स्वरूप ज्ञान है तुम ज्ञान स्वरूप हो, पर भूलकर अज्ञान में जो वस्तु, व्यक्ति स्वीकार कर लिए हैं, वही अपने प्रतीत होते हैं। देह में तदुपता–तन्मयता हो गयी है। यद्यपि तुम चेतन हो, देह जड़ है किन्तु देह से तन्मय होने के कारण ही देह ही अपना रूप दिखाती है। कुछ दिन अभ्यास करो कि यह देह जड़ है, मैं नित्य चेतन हूँ। अग्नि का कोई आकार नहीं किन्तु काष्ठ या लोहा मिलकर तदाकार प्रतीत होती है।

प्रतिकूलता का प्रभाव उतना ही अधिक पड़ता है जितना अनुकूलता के सुख के प्रति आसक्ति होती है। जितनी अधिक चाह होगी, उतना ही चाह की अपूर्ति का दुख होगा। आसक्ति, कामना ही दुख व अशान्ति का कारण बनती है।

जब प्रीति अपने मन की पूर्ति के लिए होती है तब अपूर्ति की वेदना अधिक होती है और जब प्रीति अपने नित्य प्राप्त प्रभु के लिए मुड़ जाती है, तब प्रभु के मंगलमय विधान से जो कुछ भी अपने आप आता है उसी में सन्तोष रहता है। जब कोई सेवा का अवसर मिला तब सेवा में देना ही देना रहता है। जब सेवा का अवसर नहीं मिला तब प्रभु के दिव्य गुणों के ज्ञान का, असीम प्रेम का, अगाध करूणा का चिन्तन चलता है। इसमें बड़ी तृप्ति रहती है, अपनी कोई भार्त नहीं रहती। अवकाश का सदुपयोग सदग्रन्थों के अध्ययन में करते रहना चाहिए। व्यर्थ वार्ता, व्यर्थ चिन्तन से मन को हटाकर सार्थक में लगाना चाहिए। तुममें जितनी श्रद्धा जाग्रत है उतनी भी हजारों लोगों में देखी नहीं जाती। संशय व भय, श्रद्धा और सेवा की पूर्णता में बाधक होते हैं। किसी अधिकार में शरीर चला जाएगा तब श्रद्धा रहना कठिन होगा।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी आत्मा को स्मरण,

आज बहुत दिनों बाद पत्र मिला, मैंने यह जाना कि तुम लोगों का मन पलटते देर नहीं लगती। बड़े पुण्य से, आत्मदेव की कृपा से किसी–किसी के हृदय में श्रद्धा जाग्रत होती है। उस श्रद्धा के साथ ही

नम्रता, सरलता, उदारता, सहिष्णुता व प्रसन्नता आदि दिव्य गुण रहा करते हैं। श्रद्धा से ही आप लोग इतनी उत्सुकता से जो सेवा में तत्पर रहती हो, साथ ही मन में दुराव–छिपाव, छल–कपट, लोभ, अभिमान आदि दोष अपना प्रभाव नहीं डाल पाते। लेकिन श्रद्धा के बीच में जहॉ कहीं दोष दिखने लगते हैं वहीं से मन में अश्रद्धा होने लगती है और तभी नित्य घृणा सारी सेवाओं को अशुद्ध कर देती है। इसीलिए कहा हैः–

अश्रद्धा परम पापं, श्रद्धा पाप प्रमोचनी।

श्रद्धा सारे पाप नश्ट करती है और अश्रद्धा में जो पहले के पुण्य होते हैं वह पाप बन जाते हैं। किसी के मन बहुत चंचल हल्के होते हैं, जो किसी भी संग के प्रभाव से विचलित हो जाते हैं, कोई बहुत गरूवै (गम्भीर) होते हैं जो कि कोई हिलाना चाहे तब भी नहीं हिलते। कोई कितनी ही विदुषी हो जाय परन्तु प्रेम न हो तो विद्या से, कुल से, रूप से, गुण से अहंकार ही प्रबल होता है। प्रेम में ही मनुष्य दोषों का त्यागी, तन–मन से श्रम का दानी, मान का दानी हो जाता है। प्रेम में सारे पुण्य बनते हैं और जब प्रेम के साथ घृणा, क्रोध, अभिमान मिल जाता है तब सभी पापों का प्रवेश हो जाता है। अहंकार समझ भी नहीं पाता। तुमने कई बार सुना होगा कि ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध, निन्दा, घृणा छः विकारों में एक विकार ही पुण्यों को नष्ट कर देता है। तुम्हारा हृदय पवित्र है अभी कामना से कालिमा नहीं आई है। किसी की बुराई न करो, न सुनो, न देखो। तीन बन्दरों के चित्र देखे होंगे। कोई बुराई करे तो कह दो निन्दा करना रामायण में बड़ा पाप बताया है। हाथ जोड़ कर मना कर दो। जो किसी की निन्दा, बुराई करता है तो पाप का हिस्सेदार बन जाता है। परमात्मा सब जानता है, तब हम कौन होते हैं। भगवान की शक्ति से ही गुण प्रकट होते हैं और उसी की शक्ति से दोष प्रकट होते हैं। पवित्र हृदय को कोई अपवित्र नहीं दिखता और अपवित्र को कोई पवित्र नहीं दिखता। सबको स्मरण।

पथिक

*****

स्नेह स्मरण,

तीर्थ यात्रा से, हजारों महात्माओं के दर्शन से शान्ति, भक्ति, मुक्ति सुलभ नहीं होती। सारे दोष अहंकार में बनते हैं मान की चाह, धन

की चाह, सामान की चाह में ही राग–द्वेष, ईर्ष्या आदि विकार रहते हैं।

जो बार–बार दोहराया जाता है उसी का अभ्यास बढ़ जाता है। बुद्धि तीव्र हो, सेवाभाव प्रबल हो, कामना पूर्ति का पक्ष न हो, तभी कोई सही काम कर सकता है। लोभ, मोह, कामना से सनी हुई बुद्धि सही दृष्टि नहीं रख पाती। संग का प्रभाव अवश्य पड़ता है। हर व्यक्ति लोभी, मोही, अभिमानी को प्रसन्न करना चाहता है, ज्ञानी की बात मानता ही नहीं, न जाने कितने पर्त छिपे हैं, धीरे–धीरे खुलते रहते हैं। लोभ, मोह, अभिमान ही बढ़ता है। सन्तोष, दया, करूणा, उदारता, नम्रता, सहन ीलता निष्कामता के बिना विवेक की प्राप्ति नहीं होती।

सबको स्मरण।

पथिक

*****

अपने प्रिय नाम रूपों को धारण करने वाले परम प्रियतम परमात्मा को सब ओर से प्रणाम्!

बहुत दिनों बाद आपका पत्र पढ़ा। ठीक लिखा है कि संग का प्रभाव कुछ दिनों तक मन में रहता है। धीरे–धीरे अन्य प्रकार के संगों का प्रभाव श्रद्धा के प्रभाव को दबा देता है।

आगे चलकर दूसरे परिवार में जाने से वहाँ का संग इस परिवार के संग के प्रभाव को दबाता जाएगा और ऐसा भी समय आएगा कि इधर की ममता, आसक्ति अतिशिथिल होकर उधर ही बढ़ जाएगी, तब तो यह सत्चर्चा कभी याद आ जाएगी अन्यथा सब भूल जाएगा। बहुत ही निश्काम श्रद्धालु प्रेमी अपनी श्रद्धा प्रीति को सत्संग के प्रति सुरक्षित रख पाते हैं। हजारों में कोई दस–पाँच मिलना कठिन है। आरम्भ में जो श्रद्धालु हृदय अपने प्रेम को एवं ज्ञान को दैवी गुणों से भर लेते हैं और कामनाओं की पूर्ति के पक्षपाती नहीं रहते, वह स्वतन्त्र रह पाते हैं। सुखासक्त, विषयासक्त, देहासक्त, मोही, लोभी, अभिमानी, कामी व्यक्ति तो श्रद्धा के द्वारा आत्मा, परमात्मा की एकता व अभिन्नता को समझ ही नहीं पाता। सबसे बड़ा पाप बन्धन, अज्ञान एवं भ्रम है, देह को ही अपना रूप मानते रहना। वह सत्संगी ज्ञानी, ध्यानी, साधक सिद्धि पाता है जो देह को अपनी न मानकर अपने अविनाशी ज्ञान स्वरूप को जान लेता है। तुम बार–बार

अवसर पाते ही देह को ध्यान से देखो और सोचो यह देह मैं नहीं हूँ, यह महाअपवित्र विनाशी आकार वाली है। इसमें **मैं** निरन्तर चेतना के रूप में व्याप्त हूँ। मैं निरन्तर शुद्ध हूँ, चेतन स्वरूप में निरन्तर मुक्त ही हूँ। अहंकार ही बन्धन में है।

आत्मा परम तीर्थ है। यही देह को पवित्र बनाए हुए है, देह महाअपवित्र है। चेतन स्वरूप आत्मा के कारण ही यह देह सारी उम्र भर शुद्ध रहती है। आत्मा का संग छूटते ही कुछ घण्टों में ही सड़ने गलने लगती है, छूने लायक भी नहीं रहती। यह परम पवित्र बनाए रखने वाली परम पावन आत्मा तुम ही हो। यह ज्ञान कहीं से प्राप्त नहीं करना है, तुम ज्ञान ही हो, तुम्हीं परम प्रेम हो, अपने ज्ञान स्वरूप को, प्रेम स्वरूप को बार–बार स्मरण करो। अभी तो देह मैं हूँ, देह मेरी है, यह स्मरण रहता है। देह का ही अभिमान रहता है, देह की सेवा पूजा, चिन्तन मनन चलता रहता है। अपने चेतन स्वरूप का स्मरण दृढ़ करो। तुम परम पावन चेतन स्वरूप हो। चेतना का स्मरण करते रहने को साधना समझो। अभी अभ्यास कर लो, बाद में अवसर नहीं मिलेगा। पुस्तक पढ़कर अज्ञान हटाओ। शरीर को सेवा में लगाती रहो। ज्ञान स्वरूप को किसी विनाशी नाम रूप से न ढकने दो। दूसरे लोग तो मोह, लोभ, कामनाओं से बंधे ही है तुम अभी कम बंधी हो, तो आगे बधोंगी। सत्य चेतन तुम्हीं हो। अपना संग ही सत्संग है। देह का संग असत संग है। सबसे ज्ञान स्वरूप को स्मरण करते हुए।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी आत्मा को सप्रेम स्मरण!

पत्र हरिद्वार आकर मिला। गुरू पूर्णिमा का सम्मेलन कहीं नहीं रखना चाहता। बहुत बोल चुका, बहुत लिख चुका। जिसे विनाशी पदार्थों से विरक्त होना है और नित्य सुलभ आत्मा परमात्मा से अनुरक्त होना है उसे अब कहीं भटकने की या अधिक सुनने की जरूरत नहीं है। जरूरत है अपने भीतर मोह, ममता, आसक्ति, कामना एवं भ्रम को समझने की। यदि इतना ही निरन्तर स्मरण रहे कि मैं परमात्मा का हूँ, संसार का नहीं। यह देहादिक जो कुछ है सब परमात्मा की प्रकृति का है मेरा कुछ नहीं है। अब मुझे संसार से कुछ नहीं चाहिए क्योंकि परमात्मा में सब कुछ पूर्ण है। जब

तक मेरा कुछ भी प्रतीत होता है तब तक अहंकार नहीं मिटेगा। मेरा पना ही अहंकार का आकार है। अहंकार को ही धन, सामान, संयोग, भोग, सम्मान और नाम चाहिए। अहंकार सदा भिखारी व दरिद्र ही रहता है। मन का संग रहते अहंकार नहीं मिटता। बुद्धि योगी ही अहंकार को समझ पाता है। भोगी अहंकार समझने में बाधक है। पूर्णिमा के पहले ही मैं हरिद्वार से चला जाऊँगा ताकि मेरे यहाँ कोई न आए। सबको सप्रेम स्मरण।

पथिक

*****

प्रिय आत्मन्,

कोई न कोई कामना, सुख की चाह और ममता के कारण अहंकार अशान्त होता है। भगवान ने इन्हीं को छोड़ने के लिए गीता में कहा है। शान्ति, आनन्द, सत्य और परमात्मा नित्य प्राप्त है, कोई दे नहीं सकता। घर, परिवार, धन आदि के छोड़ने से किसी को शान्ति नहीं मिलती है। हरिद्वार में पचासों विद्वान घर छोड़कर भजन करने निकलकर अब यहॉ लाखों की लागत से आश्रम मन्दिर बना रहे हैं। इस वर्ष भी सत्तर लाख लगाकर मन्दिर बना है। यह सब अहंकार की तृप्ति के लिए है।

अभी तुम्हारी प्रीति के हिस्सेदार कम हैं इसीलिए भगवान के ध्यान, ज्ञान की बातें प्रिय लगती हैं। जैसे–जैसे ज्ञान में मेरी वस्तु, मेरा व्यक्ति, मेरी सम्पत्ति बढ़ती जाएगी वैसे–वैसे ज्ञान के ऊपर पर्त पड़ती जाएगी। अभी ज्ञान पदार्थों से ढका है। जब किसी की बुद्धि में अपना कुछ नहीं दिखता तभी मुक्ति मिल जाती है। जब भगवान के सिवा कहीं प्रीति नहीं रहती तभी अशान्ति में शान्ति रह जाती है। लेकिन लाखों लोग हैं जो मुक्ति, भक्ति, शान्ति चाहते ही नहीं है। तुम दूसरों को सुखी रखना चाहती हो, यह भूल है। भगवान भी सबको सुखी नहीं रख सके, जो स्वयं ही सुख का भिखारी हैं वह दूसरों को सुख क्या दे पाएगा। लेकिन संसार में सभी भिखारी हैं और भिखारी से भीख मांगते हैं। सभी को सप्रेम स्मरण। सभी की याद आती रहती है।

पथिक

*****

परिवार के सभी नाम रूपों में आत्म स्वरूप प्रेमास्पद परमात्मा को प्रणाम!

आप सभी में श्रद्धा, उदारता, सरलता, नम्रता, प्रीति, विवेक, विचार आदि दिव्य गुण जितने अंशों में जाग्रत हैं उतने ही आनन्दमय भगवान आप में प्रकट हो रहे हैं।

सम्मेलनों में, प्रवचनों से, कथा श्रवण से कुछ समय तक पाप कर्मों से बचत हो जाती है लेकिन पापों की निवृत्ति नहीं होती। अधिकतर प्रवचन श्रवण से सात्विक मनोरंजन हो जाता है। भक्ति, मुक्ति तो कोई चाहता ही नहीं। मन्दिरों में, तीर्थों में भगवान को खोजने वालों को इतना भी होश नहीं है कि सर्वप्रथम अपने को खोज लें कि मैं कौन हूँ? जो अपने को ही नहीं जानता वह परमात्मा को कैसे जान सकता है। हम लोग ईश्वर को, धर्म को, मुक्ति, भक्ति, शान्ति को दूसरों से सुन सुनकर मानते चले आ रहे हैं लेकिन तत्व ज्ञानी सन्त से जानने का प्रयत्न नहीं करते। सप्ताह ज्ञान यज्ञ में सम्मिलित होने वालों को मुक्ति मिलती दिखाई नहीं देती। फिर भी अंध श्रद्धावश बार–बार सुनते रहते हैं। श्रोता वक्ता का मनोरंजन ही होता है।

पथिक

*****

प्रिय नाम रूपों में विराजमान परमात्मा को प्रणाम,

यह शरीर माटी के दिए की तरह है और इन दीयों में चेतन्य ज्योति जल रही है, उसका क्या भरोसा कभी भी बुझ सकती है। करोड़ों ज्योतियॉ अज्ञान अन्धकार में जलती–बुझती रहती हैं। एक ओर लोक है वह नित्य प्रकाश पूर्ण है अन्धकार बाहर है लेकिन आलोक तो भीतर है, वहीं अहं का स्फुरण हो रहा है। लेकिन यह अहं मन के माने हुए आकारों को स्वीकार करके अपने सत्य चिन्मय आलोक से विमुख बन रहा है। यह शरीर तो भूमि में ही तृप्त है लेकिन चेतना अपने परमाश्रय परमात्मा में लीन हुए बिना बीच में कहीं विश्राम नहीं पा सकती। यदि माटी की देह में ही ध्यान रहा तो जीवन व्यर्थ ही चला जाता है। सद्विवेक के सहारे यदि चेतन स्वरूप ज्योति पर ध्यान हुआ तो माटी की देह में ही आत्मा परमात्मा प्रभु के दर्शन होने लगते हैं। आप लोग पुण्यवान होने के कारण श्रद्धावान

हो। माटी के दिए में चेतन आत्मा को ध्यान से स्मरण करते रहो। विनाशी में अविनाशी को जानो।

तुम्हारे भाग्य को क्या सराहें, क्योंकि इतना अधिक सत्चर्चा सुनने का अवसर तुम्हें मिला। बड़े पुण्य से ऐसे माता–पिता मिले जो सत्संगति में सहायक है, किसी विरले को ही ऐसा अवसर सुलभ होता है। तुम्हारे भीतर श्रद्धा भी है, प्रीति भी है, विचार शक्ति भी है इसीलिए अपना निरीक्षण करती रहो। सदा प्रसन्न रहो। ऐसी कोई बात किसी की किसी से न कहो कि जिसमें उसका मन खराब हो जाए। मोही मन सदा अपनी पूर्ति में ही सुखी होता है। प्रेमी हृदय सदा देकर प्रसन्न होता है, लेकर नहीं।

पथिक

*****

प्रिय नाम रूप धारी परमात्मा को नमस्कार,

अनेकों पत्र पाली जाने के विषय में आ रहे हैं, जो नहीं गए हैं उनका जाना ठीक है किन्तु जो जा चुके हैं उनका जाना ठीक नहीं है, क्योंकि व्यर्थ ही सम्पत्ति, समय व शक्ति नष्ट होती है। सत्संग में विवेक प्राप्ति के लिए जाना चाहिए। किन्तु विवेक की प्यास किसी में दिखाई नहीं पड़ती।

तुम्हें दर्शन की इच्छा है, यह मन का स्तर है। मन से दर्शन करके सुखी होने वाले हजारों लोग हैं लेकिन शान्ति नहीं है। ज्ञान में देखने की दृष्टि अभी तक नहीं खुली है। मन में इच्छाएं तो सभी के उठती हैं। तुम्हारी समझ में आ जाए और शक्ति, सम्पत्ति व समय का दुरूपयोग न करना हो तो इच्छापूर्ति का संकल्प न करो। इच्छा उठने दो, वह इच्छा अपने आत्मदेव को समर्पित कर दो। उनकी दया से इच्छा पूरी हो, तो ठीक है, तुम प्रयत्न न करो। इच्छा पूर्ति के प्रयत्न में जो शक्ति, सम्पत्ति व समय नष्ट होता है, उसी को सेवा में सदुपयोग कर सकती हो।

किसी महात्मा के पास जाओ, तो इसलिए जाओ कि सत्संग से विवेक प्राप्त हो जाए। बीसों वर्श बीत गए दर्शन की इच्छा समाप्त नहीं होती। भगवान राम ने रामायण में दर्शन का फल बताया है:–

मम् दर्शन फल परम अनुपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा।।

मेरे दर्शन का फल यही है कि अपने स्वरूप का बोध हो जाए। अगर तुम सावधान हो तो अपनी ओर लौटो। तब दर्शन सार्थक है, नहीं तो सब निरर्थक है। मन की श्रद्धा अन्धी है और बुद्धि की श्रद्धा में गति हो रही है, किन्तु प्रकाश में नहीं। हृदय की श्रद्धा में ज्ञान द्वारा सद्गति प्राप्त होती है। मन, इन्द्रिय, विषय, सुखों के पीछे भाग रहा है। बुद्धि विषयी मन के पीछे चल रही है। यही संसार की दिशा है। विवेक जाग्रत होने पर बुद्धि सत्य की ओर देखती है फिर मन बुद्धि के पीछे चलता है और विषय सुखों के भोग में जो शक्ति संसार की दिशा में व्यय हो रही थी वह सेवा में सदुपयोगित होती है। शक्ति से सेवा होती रहे, ज्ञान सम्बन्ध के बन्धन से मुक्त होता जाए और प्रेम परमात्मा में लग जाए वही सद्गति व परमगति है। संकल्प करो तो सद्गति परमगति प्राप्त करने का करो।

पथिक

*****

प्रिय आत्मन्,

परमात्मा में तुम्हारी आँखें काम न करेंगी, गुरू दिखायेगा। गोविन्द को गुरू ही लखाता है। सद्गुरू परमात्मा के जानने का माध्यम है, झरोखा है। गुरू को कामना पूर्ति का साधन न बनाओ। धन, पद, संयोग, प्रतिष्ठा एवं मुक्ति भी न चाहो। आग्रह अहंकार ही में होता है। अहं मिटने पर परमात्मा ही रहेगा। गुरू द्वार है परमात्मा से मिलने का।

सद्गुरू, असद्गुरू, गोबर, गनेश गुरू भावनानुसार ही मिलते हैं। श्रवण मात्र से या साधना से या फिर सेवा से। ऐसा ही हो, ऐसा न हो, यह चुनाव अहंकार का है। उसी सर्वज्ञ पर सब छोड़ दो। तुम खूँटी की भाँति हो जाओ जो भी टांगे वही ठीक। यह श्रुति वाक्य है।

"सन्त आत्माहमेवचु"

भगवान कहते हैं कि सन्त मेरी आत्मा है। आत्मा भगवान है। परमात्मा ही सर्वमय है, सर्व प्रपन्चमय वही है। समग्र परमात्मा को पहचान लो। यह भी सन्त मत है कि यदि भगवान अपने को सर्वमय कहते हैं तब तुम भगवान को सबमें क्यों नहीं देखते। देह में रहते हुए देह को अपनी न मानो। मेरा वही है जो मुझे कभी नहीं छोड़े। सुन करके, देख करके, इन्द्रियों द्वारा जो कुछ पकड़ा जाता है, वह पकड़ने वाला मन है। मन से

माना जाता है, उसी को बुद्धि से जाना जाता है। चेतन तत्व कभी साथ नहीं छोड़ता, वही सत्य है, उसी को आत्मा कहते हैं। चेतन सदा रहने वाला अविनाशी है, चेतन में दिखाई देने वाली देह विनाशी है। देह में मन लगाए रहना असत संग है। चेतन आत्मा ज्ञान स्वरूप है, उसमें मन का लग जाना शिष्य होना है, ज्ञान ही गुरू है। चेतन स्वरूप सदा पवित्र है, अविनाशी है, देह सदा अपवित्र है, विनाशी है व जड़ है। यह देह मैं नहीं हूँ यह देह मेरी नहीं है। मैं परमात्मा का हूँ। देह परमात्मा की प्रकृति की है। जब तक मन की मानोगे शिष्य नहीं हो सकते। मन की न मानो, ज्ञान की मानो। आत्मा परमात्मा ज्ञान स्वरूप है, प्रेम स्वरूप है। लेकिन बीच में अहंकार परमात्मा से ही बुद्धि में प्रकाशित होकर के आत्मा परमात्मा से विमुख रहता है। छोड़ना कुछ नहीं है, केवल ज्ञान के प्रकाश में देखना है, जिससे संसार का लोभ, मोह, अभिमान आदि विषयाज्वर उतरे, यही गुरू मंत्र है। भगवान ने अर्जुन को समझाया हैः—

अहं गुरो महावाहो मनः शिष्यं च बिद्धि में।

अर्थः—महावाहो मैं ही (ज्ञान स्वरूप) गुरू हूँ और मेरे मन को ही शिष्य समझो।

मन तभी शिष्य होता है जब मन की नहीं मानी जाती है। जब अहंकार की तृप्ति के लिए कोई संकल्प पूरा नहीं किया जाता। मन जब तक किसी पदार्थ को मेरा मानता है तब तक मृत्यु के दुःख से नहीं बच सकता। जब मेरा संसार में कुछ नहीं है **नमम्** मानता है, तब भगवत् शान्ति को प्राप्त होता है।

पथिक

*****

आपमें परम प्रियतम परमात्मा को प्रणाम!

जिस सम्बन्धित जीव की जो सेवा करनी चाहिए वह नहीं की है। इसलिए अब उसके हिस्से की सेवा करनी होगी तभी ऋण से मुक्ति मिलेगी, इसीलिए गुरूजन कहते हैं कि अपने तन से, वाणी से किसी को दुःख न पहुँचाओ।

सभी श्रद्धालुओं को गुरू विवेक द्वारा पापों व अपराधों से बचते रहना चाहिए। मोह के कारण ही वियोग का दुःख तथा लोभ के पीछे हानि

का दुःख सभी को भोगना पड़ता है। तुम लोगों से किसी की सेवा करते हुए, मान देते हुए, अधिकार देते हुए, अन्न, धन को सेवा में लगाते हुए कभी पुण्य बने हैं। उन्हीं पुण्यों के कारण इच्छा पूर्ति का सुख मिल रहा है। अब यदि गुरू ज्ञान का आदर कर सको तो पुण्य ही होने दो पाप से बचती रहो। रामायण, भागवत् तथा अन्य धर्म ग्रन्थों में पाप से बचने के लिए कहा गया है। कभी किसी के दोश न देखो, यदि पापी मन को किसी का दोश दिख जाए तो दूसरे से कहकर किसी का मन खराब करके अपने पाप न बढ़ाओ। बालक का शुद्ध मन जब तक पाप को नहीं मानता, तब तक उसे पाप नहीं दिखता। इसीलिए रामायण में किसी की निंदा बुराई करने का सबसे बड़ा पाप कहा गया है।

परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा। पर निन्दा सम अधन गरीसा।

पीठ पीछे किसी की बुराई करने में भारी पाप बनता है। कठोर बचन कहना भी वाणी का पाप है। झूठ बोलकर दूसरे को हानि पहुॅचाना, अपना लाभ सिद्ध करना भी पाप है। किसी प्राणी के शरीर को कष्ट देना, बिना मांगे किसी की वस्तु लेकर उसे दुःख देना पाप है। बल पूर्वक किसी स्त्री के साथ प्रतिकूल चेष्टा करके सुखी होना, व्यभिचार भी पाप है।

किसी के साथ ईर्ष्या, द्वेष, करना, किसी में मिथ्या दोषारोपण करना, मन के द्वारा पाप है। जिसकी सेवा करनी चाहिए, सम्मान करना चाहिए, जिसके अधिकार की वस्तु देना चाहिए उसे न देना भी अपराध है। किसी की धरोहर हड़प करना पाप है। परमात्मा से जो शक्ति मिली है तथा जो ज्ञान मिला है, प्रेम मिला है, उससे अपने मन की पूर्ति करते रहना, व्यर्थ सोते रहना और उसके द्वारा लोभी, मोही, अभिमानी, कामी बने रहना नित्य होने वाला अपराध भी पाप है। जिसमें भगवान के गुण एवं ज्ञान को देखकर श्रद्धा करने के बाद देह में एवं मन में दोष देखकर ज्ञान स्वरूप में अश्रद्धा करना सबसे बड़ा पाप है। परमे वर से जो कुछ मिला है, जिसे तुमने बनाया नहीं उसे अपना मान कर अधिकार जमाए रहना जीवन भर चलने वाला अपराध है।

तुम लोगों को प्रभु–कृपा से जो गुरू वाक्य सुनने को मिलते हैं। यह किसी विरले ही पुण्यवान को मिलते हैं। उन गुरू वाक्यों को मूर्खता व मूढ़तावश भुलाते रहना भी दैनिक अपराध है। इन्हीं पापों व अपराधों के कारण जीवन को सुख के साथ दुःख भोगना पड़ता है। नित्य पुण्य के लिए

मानदान, प्रेमदान तथा निष्काम सेवा के अवसर सुलभ हैं, इन्हें न करना दुर्भाग्य का पथ है।

पत्र श्रद्धालु प्रेमियों को दिखा देना, अश्रद्धालुओं को नहीं।

पथिक

****

नमो परमात्मन्!

तुम्हारे हृदय में परमात्मा का प्रेम है, लेकिन उस प्रेम को तुमने मिली हुई वस्तुओं में तथा सम्बन्धित जनों में लगा दिया है। इसीलिए इस बेईमानी के कारण तुम्हें दुःखी होना पड़ता है। तुमने इन्सान के साथ बेईमानी नहीं की है लेकिन जो परमात्मा से मिला है उसको अपना मानकर उस पर अधिकार जमा करके बेईमानी कर रहे हो।

लड़की को अपना मानती हो, यही बेईमानी है। सोचकर देखो तुमने उसमें क्या बनाया है। यदि तुम ईश्वर के विधान का आदर करने लगो, सब कुछ उसी का और उससे मिला हुआ देखने लगो और शरीर से होने वाली सेवाओं को होते हुए देखो, कर्ता अहंकार को पहचान सको और ममता को वस्त्र की तरह उतार कर दूर से देखो तो तुम्हें जीवन में कोई शैतान या कोई भगवान दुःख नहीं दे सकता। तुम्हारा दुःख तुम्हारी ही मूर्खता व मूढ़ता के कारण है।

मन से तन को, धन को, परिवार को अपना मानना मूढ़ता है और धन के नशे में, कुल के रूप में, विद्या के बल के मद में, बुद्धि से सही न समझ पाना, व्यर्थ बकवास करना, रोना, चिल्लाना बुद्धि की मूर्खता है। अब भी अगर होश में रहो, जो कुछ तुम्हें मिला है उसे अपना न मानो, सब भगवान का जानो। शरीर तुम्हारा नहीं है, शरीर के सम्बन्धी भी तुम्हारे नहीं हैं। कर्ता अहंकार के प्रारब्धानुसार सब मिले हैं, सब छूट जाएंगे। शरीर सेवा के लिए मिला है। प्रेम परमात्मा के लिए मिला है। लड़की की सेवा करती रहो उसके प्रारब्ध में जो भोग मिले हैं उन्हें देखती रहो, अपना न मानो। ज्ञान में हम लोग देखते नहीं, सब मानते चले जाते हैं।

कोई कितना ही पूजा—पाठ, जप—तप, तीर्थ यात्रा करता रहे, जब तक अपना मानने की बेईमानी न छोड़ेगा तब तक सुख के पीछे दुःख भोगना ही पड़ेगा। हम सभी लोग जब तक मिले हुए को अपना मानेंगे, तब

तक दैनिक अपराध होता ही रहेगा। निद्रा में भले ही अपराध न हो, जागते हुए हम सब अपराध करते ही रहते हैं। तुम अपने ज्ञान में जब तक सब कुछ अपना मानोगी, तब तक भय, चिन्ता, दुःख से मुक्ति नहीं मिलेगी।

पथिक

****

नाम रूप में अपने प्रियतम परमात्मा को प्रणाम,

रामायण में कहा है कि जिसका मन ममता से भरा है, लोभ से बंधा है साथ ही अनेकों कामनाओं से बंधा है और क्रोध आता रहता है उसे ज्ञान की बात समझाना, विरक्त विरागी होने की बातें कहना अथवा सन्त कथा श्रवण की महिमा सुनाना, समस्थित रहने को प्रेरित करना उसी प्रकार व्यर्थ होता है जिस प्रकार ऊसर में बीज बोने की कल्पना करना।

बुद्धि सूक्ष्म हो तो मैंने जो लिखा है उसे पढ़कर तुम लोग बहुत अच्छी ज्ञानवान हो सकती हो।

पथिक

****

चेतन स्वरूप अविनाशी आत्मा को नमस्कार!

मेरी बात लोग समझ नहीं पाते और समझते भी हैं तो उनका मोही व लोभी, अहंकार विचार, विवेक का आदर नहीं कर पाता। तुम्हारे हृदय में श्रद्धा है इसीलिए तुम मेरे सन्देश को आदर के साथ सुनती हो, परन्तु अभी अपने मन के मोह को नहीं समझ पाती हो। तुम्हीं नहीं बल्कि लाखों, करोड़ों नारियाँ मन की कामनाओं के कारण सारा जीवन यूँ ही अज्ञान में, भय–चिन्ता में खो देती हैं। मजदूर और महाजन, कंगाल और करोड़पति अन्त में हाय–हाय करते हुए दुःखी होकर मरते हैं। लाखों में कोई विरला विवेकी मानव वाह–वाह करते हुए भारीर छोड़ता है।

कालपी में सैकड़ों मजदूर सूखा–रूखा खाकर, मोटा–फटा पहन कर झोपड़ी में रहकर जी रहे हैं। तुम्हारे भाग्य में तो बहुत कुछ है फिर भी तुम परेशान हो जाने की चिन्ता करती हो। यही अज्ञान है। जो कुछ तुम्हारे प्रारब्ध से मिला है उसी में सन्तोष एवं सुख मानकर भगवान को धन्यवाद दो कि बहुतों से हमारे पास अधिक है। तब तुम्हारी परेशानी और चिन्ता दूर हो सकती है।

भूमि भवन हो, स्वर्ण हो, मिले रत्न की खान।
जब आवे सन्तोष धन (तब) सब धन धूरि समान।।

संसार में देह सम्बन्धी जो कुछ भी मिले हैं वह तुमने नहीं बनाए, पुत्र–पुत्री तुमने नहीं बनाए। अपनी देह पर भी तुम्हारा अधिकार नहीं है। सब कुछ भगवान से मिला हुआ जानकार ईमानदार बनो। बार–बार यही मनन करो कि जीवन में जो कुछ मिला है, वह अपना नहीं है, सब कुछ भगवान की माया है, लेकिन अपने को भगवान का समझो। मिले हुए शरीर से सम्बन्धियों की सेवा करो, बदले में कुछ न चाहो। किसी से मान, प्यार, अधिकार, सम्मान, कुछ न चाहो। क्योंकि जो कुछ जितना तुम्हारे भाग्य में है, वह बिना मांगे मिला है, आगे भी मिलेगा। जो भी मिला है उससे सेवा करती रहो, जो नहीं मिले तब समझो हमारे भाग्य में नहीं है। सन्तोश रखो।

जिन्हें बहुत मिला है, उन्हें तुम निश्चिंत, शान्त, भय, चिन्ता, रहित न समझ लेना। ज्ञान व विवेक के बिना करोड़ों की सम्पदा होने पर भी वह अशान्त है, भयातुर है, चिन्ताग्रस्त है।

तुम्हारे घर में कोई तो धन का, भवन का मालिक होगा ही क्या वह भाान्त है। वह भी चिन्ता से, भय से दबा होगा। बड़े भाई यदि धन के मालिक हैं तो उन्हें भी कन्याओं की शादी की चिन्ता है। व्यापार में भय–चिन्ता लगी रहती है। रोटी खा लेते हैं, कपड़ा पहन लेते हैं, कुछ इच्छाओं की पूर्ति कर लेते होंगे, जो तुम नहीं कर पाती लेकिन निश्चित, निर्भय, शान्त वह नहीं होंगे। उनके सामने हजारों के खर्च हैं तुम्हारे सामने एक कन्या की चिन्ता है जिसे तुमने बनाया नहीं है, उसके प्रारब्ध को नहीं बनाया। वह अपने कर्म के अनुसार संयोग–वियोग, लाभ–हानि का सुख–दुःख भोगेगी। तुम्हें उसकी सेवा करनी होगी, लेकिन चिन्ता तो अपना मानने से होती है। जीवन में जो कोई मिले हुए तन, धन, परिवार को अपना मानता है वह भगवान के साथ बेईमानी कर रहा है। भगवान की वस्तु पर कब्जा जमाने वाले बेईमान आदमी कितनी पूजा–पाठ, जप, तीर्थ यात्रा करते रहे फिर भी उनको अन्त में दुःखी होना पड़ेगा, क्योंकि एक दिन सब छूटेगा। अपना मानने से ही मोह, लोभ, आसक्ति, ममता, अभिमान आदि दोष बढ़ते हैं। यही दोष दुःख देते हैं। कोई दूसरा सुख–दुःख नहीं देता है।

कोउ न काहु सुख–दुःख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब पाता।।

तुम्हारे मन में जहॉ तक मोह, ममता है, लोभ है, कामनाएँ हैं, वहाँ तक तुम सुखी भले ही हो जाओ, लेकिन दुःख तो आकर ही रहेगा और सुख चला ही जाएगा।

गीता, भागवत, रामायण पढ़ने सुनने वाले भी मोह, लोभ अभिमान अहंकार से मुक्त नहीं हो पाते क्योंकि अपना मानने की बेईमानी पकड़े रहते हैं। सारी दुनिया मोह, ममता, आसक्ति कामना से परेशान है, तुम अकेले नहीं हो। विचार करो तो पता लगेगा।

पथिक

****

प्रिय नाम रूप में प्रकाशित आत्मदेव को नमस्कार!

यह पथिक आज चरखारी से पत्र लिख रहा है। विशेष भावों से प्रेरित होकर ही आपका स्मरण हो रहा है। आपके हृदय में श्रद्धा तो बहुत प्रगाढ़ है, ज्ञान के द्वारा श्रद्धा मुक्ति–भक्ति का साधन हो जाती है। कामना से मुक्त श्रद्धावान ही ज्ञान में सत्य को जान पाता है। ज्ञान तो अपना स्वरूप ही है। अज्ञानवश ही हम लोग विनाशी देह को अपना रूप मानते हैं। ज्ञान में ही समझ में आता है कि हम देह नहीं है। यह देह हमारी नहीं है।

जब तक हम लोग मिले हुए शरीर को, सम्बन्धियों को, भूमि, भवन, धन को अपना मानते हैं तब तक प्रेम और ज्ञान मोह, लोभ, अभिमान, कामना व ममता से ढका रहता है। इसीलिए हानि का, वियोग का, अपमान का, अभाव का दुःख भोगना पड़ता है। पूर्ण दुःख होने पर ही कामना का, चाह का, ममता, मोह, लोभ आदि दोशों का त्याग हो पाता है। सुखोपयोग की चाह संसार व परमात्मा से मुक्ति, भक्ति नहीं होने देती।

तब तक हम लोग मन की मानते रहेंगे तब तक ज्ञान व विवेक का अनादर होता रहेगा, यह भी अपराध है। सब दुःखों का मूल है ममता। मेरा मानते रहने तक ममता नहीं छूटती। ममता का त्यागी ही भगवान को अत्यन्त प्रिय होता है। हम सब साधकों को बार–बार याद रखना चाहिए किः–

1. **हम भगवान के हैं।**

2. जो कुछ हमें मिला है यह सब भगवान का ही है।

3. अपना कुछ भी नहीं है।

जब मेरा कुछ नहीं है तब किसी से मुझे कुछ नहीं चाहिए। यह देह तो प्रारब्धानुसार चलती ही रहेगी। जो कुछ भी मिला है जब वह सब छूट जाएगा तक और कुछ चाहने से जो मिलेगा वह भी साथ नहीं रहेगा। परमात्मा, आत्मा, चेतन रूप से निरन्तर प्राप्त ही है। यही ध्यान में रखना है।

सबको स्मरण।

पथिक

*****

सभी नाम रूपों में प्रकाशित अविनाशी आत्म देव को सप्रेम स्मरण!

गुप्ता जी का शरीर नहीं रहा। आप लोगों की माता जी ममता व अत्यधिक दुःखी होंगी ही क्योंकि असावधानी के कारण विवेक द्वारा मोही हृदय ममता का त्याग नहीं कर पाता, इसीलिए सतचर्चा में अविनाशी आत्मा की बात सुनते हुए भी दुख से मुक्त होने के लिए प्रयत्न नहीं करता। गुप्ता जी का आदर्श जीवन बहुत ही विचारणीय है और उनका स्वभाव, विवेक, विचार व व्यवहार अनुकरणीय है। वह गृहस्थ जीवन में बहुत ही सुन्दर साधु पुरूष थे। कालपी नगर में उनके स्थान की पूर्ति कौन कर सकेगा, यह भी ज्ञात नहीं है। उनके निधन के पीछे उनके गुण स्वभाव को आप लोग जीवन में चरितार्थ करने का संकल्प करो तो आप सबका धन्य भाग्य होगा। उनके पीछे शोक करना, मन की मूढ़ता व बुद्धि की मूर्खता है। उनके त्याग व प्रेम पूर्वक सेवा को जीवन में उतारने का संकल्प करना, अपने सुन्दर भाग्य निर्माण की योग्यतम् विधि है। आप लोग ऐसा कर सकते हो। जो शक्ति स्वार्थ एवं शोक विवाद में नष्ट की जा सकती है, उसी से उनके गुण–ज्ञान का संस्मरण करते हुए भविष्य में जीवन को भय, चिन्ता, दुख से मुक्त बनाया जा सकता है। दुखी होना स्वार्थी अहंकार को पोषित करना है। उनके प्रेमी होने के कारण अपनी दिनचर्या में मोह, लोभ, अभिमान त्याग करने का संकल्प करना उनकी आत्मा को संतुष्ट करने का सहज उपाय है। गुप्ता जी के द्वारा ही मैं कालपी आ सका। उनके शुद्ध संकल्प के कारण ही तुम्हारे द्वार पर ज्ञान यज्ञ का आयोजन सफल हो

सका। कालपी में जो भी परमार्थ चर्चा सुनने का सौभाग्य जनता को सुलभ हुआ है, इसी पुण्यवान आत्मा की उपस्थिति के कारण हुआ। आप लोग अपने जीवन को तन–धन से अनासक्त रखकर आत्मा परमात्मा में अनुरक्त रहने के लिए सजग रहो। विनाशी नाम रूपों में आसक्ति मूढ़ व मूर्ख प्राणियों के हृदय में रहती है। वृक्ष से पत्ता को गिरते हुए एक सन्त के उद्गार है।

पत्ता टूटा डालि से, समझावत यह बात।
इस जग की यह रीति है, एक आवत एक जात।

आप लोग अपनी विनाशी देहों में अविनाशी चेतन स्वरूप का स्मरण रखने का अभ्यास दृढ़ करो। व्यर्थ शोक–विलाप में बहुत समय नष्ट हो चुका है, अब सद्गुण व सद्ज्ञान के मनन में समय को सार्थक करो। एक बार मन में वहाँ जाने का विचार उठा लेकिन समय परिस्थिति अनुकूल न होने के कारण न आ सका। आ करके जो कुछ कहता पत्र द्वारा आप लोग मनन कर सकते हैं और संसार में रहने की तैयारी न करके जाने की तैयारी करने में सावधान रहें।

हम तुम क्या कितने महारथी, इस जग में आकर चले गए।
जो पहले से तैयार न थे, पछता–पछता कर चले गए।।
हम सबको भी चलना ही है, चलने की तैयारी कर लो।
जो सत्संगी थे, वे ही स्वर्ग की राह बनाकर चले गए।।

लोग कहते हैं किसी की मौत आई ले गई, लेकिन पुण्यवान साधक को मृत्यु ले नहीं जाती उसका साथ ही छूट जाता है, वह मृत्यु से मुक्त होकर के जाता है। दिन में अनेकों बार विनाशी देह में रहने वाले अविनाशी चेतन स्वरूप का स्मरण करते रहो। कुछ दिन में मृत्यु के भय से मुक्त होकर जीने का अभ्यास दृढ़ हो जाएगा। संसार में जो कुछ मिला है, सब छूट जाएगा, लेकिन जो कभी नहीं छूटता उस अविनाशी स्वरूप में बुद्धि को स्थिर करो। अज्ञानी जीव न सही ढंग से जीना जानते हैं और न मरना जानते हैं। आप लोग अपने अविनाशी जीवन को जान लो और मृत्यु के भय से मुक्त होकर जियो। मोही लोग विनाशी को प्राप्त करने और उसकी सुरक्षा प्रयत्न में जीवन व्यर्थ बिता देते हैं। बार–बार स्मरण करो कि विनाशी देह संसार में छूटेगी, मैं अविनाशी चेतन निरन्तर अविनाशी

परमात्मा में सुरक्षित हूँ। मनुष्य जैसा चिन्तन करता है, चित्त उसी मय बन जाता है। इसीलिए सावधान रहकर अपने प्रेम और ज्ञान को विनाशी के बन्धन से मुक्त कर लो। ये काम दूसरा कोई नहीं करेगा, अपने आपको ही करना होगा। शान्ति, मुक्ति, भक्ति दूसरा कोई नहीं देता स्वयं प्राप्त करना है, जिसमें वह स्वतंत्र है। प्रेम को सुखासक्ति से मुक्त कर लेना ही स्वतंत्र आनन्द में रहना है। ज्ञान में विनाशी नाम रूपों को अपना न मानना ही मुक्त होना है। मेरा आप सबसे यही कहना है कि अब व्यर्थ शोक में समय न खोकर गुप्ता जी के स्वभाव, विचार, श्रद्धा, सेवा भाव का मनन करो। कुछ दिन में सब कुछ छोड़कर जाना है। इसीलिए अभी से आसक्ति, ममता छोड़कर परमात्मा के स्मरण रखने का अभ्यास बढ़ा लो। देह छोड़ने वाले प्राणी के लिए जो शोक विलाप करता है उससे उस प्राणी को परलोक में बहुत दुःख होता है। सत्संग का अनादर करना सबसे प्रथम पाप है। माता जी को चाहिए कि गुप्ता जी की याद में भगवान का नाम स्मरण करती रहें। उनकी आत्मा को शान्ति मिलेगी।

पथिक

*****

पूज्य श्री नागा निरंकारी रामदास जी महाराज

ब्रह्मवाणी

अब मन भजो सत्य कर्तार, भोर हुआ अब दिन चढ़ आया।
क्यों नहीं भजता श्री ओंकार।।
उठो मुसाफिर जागो अब तो, गुरूनानक ने करी पुकार।
क्यों तू सोता पड़ा नींद में, अपने हृदय करो विचार।
यह संसार की माया, फिर काहे तू फंसा गंवार।
अन्त समय कोई काम न आवे, अब तो गुरू की करौ पुकार।
नागा कहे सुनो भई सन्तो, समझो यहॉ भजन ही सार।

जीवात्मा स्वयं ही सुख स्वरूप है इसीलिये किसी अन्य वस्तु व्यक्ति को सुखदाता, दुःखदाता न मानो, तो सभी राग द्वेष समाप्त हो जायेंगे।

स्वास्तिक उपदेश

1. सब जीवों में ईश्वर का वास है। सब जीवों पर दया करो।
2. सब की आत्मा शुद्ध और अकर्ता है।
3. शरीर को न पूजो, यह तो ठूठ है।
4. वीरता धारण करो, बिना वीरता के न योग होता है न गृहस्थी।
5. सब पर प्रेम रखो, किसी से घृणा या मोह न करो। ऊँच–नीच, अपने–पराये का विचार अज्ञान है। सबको समान देखो।
6. पुरूषार्थ करो, पुरूषार्थ से ही सब कुछ होता है।
7. विचार कर काम करो, कर्म फल अवश्य भुगतना पड़ता है।
8. धर्म करो, भूखे टूटे को भोजन, वस्त्र दो। गरीबों का उपकार करो, अनाथों का साथ दो, बीमारों की सेवा करो, दूसरों को दुःख न दो।
9. ज्ञान रखो, सब दुःख–सुख अज्ञान के कारण होता है।
10. कोई किसी का न लड़का है, न बाप, न महतारी। जैसे नदी में बहुत जगह से लकड़ियॉ आकर इकट्ठी हो जाती हैं और फिर जिधर–तिधर चली जाती हैं। उसी प्रकार संयोगवश संसार में कहॉ–कहॉ के जीव इकट्ठे होते हैं और फिर अलग हो जाते हैं। किसी से मोह न करना चाहिए।
11. गृहस्थों के लिये वैराग और साधुओं के लिए योग है। दोनों को भजन करना चाहिए। भजन से सब ग्रह शान्त हो जाते हैं और अल्प कट जाती है। भजन से ही योग होता है। योगी सब कुछ कर सकता है।
12. मोक्ष दो प्रकार का होता है। एक तो अगाध समुद्र में पानी की बूँद की तरह जाकर मिल जाना। दूसरा स्वतन्त्र होकर इच्छानुसार लोक–लोकान्तर में विचरण करता है। भजन से योग, योग से वैराग, वैराग से परेज्ञान और परेज्ञान से मोक्ष होता है।

*****

<u>सामान्य जन के लिए</u>

1. शरीर में बल रखो, डटकर भोजन करो। दूसरे के धन का लोभ न करो। सत्य (कमाई) से पैदा करो। कुछ पैसा रोज बचाकर रखो। कर्ज न लो, न धरोहर धरो।

2. अपने आश्रितों (मनुष्य और पशुओं) को तकलीफ न दो। उनकी सेवा करो। बालकों पर क्रोध न करो, बनाकर रखो, दूध पिलाओ, खेलने दो, पढ़ा लिखा कर, कमाने खाने दो। ज्यादा माया में न पड़ो। ब्याह छोटी अवस्था का अच्छा होता है।

3. सबसे मिलकर चलो। आतताई को युक्ति से सब मिलकर नाश करो

4. स्त्रियों के चमड़े (रंग) से मोह या घृणा न करो। स्त्री शक्ति है, माता है, उसका आदर करो। किसी स्त्री का हाथ पकड़ो तो उसे बीच धार में न छोड़ो, अन्त तक धर्म से निर्वाह करो।

5. तीर्थ यात्रा, पूजा पाठ, ब्राह्मण भोजन से धर्म नहीं होता। दूसरों का दुःख दूर करो, परमार्थ में पैसा खर्च करो। अपने आश्रितों को त्याग कर साधु न बनो, उनका श्राप लगेगा। गृहस्थी में वैराग्य से रहकर भजन करो। धर्म से बेड़ा पार है।

6. **(स्त्रियों के लिए)**

   घर को प्रेम से सम्हालो। ऑख में लज्जा रखो। कपड़े का पर्दा (घूँघट) बेकार है। बल वीरता व आत्मरक्षा के लिए गुप्त अस्त्र रखो।

****

– धन्य जीवन है –

धन्य जीवन है जो कि निर्विकार होता है।
वह घड़ी धन्य है जब सद्विचार होता है।। 1।।

अपने ही दोषों से दुःख बार–बार होता है।
छाया अज्ञान का जब अन्धकार होता है।। 2।।

क्यों उन्हें भूले हो जिनसे तुम्हें सब कुछ मिलता।
पाके जो देता है वह भी उदार होता है।। 3।।

जगत की प्रीति में क्या रीझे हो उधर देखो।
बिना बदले के जहाँ सबको प्यार होता है।।4।।

कितनी उनकी है दया जो कोई चहे देखे।
उनके गुण–गान से पापी भी पार होता है।।5।।

क्यों न तर जायें उबर जायें पतित लाखों जब।
ज्ञान में होते ही पापों का क्षार होता है।।6।।

'पथिक' अब सावधान हो, गहो उन्हीं की शरण।
जहॉ पतितों का सदा ही सुधार होता है।।7।।

*****

देह विनाशी हम अविनाशी
विनाशी में अविनाशी को देखो।

निष्काम जीवन

चित में यदि चाह न रह जाये। फिर कुछ दुख दाह न रह जाये।।
हम ऐसे हो जायें ज्ञानी फिर रहे न किंचित अभिमानी।
बन जायें सब कुछ के दानी। भव सिन्धु अथाह न रह जाये।।

सब भाँति सदा सन्तोष रहे। मन बुद्धि सदा निर्दोष रहे।
सोहं सत्योहं घोष रहे। कुछ भी परवाह न रह जाये।।
जग के वैभव धन पाने का। शासन अधिकार बढ़ाने का।

फिर किसी ओर भी जाने का। कुछ भी उत्साह न रह जाये।
अपने उर का छलमल धोकर। सब भेदभावना को खोकर।
हम ''पथिक'' रहें तुम मय होकर। दुगर्ति की राह न रह जाये।।

*****

भगवान तुम्हारे चरणों में

मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान तुम्हारे चरणों मे।
यह विनती है पल–पल छिनछिन, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।

चाहे बैरी सब संसार बने, चाहे जीवन मुझपर भार बने।
चाहे मौत गले का हार बने, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।

चाहे कष्टों ने मुझे घेरा हो, चाहे चारों ओर अँधेरा हो।
पर चित्त न डगमग मेरा हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।

चाहे काँटों में मुझे चलना हो, चाहे अग्नि में मुझको जलना हो।
चाहे छोड़ के देश निकलना हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।

तुमहीं सब मय यह ज्ञान रहे, मुझमें न कहीं अभिमान रहे।
प्रभु मेरे तुम यह गान रहे, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।

मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान तुम्हारे चरणों मे।
यह विनती है पल–पल छिनछिन, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।

*****

प्रार्थना

हे नाथ अब तो ऐसी दया हो, जीवन तिनरर्थक जाने न पाये।
यह मन न जाने क्या क्या दिखाये, कुछ बन सका न मेरे बनाये।।
संसार में ही आसक्त रहकर, दिन रात अपने मतलब की कहकर।
सुख के लिये लाखों दुःख सहकर, ये दिन अभी तक यों ही बिताये।।
ऐसा जगा दो फिर सो न जाऊँ, अपने को निष्काम प्रेमी बनाऊँ।
मैं आपको चाहूँ और पाऊँ, संसार का कुछ भय रह न जाये।।
वह योग्यता दो सत्कर्म कर लूँ, अपने हृदय में सद्भाव भर लूँ।
नर तन है साधन भव सिंधु तर लूँ, ऐसा समय फिर आये न आये।।
हे प्रभु हमें निरभिमानी बना दो, दारिद्र हर लो दानी बना दो।
आनन्दमय विज्ञानी बना दो, मैं हूँ 'पथिक' यह आशा लगाये।।

*****

किसी के काम जो आये

किसी के काम जो आये उसे इंसान कहते हैं
पराया दर्द अपनाये उसे इन्सान कहते हैं।

कभी धनवान है कितना, कभी इंसान निर्धन है
कभी सुख है कभी दुख है, इसी का नाम जीवन है
जो मुश्किल में न घबराये उसे इंसान कहते हैं।।

ये दुनिया एक उलझन है कहीं धोखा कहीं ठोकर
कोई हँस हँस के जीता है, कोई जीता है रो–रो कर
जो गिर कर फिर संभल जाये उसे इंसान कहते हैं।

अगर गलती रुलाती है, तो ये राह भी दिखाती है।
मनुज गलती का पुतला है, ये अक्सर हो ही जाती है
जो गिर कर संभल जाये उसे इंसान कहते हैं।

अकेले ही जो खा–खा कर, सदा गुजरान करते हैं
यों भरने को तो दुनियाँ में, पशु भी पेट भरते हैं
जो बन्दा बाँट कर खाये उसे इंसान कहते हैं।

किसी के काम जो आये उसे इंसान कहते हैं
पराया दर्द अपनाये उसे इन्सान कहते हैं।

*****